श्रीउड़िया बाबाजी के संस्मरण

[प्रथम खण्ड]

सम्पादक :

स्वामी सनातनदेव

गोविन्ददास वैष्णव

पूर्णानन्द पुस्तकमाला पुष्प ६

श्री उड़िया बाबाजी के संस्मरण

[प्रथम खण्ड]

सम्पादक :

स्वामी सनातनदेव

गोविन्ददास वैष्णव

प्रकाशक :

श्रीकृष्णाश्रम, दावानल कुण्ड,

वृन्दावन (मथुरा)

प्रथम संस्करण सं० २०१५

मूल्य ३)

मुद्रक :

सुभाष प्रिन्टिग प्रेस,

तिलक द्वार, मथुरा.

नम्र-निवेदन

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीसे बिछुड़े हुए हमें प्रायः दस वर्ष हो गये हैं। अब उनके सदुपदेश और सुमधुर स्मृति ही इस जीवनयात्रा में हमारे संबल हैं। उनके सदुपदेशोंका संग्रह तो पहले ही प्रकाशित हो चुका है। एक संक्षिप्त जीवनपरिचय भी छपा है। तथापि भक्तोंकी बड़ी लालसा थी कि उनकी एक विस्तृत जीवनी भी लिखी जाय। परन्तु लिखे कौन ? महापुरुषोंका जीवन तो ईश्वरोंका जीवन होता है। हम सामान्य जीव उसे न तो पूरा-पूरा समझ ही सकते हैं और न उसे अभिव्यक्त करनेके लिये हमारे पास उपयुक्त शब्द-सम्पत्ति ही है। जैसे एक ही भगवान् भावभेदसे भक्तोंको विभिन्न रूपोंमें भासते हैं वैसे ही महापुरुषोंके विषयमें भी उनके सभी भक्तों की एक-सी धारणा नहीं होती। अतः ऐसा कोई एक जीवन तो लिखा भी नहीं जा सकता जिससे सभी भक्तोंको उनके अपने-अपने भावकी पोषक सामग्री मिल सके। इन्हीं कारणोंसे यह कार्य अत्यन्त आवश्यक होनेपर भी आरम्भ न हो सका।

प्रायः पांच वर्ष हुए श्रीमहाराजजीके कुछ भक्तोंके आग्रहसे श्रीगोविन्ददासजी वैष्णवने उनके जीवनचरितके लिये सामग्री संग्रह करनेका कार्य आरम्भ किया और इसमें उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। सच पूछा जाय तो प्रस्तुत पुस्तक उनके उस अथक परिश्रमका ही परिणाम है। इस प्रकार प्रायः दो वर्षों में पर्याप्त सामग्री एकत्रित हो गयी। अब उसके सम्पादनकी समस्या सामने आयी। सामग्री बहुत उपयोगी थी और उसमें सभी प्रकारकी मनोवृत्तियोंके साधकोंके भाव सन्निविष्ट थे। उन विभिन्न भाव और विभिन्न दृष्टि-कोणोंसे समन्वित सामग्रीके आधारपर कोई क्रमबद्ध जीवन लिखना सामान्य कार्य नहीं था। अतः यह निश्चय किया गया कि उन संस्मरणोंको ही क्रमबद्ध करके ज्योंका त्यों प्रकाशित कर दिया जाय। इससे सभी प्रकारकी सामग्री लेखकोंके अपने-अपने भावोंके अनुसार मिल जायगी और उन घटनाओंके विषयमें किसी एक व्यक्ति का उत्तरदायित्व भी नहीं रहेगा।

यह निर्णय हो जानेपर उनमेंसे अधिकांश लेखोंको, उनकी भाषा आदि का संशोधन करके, श्रीगोविन्ददासजी ने लिखा। परन्तु वे चाहते थे कि सम्पादनका अन्तिम दायित्व किसी अन्य व्यक्तिपर ही रहे। अतः इसे अन्तिम रूप देनेका कार्य मुझे ही सौंपा गया। मैंने अपनी योग्यताके अनुसार इसका सम्पादन करनेका प्रयत्न किया है। उसमें मैं कितना सफल हुआ हूँ, सो तो भगवान् ही जानें।

इस पुस्तकको दो खण्डोंमें विभक्त किया गया है। लेख और लेखकोंकी दृष्टिसे दोनों ही खण्डोंका समान महत्त्व रहे—ऐसा प्रयत्न रहा है। लेखोंकी भाषा तो आवश्यकतानुसार सुधारी गयी है, परन्तु

घटनाओंकी यथार्थताका दायित्व लेखकोंपर ही है । हमें किसीके विषयमें अविश्वास करनेका क्या अधिकार है ? महापुरुषोंके जीवनमें ऐसा कौन आश्चर्य है जो दुर्घट हो। तथापि स्थानका संकोच होनेके कारण बहुत-से लेख छोड़ने भी पड़े हैं और अनावश्यक समझ कर प्रस्तुत लेखोंकी भी कुछ घटनाएँ छोड़ दी गयी हैं। आशा है, हमारी विवशताका विचार करके कृपालु लेखक हमें क्षमा करेंगे।

हमें खेद है कि इस पुस्तकमें जिनके लेख छापे जा रहे हैं उनमें से कुछ महानुभाव अब इस असार संसारको छोड़ चुके हैं। यहाँ उनके नामोंका उल्लेख करके हम प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें शाश्वती शान्ति प्रदान करें। वे हैं—बालब्रह्मचारी पं० श्रीजीवन दत्तजी, श्रीपल्टू बाबाजी, स्वामी श्रीविज्ञानभिक्षुजी, पं० श्रीरामानन्द जी, पं० श्रीज्योतिप्रसादजी, पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी शास्त्री और श्रीविश्वम्भरप्रसादजी चन्दौसी। ये सभी महानुभाव श्रीमहाराजजी के परम भक्त और अनन्य सेवक थे।

हमारी हार्दिक इच्छा थी कि हम इस ग्रन्थको यथासम्भव शुद्ध, सुन्दर और आकर्षक रूपमें प्रकाशित करें। इसीसे इसकी छपाई आदिमें हमारे अनुमानसे बहुत अधिक खर्चा लग गया। परन्तु होता तो वही है जो वे नटनागर होने देते हैं। हमें बड़े संकोचके साथ लिखना पड़ता है कि प्रूफशोधनकी सन्तोषजनक व्यवस्था न होनेके कारण इस प्रथम खण्डमें बहुत-सी अशुद्धियाँ रह गयी हैं। कहीं-कहीं तो शब्द ही कुछ के कुछ छप गये हैं। उनमेंसे अधिकांश की सूची हम इस पुस्तकके अन्तमें दे रहे हैं। यदि पुस्तक पढ़नेसे पूर्व आप उस शुद्धिपत्रके अनुसार उन्हें शुद्ध कर लेंगे तो आपको

यत्र तत्र पुस्तकका आशय समझनेमें कोई अड़चन नहीं होगी। प्रभु ने यदि इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करनेका अवसर दिया तो इस त्रुटि को दूर करनेका प्रयत्न किया जायगा।

अस्तु, जैसा भी बना यह गुरुदेवके निजजनों द्वारा गूँथा हुआ श्रद्धामय पुष्पहार उन्हींके परमपुनीत पादपद्मोंमें समर्पित करता हूँ। वे करुणामय प्रभु इस नगण्य भेटसे प्रसन्न होकर हमें अपने चरण-कमलोंकी अहैतुकी प्रीति प्रदान करें।

श्रीकृष्णाश्रम, वृन्दावन
दीपावली, सं० २०१५ वि०

विनीत :
सनातनदेव

लेखक-सूची

लेखक | पृष्ठ

लेखक ... पृष्ठ

श्री उड़िया बाबाजी के संस्मरण

[प्रथम खण्ड]

श्रीपूर्णानन्दाष्टकम्

पावनं परमं पुण्यं पद्मपत्रमिव स्थितम् ।
पूर्णप्रेमप्रदातारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ १ ॥
सुखदं शान्तिदं सौम्यं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
सारासारप्रवक्तारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ २ ॥
भजनं भाजनं भव्यं भक्तिभावप्रदायकम् ।
भक्तानन्दकरं भाव्यं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ३ ॥
मानदं मोहकं मुख्यं मानातीतं मनोहरम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदातारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥
तार्किकं तर्कहन्तारं तर्कातीतं तु तुष्टिदम् ।
त्यक्तदण्डं तुरीयं तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ५ ॥
परापरं परातीतं पालकं परमेश्वरम् ।
पुरीनिवासिनं पुण्यं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥
लौकिकं वैदिकं शास्त्रं ज्ञानविज्ञानसंयुतम् ।
भक्तान् शिक्षयते यस्तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ७ ॥
लेह्यं चोष्यं च पेयं च सुचर्व्यं भोज्यमेव च ।
भुंक्ते भोजयते यस्तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ८ ॥

पुण्यं पापहरं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिभावतः ।
न त्वसौ भयमाप्नोति न दुःखं न पराभवम् ॥
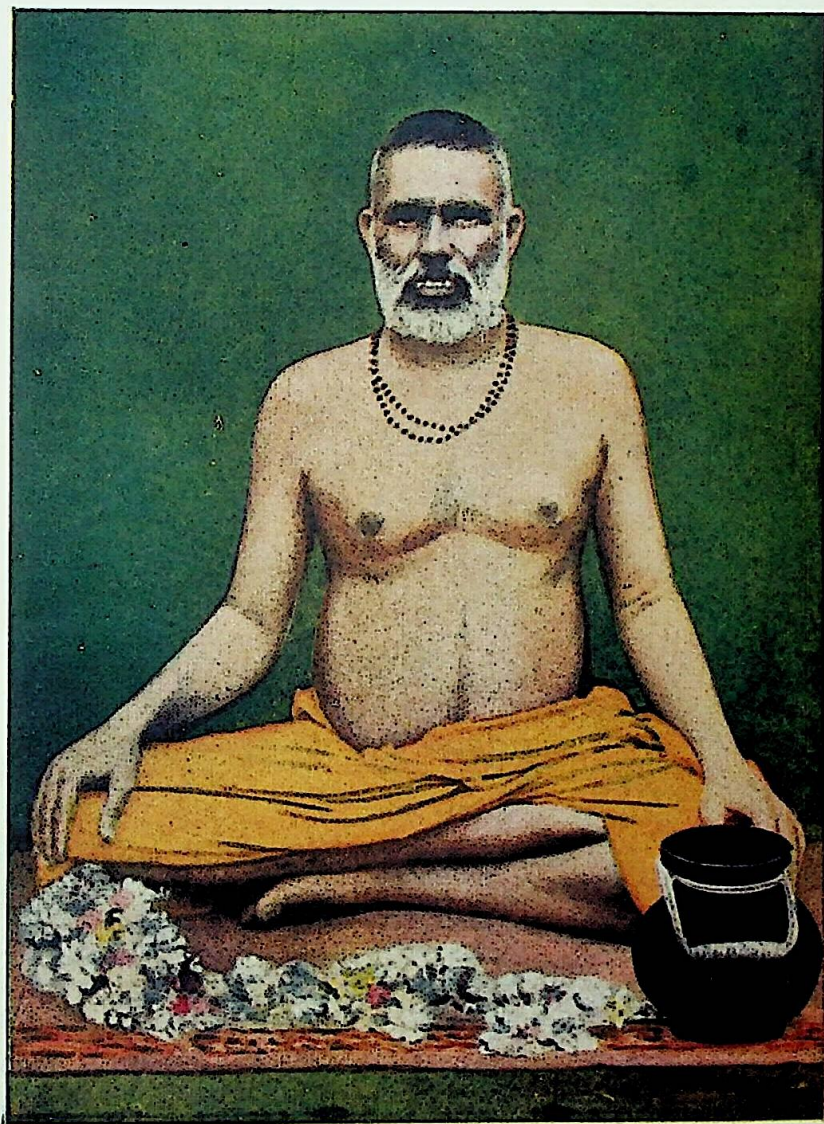
श्री उड़िया बाबाजी

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर

स्वामी श्रीशान्तानन्दजी सरस्वती

प्रथम दर्शन

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्त्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।।

परम पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय श्रीमहाराजजीका परिचय मुझे उस समय मिला था, जब मैं सन् १९४२ ई० में चित्रकूटमें भ्रमण कर रहा था। उन दिनों मैं एक अनुभवी गुरुकी खोजमें था, जो मुझे संसारसागरसे निकालकर परमानन्दकी प्राप्ति करा दें। एक महात्माने मुझे श्रीमहाराजजीका नाम सुनाया और बतलाया कि वे बड़े अनुभवी, उदार, सर्वगुणसम्पन्न उच्चकोटिके महात्मा हैं। गंगाजीके किनारे रामघाट, कर्णवास आदि स्थानोंमें विचरते रहते हैं। नाम सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ और मनमें ऐसी उत्कण्ठा हुई कि शीघ्र चलकर दर्शन करूँ। सौभाग्यसे प्रयागके कुम्भमें मुझे श्रीआनन्द ब्रह्मचारी मिल गये। उनके द्वारा मुझे श्रीमहाराजजीका विशेष परिचय प्राप्त हुआ। मैं उनके साथ श्रीहरि बाबाजीके बाँध पर पहुँचा, जहाँ उन दिनों श्रीमहाराजजी विराजमान थे। उस समय होलीके अवसरपर वहाँ श्रीचैतन्यमहाप्रभुका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। श्रीमहाराजजीके दर्शन करके चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। परन्तु महापुरुषोंकी महिमा बड़ी विचित्र होती है— 'संतकी महिमा वेद न जाने।' बड़ी कठिन परीक्षा हुई। परन्तु भगवत्कृपासे अन्तमें शरण मिल गयी।

श्रीमहाराजजीके यहाँ सत्संगका सुन्दर सुयोग था। वेदान्त-विषयमें जिज्ञासुओंके गम्भीर प्रश्नोत्तर होते थे। परन्तु अपने-राम तो 'सगुण ब्रह्म-रति उर अधिकाई' वाले थे। इसलिए एकान्तमें ही अधिक रमते थे। उन्हीं दिनों स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती संन्यास लेकर तुरन्त वहाँ आये हुए थे। मैं अधिकतर उन्हींके पास रहता था और वे ही साधनविषयमें मुझपर विशेष कृपा रखते थे।

सेवा और साधनकी प्राप्ति

इसके कई वर्ष पश्चात् एक दिन प्रातःकाल वृन्दावनमें स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीसे श्रीमहाराजजीके सम्बन्धमें बातचीत हो रही थी। उन्होंने कहा, "यदि तुम भगवान् रामको प्रसन्न करना चाहते हो तो श्रीशङ्करजीकी सेवा करो। हमारे श्रीमहाराजजी शङ्कर-स्वरूप ही हैं। उन्हींकी सेवासे तुम अपना अभीष्ट प्राप्त कर लोगे।" प्रारब्ध अनुकूल था। अतः श्रीमहाराजजीकी ओरसे स्वीकृति मिल गयी। वैशाख शु० ९ सन् १९४५ ई० से मैं श्रीमहाराजजी की चरणसेवामें रहने लगा। नित्य नए अनुभव होते थे। वे मेरे मन की एक-एक वृत्तिको क्रियारूपमें परिणत होनेसे पहले ही जान लेते थे और कछवी जैसे अपने अण्डोंकी रक्षा करती है वैसे ही, मैं दूर रहूँ अथवा समीप, हर समय व्यवहार और परमार्थ दोनोंहीमें मेरी रक्षा करते थे।

वृन्दावनकी ही एक घटना है। एक दिन मैंने सोचा, लोग कहते हैं कि श्रीमहाराजजीको अन्नपूर्णा सिद्ध है, इनके पास कोई भूखा नहीं रह सकता। आज मैं भोजन नहीं करूँगा। इस बातकी चर्चा मैंने किसीसे नहीं की। सारा दिन बीत गया। रातके नौ बजे कीर्तन समाप्त होने पर श्री महाराजजी कुटियामें आये। एक घण्टे

तक सत्संग होता रहा। अन्तमें सब लोग प्रणाम करके चले गये। मैं सोच ही रहा था कि आज तो मेरा व्रत पूर्ण हो गया कि इतने ही में आप बोले, "रामजी* ! बेटा ! देखो, नीचेसे दो रोटी और साग ले आओ।" मैं नीचे गया तो देखा एक कटोरेमें दो रोटी और साग रखे हैं। लाकर श्रीमहाराजजीको दिया। उसमें से थोड़ा सा पाकर मुझे देते हुए बोले, "बेटा ! यहीं पर पा लो।" मैं आश्चर्य में पड़ा। मुखसे निकल गया, "महाराजजी ! मेरी तो इच्छा नहीं है।" आप बोले, "नहीं, कोई नुकसान नहीं करेगा।" उन दिनों मेरे लिये कठोर आज्ञा थी कि केवल एक बार मध्याह्नमें ही भोजन करना, और आज रात्रिके दस बजे स्वयं ही उस नियमको तुड़वा रहे हैं ? आखिर दिनभरके उपवासके पश्चात् रात्रिके दस बजे मुझे पारण कराकर उन्होंने अपनी बात रखी। उस दिनके पश्चात् फिर कभी रात्रिके समय आपने मुझसे भोजन के लिये नहीं पूछा। ऐसी अनेक घटनाएँ प्रायः हुआ करती थीं।

श्रीमहाराजजी आसन, प्राणायाम और योग-सम्बन्धी क्रियाएँ बड़ी सुगमतासे समझा दिया करते थे। अब भी स्वप्न तथा जाग्रत में उनसे सम्बन्धित अनेक घटनाएँ होती रहती हैं।

लीलासंवरणके पश्चात्

श्रीमहाराजजीने जब अपनी लौकिक लीला संवरण कर ली तो अपना कोई सहारा न देखकर उनके वियोगमें बड़ी व्याकुलता हुई। मनमें आया कि चलो उत्तराखण्डमें चलकर अपना जीवन समाप्त कर दें। इसी संकल्पसे स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीके साथ उत्तराखण्ड की यात्रा की। परन्तु देहरादून पहुँचकर श्रीस्वामीजी

---

*आचार्यचरण का पूर्वाश्रम का नाम।

तो मनोरञ्जनमें लग गये, किन्तु मुझे वहाँ भी श्रीमहाराजजीके वियोगमें स्मशान-सा लगता था। अतः मैं बिना किसीसे कुछ कहे चल दिया और यमुनोत्तरी होता हुआ गंगोत्तरी पहुँचा। वहाँ रात्रि-में, स्वप्नमें मकरवाहिनी भगवती भागीरथी श्रीगंगाजीने दर्शन दिया और कहा, "बेटा ! घबराओ मत। तुम्हें महाराजजीके दर्शन अवश्य होंगे।" यह कह कर वे अन्तर्धान हो गयीं और मेरी निद्रा खुल गयी।

प्रातःकाल होनेपर मैं गंगातटकी एक शिलापर बैठकर ध्यान करने लगा। थोड़ी देरमें मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वहाँका स्थान नहीं है, श्रीवृन्दावनका आश्रम है। श्रीमहाराजजी अर्धपद्मासनसे बैठे हैं और मैं उनके चरणोंपर सिर रखकर कह रहा हूँ, "महाराज़जी ! मुझे मत छोड़िये।" वे कह रहे हैं, "तुमने मेरे पास रहकर क्या नहीं सीखा है ? देखो, मैं तो स्वस्थ हूँ, प्रसन्न हूँ, सदा तुम्हारे पास ही हूँ और रहूँगा भी। तुम्हारे सामने जो घटनाएँ हुई हैं, वह सब तो माया का खेल था। तुम दुःख मत मानो। जब मैं तुम्हारा रक्षक सर्वदा तुम्हारे पास हूँ तो फिर चिन्ता क्यों करते हो ?" इसके पश्चात् आँखोंके सामनेका दृश्य बदल गया। देखता हूँ कि वही गंगातट है, मैं शिलापर बैठा हुआ हूँ और नीचे श्रीगंगाजी कलरव करती तीव्र वेगसे बह रही हैं। इस घटनासे मनमें हर्ष और विषाद दोनों हुए। श्रीमहाराजजीके वाक्योंको स्मरण करके उठा और निवासस्थानपर आया। यह स्पष्ट अनुभूति यात्रामें महीनों मानस नेत्रोंके सामने नाचती रही। आज भी उस घटनाका स्मरण करके हृदय भर आता है।

संन्यास ग्रहणकी प्रेरणा

एक बार अनूपशहरके पास अवन्तिका देवीके स्थान पर मैं इस संकल्पसे कि भगवतीके दर्शन होते हैं या नहीं, रात्रि-भर मन्दिरमें बैठा रहा। प्रातःकाल मन्दिरमें ही शवासनसे लेट गया। निद्रा आगयी। ऐसा मालूम हुआ कि कोई स्त्री कह रही है, "तुम भी तो श्रीमहाराजजीकी आज्ञाका पालन नहीं करते।" मैंने पूछा, "मैं किस आज्ञाका पालन नहीं करता ?" उत्तर मिला, "तुमको महाराजजीने दुर्गापाठकी आज्ञा दी थी, सो तुमने छोड़ दिया है।" इसके पश्चात् मैं जग गया और वहाँसे अनूपशहर आकर इकतालीस दिनोंमें शतचण्डीका अनुष्ठान किया। अनुष्ठान-समाप्तिके तीसरे दिन मैं गणेश-मन्दिरमें सोया हुआ था। प्रातःकाल पाँच बजे स्वप्नमें श्रीमहाराजजीने आज्ञा दी कि जाओ, तुमको पूर्व-में ऐसे महात्मा मिलेंगे जिनसे मिलकर तुम्हें चित्तमें विशेष सन्तोष प्राप्त होगा। वे मेरे स्वरूप ही हैं। जब मेरी नींद खुली, तो सोचने लगा कि कहाँ जाऊँ ? किससे पूछूँ ? उसके थोड़े दिन बाद ही मेरे मनमें ब्रह्मचर्याश्रमसे संन्यास ग्रहण करनेकी इच्छा हुई और मैंने प्रयाग आकर ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजी सरस्वतीसे विधिवत् संन्यास ग्रहण किया। इस प्रकार श्रीमहाराजजीके उन वचनोंकी संगति ठीक-ठीक लग गयी, जो उन्होंने अनुष्ठानके अनन्तर मुझसे कहे थे।

पीठस्थ होनेके पश्चात्

अभी मार्गशीर्ष कृ० २ सं० २०१० की बात है। एक दिन रात्रि-के समय मैं पीठके विषयमें विचार कर रहा था। अन्तःकरणमें कोई ठीक-ठीक समाधान नहीं होता था। संकल्प-विकल्पमें ही

अधिकांश रात्रि व्यतीत होगयी। प्रातःकाल चार बजे श्रीमहाराजजी-के दर्शन हुए। मैंने प्रार्थना की कि मैं अपनी इच्छासे नहीं, भगवत्प्रेरणा या प्रारब्धवश ही इस पीठपर आया हूँ। यदि भगवत्प्रेरणा है, तो इसके विरुद्ध संघर्ष नहीं उठना चाहिये था। और यदि संघर्ष है, तो इसे भगवदिच्छा नहीं कह सकते। इस सम्वन्धमें आपकी क्या राय है? इस पर श्रीमहाराजजी ने कहा, "देखो, इसीलिये मैंने तुम्हें तुम्हारे गुरुके पास कर दिया है। वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे। तुम अपने गुरुकी आज्ञाका पालन करो। इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा।" फिर दुर्गापाठके विषय में पूछनेपर आपने आज्ञा दी कि अब तुम दुर्गापाठ मत करो। अब यह तुम्हारे लिये उपयोगी नहीं है। इसके पश्चात् नींद खुल गयी और बड़ा कौतूहल मालूम हुआ।

श्रीमहाराजजी का जीवन चलते-फिरते ब्रह्मका जीवन है। उनमें हमें आत्मारामता, पूर्णकामता, ज्ञान, वैराग्य, तितिक्षा, उपरति, समता, सरलता, क्षमता, त्याग, निःस्पृहता, असङ्गता, निर्भयता और उदारता आदि अनेक सद्गुणोंका साक्षात् दर्शन होता है।

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्त्तिभेदविभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्त्तये नमः॥
भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्।
अद्वैतं त्रिषु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह॥

पूज्यपाद श्रीहरिबाबाजी महाराज

बाबाका प्रत्येक भक्त जैसे यह अनुभव करता है कि वे सबसे अधिक मुझसे हीं प्रेम करते थे, उसी प्रकार मेरा भी यही अनुभव है कि इस शरीरपर बाबाका अपार प्रेम था। उनका प्रेम माता-पितासे भी बढ़कर था। बाबा साक्षात् प्रेमकी मूर्त्ति थे। मुझे तो यह स्पष्ट दीख रहा है कि बाबाने मुझ पर जितना प्रेम किया उतना विश्वमें और किसीने नहीं किया। बाबा और मुझमें संकोचवश कभी खुलकर बात नहीं होती थी। कदाचित् एक दो बार ही ऐसा अवसर आया है जब हम दोनोंमें थोड़ी बात हुई हो। ऐसा भी देखनेमें आया कि यदि बाबा कथा कहते होते और मै पहुँच जाता तो वे रुक जाते थे। कीर्तनकी घण्टी बजते ही बाबा कहने लगते, "अरे ! चलो, चलो, हरिबाबा कीर्तन में पहुँच गये, और स्वयं भी शीघ्रतासे चल देते।"

एक बार मैं बाबाका दर्शन करने रामघाट गया और रात्रि में पञ्चवटीमें सोया। आश्विनका महीना था। रात्रिमें मुझे ठण्ड लग रही थी। परन्तु मैं सो गया। रातमें बाबा आये और चुपकेसे मुझे कम्बल ओढ़ाकर चले गये। प्रातःकाल जब मैं पता लगाने लगा कि रातमें मुझे कम्बल किसने ओढ़ाया तो किसीने भी नहीं बताया। अन्तमें पता चला कि बाबा ही ओढ़ा गये थे। इतना स्नेह वे करते थे।

एक बार मैं बाँध पर बीमार पड़ा। शारीरिक कष्ट विशेष नहीं था। किन्तु बुखार हर समय बना रहता था। शरीर सूखकर लकड़ी-

सा हो गया था। डाक्टर-वैद्य निराश हो चुके थे। सब लोग अत्यन्त दुखी हो रहे थे और मेरे जीवनकी आशा छोड़ चुके थे। वृन्दावन-में तो यहाँ तक बात फैली कि हरि बाबा मर गये। एक दिन रात्रि-में बाबा आये और सबको बाहर करके स्वयं किवाड़ बन्द कर लिये। मैं मरणासन्न अवस्थामें पड़ा हुआ था। बाबाने मेरे आसनपर लेटकर मुझे हृदयसे लगाकर गाढ़ आलिंगन किया। उनके प्रेम भरे आलिंगनमें ऐसी शक्ति थी कि मै उसी समयसे अच्छा हो गया। इस प्रकार मेरा यह जीवन और साधन बाबाका ही दिया हुआ है।

मैं प्रारम्भमें जब मैं बाँधके समीपवर्ती गाँवोंमें संकीर्तन करने-कराने लगा तो गंगा तटपर रहनेवाले जितने ज्ञाननिष्ठ संत थे प्रायः उन सभोने संकीर्तनका विरोध किया। कहने लगे, "संन्यासी होकर कीर्तनमें नाचते हैं!" एक बाबा ही ऐसे थे जिन्होंने सच्चे हृदयसे हरिनामसंकीर्तनका समर्थन किया, और केवल मौखिक समर्थन ही नहीं प्रत्युत् जीवनभर स्वयं भी उसका प्रचार करते रहे। यदि बाबा न होते तो यह संकीर्तनप्रचार कभीका बन्द हो गया होता, मेरे मनमें कई बार सकीर्तनोत्सवोंको बन्द कर देनेकी आयी, परन्तु बाबा सदैव प्रोत्साहन देते रहे। वे कहा करते थे कि हमें तो महोत्सव करना है, दूसरे क्या कहते हैं—यह देखना नहीं है।

संकीर्तनके प्रारम्भमें ॐकार-ध्वनिके प्रश्नको लेकर बड़ा आन्दोलन चला। श्री करपात्रीजी आदि महात्माओंने इसका विरोध किया और मेरे पास समाचार भेजे। परन्तु बाबाने स्पष्ट कह दिया—"हरिबाबा महात्मा हैं, वे जो करते हैं ठीक ही करते हैं। उसमें कुछ भी अनुचित नहीं है।"

कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि कथा कहते समय मैं ऐसा अर्थ

कर देता जो टीकाकारोंके अर्थसे भिन्न होता। परन्तु बाबा कहते, "नहीं, हरिबाबा जो अर्थ करते हैं वही ठीक है।" बाबाने ही ललिताप्रसादको प्रोत्साहन देकर मेरा जीवन-चरित लिखवाया। जब वह लिखनेमें अपनी असमर्थता प्रकट करता तो वे कहते—"नहीं रे! तू जो लिखेगा वही ठीक होगा।"* मैंने कभी अपनेको बाबाके बराबर आसनपर बैठने योग्य नहीं समझा। मुझे सदैव इस बातसे संकोच होता था। परन्तु यदि मैं उनके बराबर आसनपर नहीं बैठता था तो वे उदास होजाते थे। इससे उनकी प्रसन्नताकेलिये मुझे भी आसनपर बैठना पड़ता था।

सं० १९९५ की श्रीकृष्णजन्माष्टमीकी रातको मैंने श्रीवृन्दावनमें एक स्वप्न देखा कि यूनीवर्सिटीकी ऊँची परीक्षामें मैं सबसे अधिक नम्बरोंसे पास हुआ हूँ। उसी समय एक व्यक्ति कहने लगा, "अबसे पहिलेकी परीक्षाओंमें दूसरे लोग इससे भी अधिक नम्बरोंसे पास हो चुके हैं।" तब बाबा बोल उठे—"नहीं, इतनी कठिन परीक्षा इससे पहिले कभी हुई ही नहीं थी।"

भक्तियोगमें श्रद्धा ही प्रधान है। जिनके हृदयमें श्रद्धाकी कमी है वे भक्तिमार्गके अधिकारी ही नहीं हैं। शिष्यके लिये यह श्रद्धा कि मेरे गुरुदेव साक्षात् भगवान् हैं परम आवश्यक है। चाहे

---

*जिस समय सत्संगमें श्रीहरिबाबाजी उपर्युक्त शब्दोंमें श्रीमहाराजजीके सम्बन्धमें अपने हार्दिक उद्गार प्रकट कररहे थे उस समय पण्डित सुन्दरलालजी उनके पास ही बैठे थे। इन वाक्योंको सुनकर वे गद्‌गद होगये और बोल उठे, "महाराज! बाबाने तुम्हारे एक कुत्तेका भी बड़ा आदर किया है। वे अपने आदमियोंका उतना ध्यान नहीं रखते जितना तुम्हारे लोगोंका रखते थे।" यह कहते-कहते पण्डितजी का गला भर आया।

—संग्रहकर्ता

गुरु पूर्णतया योग्य न हों तो भी जिस शिष्यकी ऐसी दृढ़ धारणा है कि मेरे गुरु परमेश्वर हैं उसका कल्याण अवश्य हो जायगा। वह जो चाहेगा उसी गुरुके द्वारा प्राप्त कर लेगा। परन्तु जिसके हृदय में श्रद्धा नहीं है उसके सामने साक्षात् भगवान् आ जायें तो भी वह उनसे कुछ लाभ नहीं उठा सकेगा। एक बार बाँधपर बाबाने ऐसी श्रद्धाके विषयमें एक कथा सुनाई थी। वह इस प्रकार है—

प्राचीनकाल की बात है, एक धनाढ्य पुरुष था। उसके घर में एक छोटा बालक, स्त्री तथा अन्य कई प्राणी थे। वह श्रद्धालु और विश्वासी भक्त था तथा संत-महात्माओंका बड़ा प्रेमी था। उसके गुरु बहुत योग्य नहीं थे, तथापि वह उनमें परमेश्वर-बुद्धि रखता था। एक दिन गुरुने किसीके यहाँ चोरीक अन्न भोजन कर लिया और उस दूषित अन्नके प्रभावसे उनकी बुद्धि मलिन हो गयी। कहावत है—'जैसा खावे अन्न, वैसा बने मन।' संयोग की बात उसी दिन धनीका सुन्दर बालक, जिसके शरीरपर सहस्रों रुपयोंके बहुमूल्य आभूषण थे, खेलता हुआ गुरुजीके पास आया, एकान्तमें बालक-के शरीर पर सहस्रों रुपयेके बहुमूल्य आभूषण देखकर गुरु के मन में लोभ उत्पन्न हो गया। उसने वालकको गला घोंटकर मार डाला और उसके सारे आभूषण उतार कर लाशको सन्दूकमें बन्द कर एक ओर छिपा दिया।

उधर जब बालकके आनेमें विलम्ब हुआ तो सारे घरमें खलबली मच गयी। ढूँढ़-खोज होने लगी, पर कहीं पता न चला। यह सोचकर कि कदाचित् बालक गुरुजीके पास चला गया हो धनी स्वयं उनके पास आया और उनसे बालकके विषयमें पूछा। महात्मा सीधे थे, बोले—"भाई ! तुम्हारा बालक आया तो था, परन्तु मैंने उसे मार दिया है।" यह सुनकर धनी बोला—'नहीं,

महाराज ! आप तो परम कृपालु हैं, आप भला बच्चेको कैसे मार सकते हैं ? आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं।" महात्मा बोले—"अरे भाई ! मैं परीक्षा नहीं ले रहा हूँ। मैने सचमुच ही बालकको मार दिया है। तुम्हें विश्वास न हो तो उस सन्दूकको खोलकर देख लो।" धनीने सन्दूक खोली तो सचमुच बालकको मरा पाया। उसने लाश बाहर निकाली और गुरुजी से कहा—"महाराज ! मुझे तो विश्वास नहीं होता कि आप बालकको मार सकते हैं। परन्तु आपके कथनानुसार यदि आपने ही मारा है तो आपकी चरण-धूलि इसे जिला भी सकती है। आपकी चरणरजके प्रताप से क्या नहीं हो सकता।" इतना कह कर उसने गुरुजीकी चरणधूलि ली, थोड़ी बालकके सिरसे स्पर्श कराई और थोड़ी उसके मुखमें डाली, और बोला—"हे मेरे गुरुदेवकी चरणधूलि ! तेरे प्रतापसे मेरा मरा हुआ बालक जी उठे।" इतना कहते ही बालक जी उठा और पिता ने उसे हृदयसे लगा लिया। सच है—

'प्रतिमामन्त्रतीर्थेषु भेषजे वैष्णवे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥'

यह घटना देखकर महात्माको बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही अभिमान भी।

भगवान् किसीका अभिमान नहीं रखते। कुछ दिन बीत जाने पर फिर वैसा ही कुयोग जुट गया। इस बार पड़ोसीका एक बालक मिल गया। महात्माको गर्व तो था ही, उस बालक को मार कर उसके आभूषण उतार लिये और उसे सन्दूकमें बन्द करके एक ओर छिपा दिया। पड़ोसी बालकको ढूँढ़ता महात्माके पास आया और उनसे उसके विषयमें पूछा। महात्माने पहले ही की भाँति सारी

सच्ची बात सुना दी। पड़ोसीने सन्दूक खोलकर बालककी लाश निकाली और शोक तथा क्रोधके आवेशमें आकर कहने लगा—"अरे मूर्ख ! तू साधु है या कसाई। तूने मेरे बालककी हत्या की है, इसका फल तुझे अभी चखाता हूँ।" महात्मा बोला—"अरे मूर्ख ! क्या बकता है ? मैं महात्मा हूँ। मेरी चरणधूलिके प्रभावसे मृतक भी जीवित हो सकता है।" पड़ोसी बोला, "तू महात्मा है ही नहीं। तू तो हत्यारा है। मैं अभी राजाको सूचना देता हूँ और तुझे जेल की हवा खिलाता हूँ।" महात्माने पुनः जोर देकर कहा "अरे भाई ! तू मेरी चरणरज लेकर देख तो सही, बालक जीवित होता है या नहीं।" पड़ोसीके हृदयमें श्रद्धा-विश्वास तो था नहीं। फिर भी उसने जैसे-तैसे महात्माकी चरणधूलि ली, बालकके मुख में डाली और उसके मस्तकपर लगायी। परन्तु बालक जीवित न हुआ अब वह बोला "अब तुझे अपनी करतूतका फल भोगना पड़ेगा।" महात्मा-ने कहा, "अच्छा, तू मेरे शिष्यको तो बुला। देख, बालक जीवित होता है या नहीं ?" पड़ोसीने शिष्यको बुलाया। उससे महात्माने पूछा, "क्यों भाई ! मेरी चरणरजके प्रतापसे क्या यह बालक जीवित नहीं हो सकता ?" शिष्यने पूर्ण विश्वासपूर्वक कहा, "क्यों नहीं जी सकता गुरुदेव ! आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आपकी चरणधूलिके प्रभावसे यह बालक अवश्य जीवित हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।" इतना कहकर उसने ज्यों ही गुरुकी चरणधूलि लेकर बालकके सिरसे लगायी और उसके मुँहमें डाली कि बालक जी उठा। यह देखकर पड़ोसीके हर्ष और आश्चर्यका ठिकाना न रहा और महात्मा का अभिमान भी गल गया। सभीने श्रद्धा-विश्वास-को महिमा स्वीकार की। श्रद्धा-विश्वासमें अपार शक्ति है—'विश्वासं फलदायकम्।'

बाबाकी वाणी ब्रह्मवेत्ताकी वाणीके समान मधुर थी। शास्त्रमें लिखा है कि ब्रह्मवेत्ताकी वाणी मधुर होती है। वे केवल वाणीसे ही लोगोंको आकर्षित कर लेते थे। अन्य महापुरुषोंके समान वे अपने शारीरिक कष्टोंको किसीपर प्रकट नहीं करते थे। जिस समय हम सरहिन्दमें उस स्थानका दर्शन कर रहे थे जहाँ गुरु गोविन्दसिंहके दो पुत्रोंको दीवारमें चुन दिया गया था और यह दिखानेके लिए उनकी माताको सामने खड़ा कर दिया था, मेरी दृष्टि बाबाकी ओर गयी। मैंने देखा कि बाबाकी आँखोंसे आँसू झर रहे हैं। उनका शरीर तो अस्वस्थ था ही। वे बहुत शिथिल प्रतीत हुये। तथापि वे किसीसे कहते कुछ नहीं थे। उन्हें अस्वस्थ देखकर मैंने आगेकी यात्रा स्थगित कर दी। परन्तु वे तो फिर भी कहते थे, "नहीं, कोई बात नहीं है, उत्सव होना चाहिये।"

श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णने 'धृति' शब्दकी जो व्याख्या की है वह बाबामें पूर्णतया घटती थी। धृति का अर्थ सामान्यतया धैर्य है, परन्तु भगवान्के मतमें उसका एक विशिष्ट अर्थ है—जिह्वा और उपस्थपर पूर्ण विजय प्राप्त करना—'जिह्वोपस्थजयो धृतिः'। (भागवत) जिह्वाका अर्थ है रसनेन्द्रिय और उपस्थका अर्थ है जननेन्द्रिय। ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जिसने रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियके विषयोंकी ओर बाबाके मनमें तनिक भी आकर्षण देखा हो। वे ज्ञानी और योगी थे—यह तो जुदी बात है, मेरी दृष्टिमें तो उनमें सबसे बड़ा गुण यह थाकि वे रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियपर पूर्ण विजयी थे। इसीसे बहुतेरे लोग उन्हें ईश्वर मानने लगे थे।

पूज्य स्वामी श्रीहीरानन्दजी महाराज, सरैयापुर

जल वहीं ठहरता है जहाँ गढ़ा होता है। बाबा उपदेश तो सभीको करते थे, परन्तु उनके उपदेशको धारण वे ही लोग कर सकते थे जिनका अन्तःकरण शुद्ध था।

बाबामें सबसे बड़ी सिद्धि मैंने यह देखी कि वे सदैव प्रसन्न रहा करते थे। मैं उनके साथ दस-दस दिन तक रहा हूँ, तथापि उन्हें सदैव प्रसन्न देखता था। स्वरूपका बोध हुए बिना ऐसी प्रसन्नता सदैव नहीं रहती। यह सिद्धि तो सभी सिद्धियोंकी सिरमौर है। हम भगवान्‌की शरण में हैं, उन पर हमारा विश्वास है—इस बातकी कसौटी ही यह है कि सदैव प्रसन्न रहा जाय। नहींतो दुःख घेर लेता है।
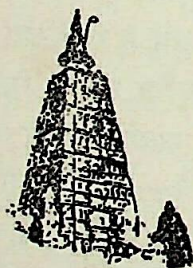
पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज

प्रथम मिलन

जलेसरके कोई सज्जन थे। उनके मनकी कोई कामना बाबाके द्वारा पूरी हुई थी—यह मैंने सुन रक्खा था। एक दिन जलेसरमें ही मैंने सुना कि बाबा आएहुए हैं। मुझे सन्तोंसे मिलनेका शौक तो पहले ही से था। एक सन्तरा लेकर मैं उनके दर्शनोंके लिए चल पड़ा। स्वामीजी एक पेड़के नीचे बैठे हुए थे। मैंने जाकर दर्शन किया और निवेदन किया कि आप बगीचेकी कुटी पर चलिये। बाबा बोले, "भैया! अब तो बैठ गया हूँ। आज यहीं रहूँगा।" उस दिन वे वहीं रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल मैं फिर गया। उस दिन जाते ही वे उठकर मेरे साथ चल दिये। उस समय जलेसरमें आप पहली बार ही आये थे। वहाँ उनका कोई भक्त नहीं था। फिर भी मैंने देखा कि उनके पास भेटमें फल और मिठाइयाँ बहुत आती थीं तथा दिन भर दर्शनार्थियोंका मेला-सा लगा रहता था। हरेक मतके आदमी उनके दर्शनार्थ आते थे। हिन्दू, मुसलमान, सनातनधर्मी और आर्य-समाजी जो भी आता बाबा उसके साथ प्रेमसे मिलते थे। उनकी शङ्काओंका समाधान करते और प्रत्येक साधकको उसकी योग्यतानुसार साधन में ही दृढ़ करने की बात करते थे। बाबा ने, जैसा कि उनका स्वभाव था, बड़े प्यारसे मेरे सिरपर हाथ रखा। मेरे हृदय पर उनकी ममता, स्नेह और सहज भावका अच्छा प्रभाव पड़ा। मैंने पूछा, "स्वामीजी! दृश्य का यथार्थ स्वरूप क्या है?" वे बोले, "तुम्हें क्या जान पड़ता है?"

मैंने कहा। "कुछ नहीं।" तब वे भी बोले, "कुछ नहीं।" मैंने स्वामीजीको कभी किसीको बुराई करते नहीं सुना। वे अपनी बुराई करने वालेकी भी बुराई नहीं करते थे। यह उनमें खास गुण था। यही उनके साथ मेरा प्रथम मिलन था। इससे मनमें उनके दर्शनोंको इच्छा रहने लगी। इसके पश्चात् एक बार स्वप्नमें भी मुझे उनके दर्शन हुए।

कुछ स्मरणीय घटनाएँ

(१)

इसके कुछ काल पश्चात् जलेसर निवासी मुनसरिमप्रसादजी एक दिन मुझसे बोले कि बाबा रामघाटमें हैं, वहाँ चलिए। मैं गया और आठ दिन बाबाके पास ठहरा। एक दिन सब लोग भोजन कर रहे थे। मेरे समीप एक ब्रह्मचारी बैठा हुआ था। बाबा सबको पूड़ियाँ परोस रहे थे। कुछ पूड़ियाँ मोटी थीं और कुछ पतली। मेरी पत्तलमें उन्होंने दोनों तरह की पूड़ियाँ परोसी थीं। उनमें पतली नीचे थीं और मोटी ऊपर। इसी प्रकार ब्रह्मचारीको पत्तल में भी थी। मैं तो स्वाभाविक रूपसे जो ऊपर थीं उन्हें पहले पाने लगा। परन्तु ब्रह्मचारीने पतली पूड़ियाँ ऊपर निकालकर पहले उन्हें खाना आरम्भ किया। बाबाकी दृष्टि उसपर पड़ी। तब उन्होंने उसे समझाते हुए कहा, "तुम साधु होकर ऐसा करते हो ?" इससे मेरे मनपर यह प्रभाव पड़ा कि बाबा छोटी-छोटी बातोंमें भी साधन-निर्माण करनेमें दूसरोंके हितपर कितना ध्यान रखते हैं। बाबा औरोंकी तरह मुझे बार-बार थोड़ा-थोड़ा प्रसाद नहीं देते थे। एक बार पूरा भोजन परोस देते थे, वह भी सात्त्विक दाल-

रोटी आदि। वे साधुओंसे वैराग्य और ध्याननिष्ठाकी बातें बहुत करते थे।

(२)

पहले जब मैं राजनैतिक कार्य करता था तब मुझे जेल जाना पड़ा था। जेलके नियमानुसार जब मुझसे गेरुआ वस्त्र उतारनेके लिए कहा गया तो मैंने स्वीकार नहीं किया। तब बलपूर्वक वस्त्र उतरवा लिए गए और मुझे तनहाई (एकान्तवास) में रखा गया। इसपर मैंने अनशन किया तो मेरे वस्त्र मिल गये। तब मेरे मन-में आया कि गेरुआ वस्त्रका आग्रह न रखकर अलिङ्ग संन्यासी-की तरह रहूँगा। किन्तु बाबाने मुझे गेरुआ न छोड़नेकी ही सम्मति दी और कहा कि आज-कल धार्मिक चिह्नोंको धारण करना आवश्यक है।

(३)

एक बार मैं मोहनपुरमें बाबाके पास गया। कुछ दिन वहाँ ठहरकर जब जाने लगा तो बाबासे पूछा, "मैं जाऊँ ?" बाबा बोले, क्या मैंने तुम्हें बुलाया था ?" इस उत्तरसे मुझे खेद नहीं हुआ बल्कि मैंने अनुभव किया कि साधुको ममता नहीं रखनी चाहिए, यह तो गृहस्थोचित स्वभाव है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जिस प्रकार बिना पूछे मेरी निष्ठाके अनु-सार मेरी स्थितिकी बात कहते और आगेकी बात बता देते थे उसी प्रकार बाबा भी बिना पूछे मेरी स्थितिके अनुसार बातें बतला देते थे। मेरा पक्का विश्वास है कि बाबा सबको पहचानते थे और सदाचार प्रेम एवं त्यागका आदर करते थे।

(४)

प्रयागकी अर्ध कुम्भीके अवसरपर बाबा पधारे थे। मेरे

निकटवर्ती बहुत लोग चाहते थे कि बाबाको बुलाया जाय। परन्तु मैं सोचता था कि उनके आनेपर स्वागत-सत्कारका प्रबन्ध कैसे होगा। आखिर, एक दिन बाबा पधारे। तब जिनके स्थान पर मैं ठहरा हुआ था, उन्होंने भक्तपरिकरसहित उन्हें भिक्षाके लिये आमंत्रित किया। उस समय ऐसा संयोग हुआ कि एक सज्जनने पहले ही पर्य्याप्त भोजन-सामग्री पहुँचा दी थी। इसी प्रकार वे जहाँ-कहीं भी जाते थे, अपने आप उनका सब प्रबन्ध होजाता था। वे कहीं भी चले जाएँ, भोजन उनके पीछे-पीछे दौड़ता था। इससे मेरे मनपर यह प्रभाव पड़ा कि जो चाह से रहित महापुरुष होते हैं, उनके लिए प्रकृति स्वयं कार्य करती रहती है।

(५)

एक बार बाबा फर्रुखाबादमें थे। उस समय एक दिन स्वामी सच्चिदानन्दजी और स्वामी रामदेवजी के साथ उनका सत्संग हो रहा था। स्वामी सच्चिदानन्दजीने कहा, "ईश्वर भी जड़ है।" उस दिन बाबाको बुखार आ गया। मुझसे बोले, "आज मुझे बहुत वर्षों बाद ज्वर आया है। देखो, इन्होंने व्यतिरेक तो किया, पर अन्वय नहीं किया। सबको जड़ रूप तो कहा, परन्तु सब कुछ चैतन्य भी तो है।"

(६)

एक बार बाबा जलेसरमें थे। उनके पास एक भक्त आये और 'लखी जिन लाल की मुसकान' यह प्रसिद्ध पद गाने लगे। तब बाबा बोले, "इस रस का आस्वादन किसके प्रकाश से होता है, उसे भी तो जानना चाहिए।" इस पर वे सज्जन कुछ कहने लगे। तब बाबा मुझसे बोले, "देखो, लोग सत्यको जानते हुए भी मानना नहीं चाहते।"

बाबा कभी-कभी कहते थे, "पढ़-लिखकर विद्वान् तो बना जा सकता है, परन्तु बिना संत-मिलनके कोई संत नहीं बन सकता ।

(७)

एक बार कार्तिक मासमें बाबा फर्रुखाबादमें थे । शरीर अस्वस्थ था । वहाँ वि[illegible]जी नामकी एक लड़कीने चान्द्रायण व्रत किया था । उसे बाबाके दर्शनोंकी इच्छा हुई और उसने अपनी एक धर्म-बहिनके द्वारा बाबासे भिक्षाके लिये प्रार्थना करायी । वह ताँगा लेकर बाबाको लेनेके लिये गयी । किन्तु बाबाने 'मैं सवारीपर नहीं बैठता' ऐसा कहकर ताँगा तो वापिस कर दिया और स्वयं उस अस्वस्थ अवस्था में ही प्रायः दो मील पैदल चलकर गये तथा दो-तीन ग्रास खाकर लौट आये । मेरा विश्वास है कि बाबा हृदयके प्रेमको खूब पहचानते थे और उसका खूब आदर करते थे ।

(८)

बाबाको देशप्रेमी बड़े अच्छे लगते थे । मोहनपुरके देशप्रेमियों-से मिलनेके लिये तो वे जेलमें गये थे । दूसरोंकी भाँति वे देश-सेवाको प्रपंच या झंझट नहीं समझते थे । वे एक उदारचित्त महापुरुष थे ।

एक बार बाबा बोले, "देखो, भैया ! कुछ लोग तो संकल्पपुर में रहते हैं । कोई उससे पार होने पर खुदनगर में टिक जाते हैं । किन्तु जो उससे भी पार चले जाते हैं, वे शान्तिपुर में निवास करते हैं ।"

पूज्य स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजी महाराज, भगवानपुर

बहुत दिनोंकी बात है, मैं भृगुक्षेत्र (भेरिया) में था। वहाँ एक भंडारा हुआ। स्मरण नहीं कि वह भण्डारा किस निमित्तसे हुआ था। मैं भिक्षा करके कुटियाके सामने नीमके नीचे टहल रहा था। ठीक इसी समय श्रीगंगातटसे ऊपरकी ओर आते हुए श्रीस्वामीजी महाराजके दर्शन हुए। उस समय सबसे पहले सात-आठ दिन आपके साथ रहनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था। फिर तो समय-समयपर कई बार मिलते रहे।

श्रीवृन्दावनमें आपके आश्रमकी प्रतिष्ठाका महोत्सव होने वाला था। तब आपने सागर और भगवतीको लवङ्ग-इलायचीका प्रसाद देकर मुझे उत्सवमें लानेके लिये भेजा। परन्तु उस समय वहाँ जानेकी मेरी रुचि नहीं हो रही थी। अतः मैं नहीं गया। फिर उन्होंने गिरिधारीको भेजा और उसे उड़िया लिपिमें यह श्लोक लिखकर दे दिया—

> आस्तां तावद्वचनरचनाभाजनत्वं विदूरे
> दूरे चास्तां मम तव परीरम्भसम्भावनापि।
> भूयो भूयो प्रणतिभिरिदं किन्तु याचेऽहमेकं
> स्मारं स्मारं स्वजनगणने कापि रेखा ममापि॥*

इस श्लोकके भावको समझकर मैं अपनेको नहीं रोक सका और महोत्सवमें सम्मिलित हुआ। वह महोत्सव कथा, कीर्तन, सत्संग प्रवचन और रासलीला आदि सभी कार्यक्रमोंसे बहुत सुन्दर हुआ था। उसकी समाप्तिपर मैं फिर गंगातटपर आगया।

---

*आपके वाणी-विलासकी पात्रता भलेही प्राप्त न हो और मेरे और आपके पारस्परिक आलिङ्गनकी भी कोई सम्भावना न हो; तथापि बारम्बार अत्यन्त प्रार्थनापूर्वक मैं आपसे एक भिक्षा माँगता हूँ। वह यह कि कभी-कभी स्मरण होनेपर स्वजनोंकी गणना करनेके समय मेरी भी कुछ सुधि करलिया करें।

ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी महाराज, झूसी

संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षः सर्वात्मना न विसृजेद् बाहिरिन्द्रियाणि।
एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसङ्गः ॥*

(श्रीमद्भागवत ९।६।५१)

छप्पय

पर हित धारहिं देह संत सुख देत सबन कूं।
स्वयं कष्ट सहि सत्य सिखावें नर-नारिन कूं॥
संत चरित साकार ज्ञान प्रत्यक्ष दिखावें।
है जीवन ही वेद ग्रन्थ तिनके बन जावें॥
केवल पढ़ि समुझत नहीं, पठन कथन इक व्यसन है।
संत करहिं प्रत्यक्ष जब होवे संशय शमन है॥

अवतार पुरुष, सन्त पुरुष और महापुरुष जो कुछ कह गये हैं एवं जैसा जीवन बिता गये हैं, उसी का उल्लेख इतिहास तथा पुराणों

---

*[भगवान् सौभरि यमुनाजलमें डुबकी लगाकर तपस्या कर रहे थे। भीतर उन्होंने एक मत्स्यको मिथुन-धर्ममें स्थित देखा। तभी उनकी भी गृहस्थ बननेकी इच्छा होगयी। उन्होंने पचास विवाह किये अन्तमें वैराग्य होने पर उन्होंने कहा—"मुमुक्षु पुरुषको दाम्पत्य-धर्ममें स्थित संसारी लोगोंका सहवास सर्वथा त्याग देना चाहिये। अपनी इन्द्रियोंको बहिर्मुख न होने देना चाहिये। वह सर्वदा एकान्तमें अकेलाही निवास करे। चित्तको एकमात्र अनन्त ईश्वरमें लगा दे। यदि संग करना ही हो तो भगवत्परायण साधु-पुरुषोंका ही संग करे।

में होता है। भगवान्का जिनके साथ सम्बन्ध है, उनकी प्रत्येक घटना से उपदेश मिलता है। प्राचीन घटनाओंको पढ़नेसे भी हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ता है और लोग उससे उपदेश भी ग्रहण करते हैं, परन्तु पुरानी घटनाओंकी अपेक्षा भी नयी प्रत्यक्ष देखी हुई घटनाओंका हृदय पर बहुत अधिक प्रभाव होता है। संतोंकी समस्त चेष्टाएँ लोक-कल्याणार्थं होती हैं। उनके जीवनकी प्रत्येक घटनासे उपदेश मिलता है। इसीसे आज मैं ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजीके कुछ सुखद संस्मरणोंको पाठकोंके सम्मुख रख रहा हूँ।

उत्कल प्रदेशमें जगन्नाथपुरीके एक विप्रवंशमें आपका जन्म हुआ था। सुनते हैं, ज्योतिषियोंने बत्तीस वर्षकी आयुमें आपका मृत्युयोग बताया था। इसी आयुमें आपने संन्यास लिया। मानो आपका दूसरा जन्म हो गया। घूमते-घामते आप जिला बुलन्दशहरमें गंगातटपर राजघाट-नरौराके समीप, रामघाटमें आगये और अधिक समय वहीं रहने लगे। रामघाट मेरी जन्म-भूमिके समीप ही है। हमारे यहाँ के लोग गंगा-स्नान करने रामघाट जाया करते थे। उसी सम्बन्धसे मैं बाल्यकालसे ही आपके नामसे परिचित था। उड़ीसा प्रान्तके होनेसे ही सब लोग 'उड़िया बाबा' कहने लगे थे। वास्तवमें आपका संन्यासका नाम तो स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ था।

उन दिनों आपके ज्ञान, वैराग्य, त्याग, तितिक्षा एवं सुन्दर स्वभावकी इस प्रान्तमें सर्वत्र ख्याति थी। सहस्रों स्त्री-पुरुष दूर-दूर से आपके दर्शनोंके लिये आते रहते थे। महाराज जहाँ भी जाते, वहीं एक मेला-सा लग जाता था। आप बड़े ही दयालु, मृदुभाषी

और सरल प्रकृतिके थे। जो एक बार आपका दर्शन कर लेता वह सदाके लिये आपका ही बन जाता था। आप जैसा अधिकारी देखते उससे वैसी ही बातें करते थे। युवक आपसे बहुत अधिक प्रभावित होते थे। राजनैतिक विषयों में भी आप बड़ा अनुराग प्रदर्शित करते थे। राष्ट्रीय विचारोंके युवकोंको आप राजनैतिक कार्योंके लिये प्रोत्साहित करते थे। इसी प्रकार जो धार्मिक विचारों के पुरुष आते उन्हें धर्मानुष्ठान सिखाते और जो मुमुक्षः होते उन्हें मुक्तिका मार्ग बताते थे। अन्नपूर्णा आपको सिद्ध थी। कहीं भी बैठ जायँ वहीं भाँति-भाँतिके पदार्थोंके ढेर लग जाते और सैकड़ों पुरुष प्रसाद पाते। आप एक दृष्टिमें ही दर्शनार्थीको अपना बना लेते थे। मुझे तो प्रथम दर्शनमें ही ऐसा अनुभव होने लगा मानो ये मेरे परम आत्मीय हैं। इस अधमपर उन्होंने इतना अनुराग प्रदर्शित किया कि इसमें उसे व्यक्त करनेकी क्षमता नहीं है। सत्पिता जैसे पुत्रकी प्रत्येक बातका ध्यान रखता है उसी प्रकार वे मेरी बातोंका ध्यान रखते थे। मैं जब-जब भी उनके चरणोंमें गया तब-तब ही मुझे नूतन स्फूर्त्ति प्राप्त हुई। उन दिनों उनकी युवावस्था थी तथा त्याग और वैराग्यकी पराकाष्ठा थी। एक काष्ठके कमण्डलुके अतिरिक्त वे और कुछ भी नहीं रखते थे तथा स्वयं घर-घर माधूकरी भिक्षा करनेके लिये जाते थे। एक दिन आपने अपनी भिक्षाकी एक घटना मुझे सुनायी। आपने बताया कि मैं एक गाँवमें भिक्षा करता डोल रहा था। भिक्षा करते-करते मैं एक स्त्रीके यहाँ पहुंचा। उसका लड़का काम पर नहीं जा रहा था। उसने उस लड़केसे मेरी ओर संकेत करके कहा—"देख, काम पर नहीं जायगा तो इसी प्रकार भीख माँगता डोलेगा।" मैं हँसकर वहाँसे चल दिया। बेचारी

बुढ़ियाको यह क्या मालूम था कि ऐसा पुरुष बनना कोई हँसी-खेल नहीं है।

एक प्रसंग आपने और भी सुनाया था। ब्रजमें एक जगह सदाव्रत बँटता था। वहाँ तीन प्रकारसे दिया जाता था। दण्डिस्वामियोंको तो आदरपूर्वक चौकेमें बिठाकर भोजन कराते थे। साधु-संन्यासियोंको पंक्तिमें और कंगालोंको वैसे ही रोटियाँ बाँट दी जाती थीं। हम कंगालोंमें बैठ गये। चार वड़ी-बड़ी मोटी-मोटी रोटियाँ मिलीं। उन्हें लेकर हम बागमें चले आये। सब तो हमसे खायी नहीं गयीं। खानेसे जो बचीं उन्हें हमने दूसरे दिनके लिये जमीन में गाड़ दिया। दूसरे दिन जब यह सेठको मालूम हुआ तो वह अपने दल-बल सहित आया और साथमें भाँति-भाँतिकी चीजें लाया। हमने कहा—"पहले अपनी कलकी भिक्षा समाप्त कर लेंगे तब खायेंगे।"

इन बातोंसे आपकी वृत्तिका थोड़ा-बहुत पता लग सकता है। एक ओर तो यह हाल था और दूसरी ओर आपके बहुत-से भावुक भक्त आरती उतारते थे। इन पंक्तियोंके इस अधम लेखककी समालोचक दृष्टि सदा श्रीमहाराजके मुखकी ओर लगी रहती थी कि इससे इनके मनोभाव में कोई अन्तर तो नहीं आया। परन्तु मैं अपनी बुद्धिके अनुसार जो कुछ समझ सकता था उसका सारांश यही है कि वे मान-अपमान दोनों हीमें उदासीन भावसे रहते थे। उधरके नगरों और गाँवोंमें आपका बड़ा भारी मान था। मुझे जानकीप्रसादजी ने बताया था कि एक बार जब महाराज हाथरस पधारे थे तो उनके पास मिठाई कितनी आयी इसका तो मुझे अनुमान नहीं किन्तु हाँ उस दिन महाराजके ऊपर कई मन फूल अवश्य चढ़ गये

होंगे। सम्पूर्ण शहर फूल और मिठाई लेकर टूट पड़ा था। एक ओर आपके इस भारी सम्मानकी ओर देखते हैं और दूसरी ओर उन्हें घर-घर भिक्षा माँगते देखते हैं तो हमारी बुद्धि चक्करमें पड़ जाती है। तभी तो स्थितप्रज्ञके विषय में कहा है—"मानापमानयोस्तुल्यः तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।"

रामघाटमें इमलीके नीचे एक फूसकी कुटी थी। उसमें सिरकी लगी थी। बाहर एक लँगोटी और भीतर जल भरा कमण्डलु। भगवती भागीरथीके तटपर उस महान् योगीकी पर्ण-कुटी त्याग-वैराग्यकी प्रतीक थी। प्रातःकाल आप किसीसे मिलते नहीं थे। प्रायः पाँच-छः घंटे निरन्तर एक आसनसे बैठे ध्यानमग्न रहते थे। उस समय कोई उनके समीप जा नहीं सकता था। मध्याह्नमें गाँवमें भिक्षा करने जाते और तीसरे पहर सत्संगियोंकी शङ्काओंका समाधान करते थे। यही उनकी चर्या थी।

महाराजके उपदेश करनेकी शैली ऐसी अद्भुत थी कि सुनते ही बनता था। आप बिना कुछ पूछे यों ही उपदेश नहीं करने लगते थे। जो जैसा अधिकारी होता उसे प्रश्न करने पर वैसा ही उपदेश करते थे। जो भक्तिनिष्ठ होता उसकी शङ्काका वे सर्वतोभावेन भक्तिका निरूपण करके और जो ज्ञाननिष्ठ होता उसके प्रश्न का ऊँचे से ऊँचे वेदान्त-सिद्धान्तके प्रतिपादन द्वारा निराकरण करते थे तथा योगनिष्ठको उसके अधिकारानुसार योगका उपदेश कर देते थे। उनके यहाँ से ज्ञानी, भक्त, आर्यसमाजी, मुसलमान या ईसाई कोई भी असन्तुष्ट रह कर नहीं लौटता था। कोई कितना ही बड़ा भावुक हो अथवा कितना ही तीव्र तत्त्वजिज्ञासु हो दोनों ही आपके पास से सन्तुष्ट होकर लौटते थे। आपके पास आने वालों में पण्डित,

भक्त, वकील, मास्टर, विद्यार्थी और साधारण लोग सभीं प्रकारके व्यक्ति होते थे। वे लोग जो प्रसाद लाते थे वह उन्हींको वितरित कर दिया जाता था। फिर जो जैसा प्रश्न पूछता उसका समुचित उत्तर पाकर सन्तुष्ट हो जाता। रातके प्रायः बारह बजे तक सत्संग होता रहता। फिर भक्तगण अपने घरों को चले जाते और महाराज कुटिया बन्दकर ध्यानस्थ हो जाते। रात्रिमें केवल दो-तीन घण्टे ही निद्रा लेते थे। यह बात कई प्रत्यक्षदर्शी विश्वसनीय महानुभावों-से सुनी गयी थी।

उन दिनों मेरे जीवनमें भी त्यागकी एक क्षीण-सी रेखा उदित हुई थी। उन्होंने मुझे प्रेमसे नहला दिया। मुझ अधमसे भी कोई इतना स्नेह कर सकता है—यह मैंने कल्पना भी नहीं की थी। यद्यपि महाराज प्रातःकाल किसीसे भी मिलते नहीं थे, मौन रहते थे, संकेत भी नहीं करते थे, किन्तु मुझे कुटीमें आनेकी आज्ञा थी। एक दिन मैं गया तो उन्होंने एक पुस्तक निकाली। पुस्तक सम्भवतः उड़िया-लिपिमें श्रीमद्भगवद्गीताकी थी। उसमें उन्होंने मुझे बुद्ध भगवान्‌का एक चित्र दिखलाया। जिस समय भगवान् बुद्ध बोधिवृक्षके नीचे बुद्धत्व प्राप्तिके संकल्पसे बिना खाये-पिये बैठे थे उनका शरीर सूख गया था, केवल अस्थिमात्र अवशिष्ट था। चित्र बड़ा ही भावपूर्ण था। ऐसा चित्र फिर कभी देखने में नहीं आया। उन दिनों मैं काशीमें साहित्यिक जीवन व्यतीत करता था। उसे छोड़कर इसी संकल्पसे हिमालयकी यात्रा कर रहा था कि जबतक भगवत्प्राप्ति न होगी तब तक हिमालयसे लौटकर देशमें नहीं आऊँगा। सम्भवतः मेरे इस भावकी पुष्टिके निमित्त ही उन्होंने मुझे वह दिव्य चित्र दिखाया था। उनके मुखमण्डलपर एक विचित्र ओज और तेज था। उनकी वाणीमें भी बड़ा आकर्षण था। श्लोक

'इस लय से बोलते थे कि सुनते-सुनते रोंगटे खड़े हो जाते थे। उनके मुखसे यह श्लोक मैंने जब-जब सुना, तब-तब जीवनमें एक विचित्र स्फूर्त्ति मिली और हृदयमें एक विचित्र भाव उत्पन्न हुआ। वे तन्मय होकर गाते थे—

इहासने शुष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमासं विलयं तु यान्तु।
अप्राप्य बोधं बहुकालदुर्लभं इहासनान्नैव समुच्चलिष्ये ॥*

वे प्रायः गङ्गाके किनारे ही विचरते थे। सो भी १०-२० कोसके आस-पास। एक बार आप हरिद्वार पधारे थे। तब बीस-पच्चीस दिन तक महाविद्यालय ज्वालापुरमें ठहरे। पं० पद्मसिंह शर्मा और नरदेव शास्त्री प्रभृति विद्वानोंने मुक्त-कण्ठसे आपकी प्रशंसा-की थी। पं० पद्मसिंहजी शर्माने तो मुझसे कहा था कि महाराज-की वाणीमें जितना माधुर्य है उतना तो मैंने किसी साधुकी वाणी में नही देखा। तिस पर भी असीम पाण्डित्य सोने में सुहागा है। ऋषिकेशसे आगे वे कभी नहीं गये। कहा करते थे कि बदरीनारा-यण जाकर फिर लौटा थोड़े ही जाता है। उधर गये, सो गये। काशीभी मेरी स्मृति में एक ही बार गये थे। पीछे तो गङ्गाजी छोड़कर वे आस-पासके गाँवोंमें भी चले जाते थे। वे कभी किसी सवारीपर नहीं चलते थे। पैदल चलनेका उन्हें ऐसा अभ्यास था कि दस-बीस कोस चलना उनके लिये सामान्य बात थी। वे सदा एक चादर और एक कमण्डल रखते थे। इसके अतिरिक्त और कोई

---

*यहाँ आसनपर मेरा शरीर सूख जाय तथा मेरी त्वचा हड्डी और माँस नष्ट हो जायें तथापि जिसकी प्राप्ति बहुत काल में भी कठिन है उस बोधको प्राप्त किये बिना मैं इस आसनसे कभी हिलूँगा नहीं।

वस्तु साथ नहीं रखते थे। जिसके यहाँसे चलना होता, रात्रिमें चुपकेसे उठकर चले जाते थे, किसीसे कहते नहीं थे। साँप जैसे कैंचुलीको छोड़कर उसकी ओर फिर देखता भी नहीं, उसी प्रकार वे सब कुछ छोड़कर चल देते थे। लोग जहाँ भी आपका आगमन सुनते, वहीं सहस्रोंकी संख्यामें दौड़ आते थे। आप सबसे समान भावसे मिलते थे। सबकी सुख-दुःखकी बातें पूछते थे। जिससे भी बातें करते, वही यह समझता कि ये मुझसे अधिक प्यार करते हैं। आप ऐसे घुल-मिल जाते थे कि सभी आपको अपना आत्मीय स्वजन समझते थे। सब अपना सुख-दुःख बताते और छोटी-से-छोटी घर-गृहस्थीकी बातोंमें भी आपसे सलाह लेते थे। किसीकी लड़की-का वर नहीं मिलता तो उसे वर बता देते और किसीको अनुष्ठान बता देते थे। सारांश यह है कि आप लोक-परलोक दोनों प्रकार-की बातोंमें ही अपने आश्रितोंकी सहायता करते थे।

मुझे अपने सम्बन्धमें निजी अनुभव है कि वे मुझ पर कितना प्रेम रखते थे। यद्यपि उस समय मेरी गणना महाराजके भक्तोंमें किसी भी प्रकार होने योग्य नहीं थी। मुझ-जैसे तो महाराजके लाखों परिचित होंगे। तब तक मैंने उनके दो बार, एक-एक दिनको ही दर्शन किये थे। मैं श्रीहरि बाबाजीके यहाँ बाँध पर आरोग्य-लाभके लिये ठहरा था। होलीके उत्सवपर महाराजजी भी पधारे। उस समय आपके साथ कई रईस, सेठ-साहूकार तथा बड़े-बड़े आदमी थे। मुझे जब पता लगा कि महाराज पधारे हैं, तो मैंने सोचा—"इतने बड़े आदमियोंके बीचमें मैं क्या जाऊँगा। जब महाराज कहीं एकान्तमें बैठे होंगे तब दर्शन कर आऊँगा।" थोड़ी देर में मुझसे एक आदमी ने कहा, "महाराज तुम्हें बुला रहे हैं।" मैं

अवाक् रह गया। इतना अधिक अनुराग ! मैंने जाकर महाराजकी चरणधूलि मस्तकपर चढ़ाकर अपनेको कृतार्थ किया। दूसरे दिन-से आप स्वयं उस कुटियामें आ जाते जिसमें मैं ठहरा हुआ था और फिर तीन-तीन चार-चार घण्टे तक वहीं उपदेश होते रहते। ऐसी थी उनकी भक्तवत्सलता।

अस्तु, हिमालयसे मैं पुनः रुग्ण होकर उनके चरणोंमें लौट आया और अपनी असफलता बतलायी। तब आपने मुझे प्रोत्साहित करते हुए कहा, "भैया ! कोई बात नहीं, असफलतामें ही सफलता छिपी रहती है। तुम्हारी लिखने-लिखानेकी ओर प्रवृत्ति है, तुम पुस्तकें लिखो।" तभी मैंने 'चैतन्यचरितावली' लिखी। जिस दिन आरम्भ की उस दिन मैंने आदमी भेजा कि महाराज मुझे आशीर्वाद लिख भेजें। उसी समय तुरंत आपने एक श्लोक लिखवाकर भेजा जो श्रीचैतन्यचरितावलीके प्रथम खण्डके आरम्भमें छपा है। फिर मेरी प्रार्थना पर आप श्रीहरिबाबाजी के बाँध पर पधारे, जहाँ मैं चैतन्यचरितावली लिख रहा था और कुछ दिनों वहाँ विराजे भी। इसके अनन्तर अनेक बार मैंने दर्शन किये। जब भी मुझे कोई कठिनाई होती उनके चरणोंमें जाता और वे उचित परामर्श देते। वे सबके मनकी जानते थे। जैसा जिसका रुख देखते वैसी ही उससे बात करते थे, कभी किसीमें बुद्धि-भेद नहीं करते थे। उनकी-सी सहनशीलता मैंने आज तक किसी में नहीं देखी। वे सबकी सहते थे और जिसे एक बार अङ्गीकार कर लेते थे अन्त तक उसका प्रति-पालन करते थे। अपनाकर ठुकरानेकी कल्पना वे मनसे भी नहीं कर सकते थे। दयालु इतने थे कि घोरसे घोर विरोधियोंपर भी क्रोध कभी नहीं करते थे। उनके बड़े-से-बड़े अपराधोंको क्षमा कर

देते थे। एक भूले भाईने उन पर प्रहार किया, उनकी नासिकामें घाव भी हो गया, फिर भी आपने उससे कुछ नहीं कहा, प्रत्युत् उसे दूध पिलाया और पुलिस तकमें नहीं देने दिया। भोजन करानेमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था। अपने हाथों भक्तोंको परोसते और आग्रहपूर्वक खिलाते थे। वे दीनोंके प्रतिपालक थे। उनका तप सौम्य था, स्वभाव शिशुकी तरह सरल था और वें सेवा लेना उतना नहीं जानते थे जितना सेवा करना। मैं जब भी जाता, मेरी सब बातों का स्वयं प्रबन्ध करते थे और लोगोंको भी नियुक्त कर देते थे। मेरे ही साथ नहीं सभीके साथ उनका इसी प्रकार स्नेहमय व्यवहार था।

महाराजजी और श्रीहरि बाबाजी

बाबा हृदयको पकड़ना जानते थे और उसे निभाना भी। पीछे आपका संग पूज्यपाद श्रीहरिबाबाजीके साथ हो गया। यों कुछ परिचय तो पहले भी हो चुका था, परन्तु प्रधानतया इन दोनों महापुरुषोंका समागम बाँध बंधनेके पीछे ही हुआ और फिर ऐसा हुआ कि दोनों मिलकर एक हो गये। जैसे निमाई और निताई दोनों घुल-मिल गये थे उसी प्रकार ये दोनों भी अन्योन्याश्रित भाव-से एक बन गये। भक्तगण हरि-हरात्मक भावसे इनकी पूजा करते थे। बाबा श्री हरिबाबाजीकी अपेक्षा ९–१० वर्ष बड़े थे। अतः यह उनमें पूज्यबुद्धि रखते थे। वे भी इनका अत्यन्त संकोच करते थे। स्वयं श्री हरिबाबाजी कहते थे कि जबसे हम मिले दोनोंमें कुछ ऐसा संकोच का सम्बन्ध हो गया कि कभी घुल-मिल ही न सके। उन्होंने कभी मेरे सामने उपदेश नहीं दिया, कथा नहीं कही। मैं पहुँच जाता और वे कुछ कह रहे हों तो मुझे देखकर चुप हो

जाते। मुझे कभी कोई आदेश या उपदेश भी नहीं दिया, सर्वथा मेरा रुख देखकर ही बातें कीं।

मैंने तो अपनी आँखोंसे सब प्रत्यक्ष देखा है। श्री हरिबाबाजी और उनके स्वभावमें, रहन-सहनमें एवं व्यवहारमें पृथ्वी-आकाश-का-सा अन्तर था। वे प्रवृत्तिके कार्योंसे घबराते थे; इनका सब कार्य लोकहितके निमित्त जनसमूहमें ही होता था। वे समयका कोई विशेष विचार नहीं रखते थे; जब तक चाहें उपदेश देते रहें, जब तक चाहें बात करते रहें; परन्तु इनके सभी कामोंका पल-पल बँधा रहता था। ये सब काम घड़ी देखकर करते थे। वे भक्तोंके साथ हँसते खेलते थे, उनके सुख-दुःखकी बातें पूछते और घर-गृहस्थी-के विषयमें भी सम्मति देते थे; इनके चाहे कोई मरो चाहे जीओ नीची दृष्टि करके कथा में बैठे रहना, कुछ पढ़कर सुना देना, कीर्तन कर लेना और फिर किवाड़ बन्द करके बैठ जाना। कोई आओ, कोई जाओ, किसीसे व्यवहार कीं बातें ही नहीं। न मिलना, न जुलना। उनकी पूर्णतया अद्वैत वेदान्तमें निष्ठा थी, ये भक्तिपथके पथिक हैं। इस प्रकारकी विषमताएँ होने पर भी दोनों एक हो गये। श्रीउड़िया बाबाजी जब तक न पहुँचते तब तक बाँध का उत्सव होता ही नहीं था। महाराजने अपनी सब इच्छाएँ श्रीहरिबाबाजी-की इच्छामें मिला दी थीं। जितना उन्होंने निभाया उतना कोई निभा नहीं सकता। वे सदा श्रीहरिबाबाजीकी भाव-भंगी देखा करते थे। इन्हें किसी बातसे कष्ट न हो यही चिन्ता उन्हें सदा बनी रहती थी। इन तक वे किसी बातकी सूचना नहीं पहुँचने देते थे। कीर्तन ठीक न होता और श्रीहरिबाबाजीके चित्तमें दुःख हो जाता तो वे सभीको बुलाते, समझाते और इन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न

करते। आने-जाने वालोंकी सारी देख-रेख उन्हींपर थी। श्रीहरिबाबाजी तो यह भी नहीं जानते थे कि कौन आया और कौन गया। कहाँसे रुपया आया, किसने दिया और क्या व्यय हुआ; इन सबकी सार-सँभार वे स्वयं करते थे। श्रीहरिबाबाजी तो केवल कह भर देते थे कि यह होना चाहिये। उनके समस्त कार्य दूसरोंके उपकारके निमित्त होते थे, या अंगीकार किये हुएके प्रतिपालनके निमित्त। जिसे उन्होंने 'अपना' कहकर स्वीकार कर लिया, फिर उसकी चाहे कोई कितनी भी बुराई करे, वे उसे त्यागते नहीं थे। दोष देखते हुए भी वे उसकी ओर ध्यान नहीं देते थे। इतनी अदोष दृष्टि दूसरे स्थानमें मिलनी कठिन है। पहले इस प्रकारके संकीर्तन या सत्संग-महोत्सव नहीं होते थे, बाँधके उत्सवोंके पश्चात् ही सर्वत्र इनका प्रचार हुआ।

उत्सवों में

मेरे ऊपर तो आपकी अत्यन्त अनुकम्पा थी। जैसे पिता पुत्रकी बातोंको मान लेता है उसी प्रकार वे मेरी सब बातोंको मान लेते थे। अलीगढ़में सर्वप्रथम वृहत् संकीर्तनोत्सव हुआ। उस उत्सवको सफल करनेमें रामस्वरूपजी केलाका बड़ा हाथ रहा। उनकी इच्छा थी कि आज-कल जितने भी बड़े-बड़े महात्मा हैं सभी इस उत्सवमें बुलाए जायँ। प्रायः सभी पधारे भी थे। वृन्दावनके सुप्रसिद्ध गोस्वामी श्री बालकृष्णजी, श्री उड़िया वावाजी, श्री स्वामी एकरसानन्दजी, श्री स्वामी कृष्णानन्दजी (मण्डली वाले), श्री जयरामदासजी 'दीन' तथा और भी उससमय जितने संत थे आज उनमेंसे एक भी साकार रूपमें इस पृथ्वी पर नहीं हैं। श्री हरि बाबाजो भी पधारे थे। वहाँकी सेवाका भार मुझपर भी था। मैं स्वामी

एकरसानन्दको लेकर महाराज उड़िया बाबाके पास गया। स्वामीजी वयोवृद्ध थे और उनके साथ उनके बहुत-से प्रसिद्ध शिष्य भी थे। महाराजका स्वभाव था वह किसीको देखकर न तो उठते थे और न प्रणाम करते थे। वे चौकी पर बैठे थे सो बैठे रहे। स्वामी एकरसानन्दजो भी जाकर बैठ गये। दोनों महापुरुषोंमें बड़ी देर तक बातें होती रहीं। कोई बात नहीं, तथापि मैंने अनुभव किया कि कुछ लोगों को यह बात अच्छी नहीं लगी कि महाराजने स्वामीजी-को अभ्युत्थान नहीं दिया। वह एक अपूर्व सम्मेलन था, मेरी इच्छा थी कि यहाँ किसी बातपर कटुता न होने पावे। मैं महाराजके समीप गया और बोला, "महाराजजी, आपको स्वामी एकरसानन्दके पास चलना चाहिये।" आप तुरन्त उठ पड़े और बोले, "चलो!" हम गये और महाराज वहाँ स्वामीजीके तख्तके नीचे जाकर बैठ गये। स्वामीजीने ऊपर बैठने को बहुत कहा, किन्तु ऊपर नहीं बैठे। इसका सभी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। सारांश यह कि उनके मनमें कभी किसी प्रकारके मान-अपमान का भाव नहीं था। सदा अपने आनन्दमें मग्न रहते थे। हम जहाँके लिये भी प्रार्थना करते तुरन्त 'हाँ' कर लेते थे।

कुछ लोगोंके कहनेसे मैंने एक बार फर्रुखाबादमें एक महोत्सवका आयोजन किया। मैं वहाँकी भीतरी बातोंसे परिचित नहीं था। श्री हरिबाबाजी और श्री उड़ियाबाबाजी दोनों से प्रार्थना की और दोनोंने स्वीकार कर ली। महाराज पैदल चलकर पहुँचे। किन्तु वहाँ आपसमें ही विरोध हो गया। जैसा चाहिये था वैसा उत्सव नहीं हुआ। मुझे बड़ी लज्जा लगी और ज्वर भी आगया। आपने कहा, "कोई बात नहीं, ऐसा तो होता ही है। साधुओंके लिये

मान-अपमान क्या ? प्रसंग बहुत बड़ा है। मेरे कहनेका तात्पर्य तो इतना ही है कि आप कभी किसीके दोषकी ओर ध्यान नहीं देते थे तथा मान-अपमान और सुख-दुःखमें सदा समभाव से रहते थे।

जब झूसीमें चौदह महीनेका अखण्ड संकीर्तन एवं साधनानुष्ठान हुआ तब मैंने आपसे पधारनेकी प्रार्थना की। ढाई-तीन सौ कोस पैदल चलकर आना कोई सामान्य बात नहीं थी। आपने मेरी प्रार्थना सहर्ष स्वीकार करली और रामघाटसे पैदल चलकर आप झूसी पधारे। जहाँ तक मुझे स्मरण है जबसे आप रामघाट आये तबसे यही एक काशी-प्रयागकी उनकी यात्रा सबसे प्रथम और अन्तिम थी। यहाँ आपने प्रायः दो-ढाई महीने निवास किया। यहाँ हमने आपके लिये जो फूस की कुटिया बनवायी थी उसका चित्र अभी तक ज्यों का त्यों मेरी आँखोंके सामने नृत्य कर रहा है। उस स्थानको देखकर अब भी मेरा हृदय भर आता है। आप यहाँ बड़े प्रसन्न रहे। आपने अत्यन्त अनुराग प्रदर्शित किया। आप दर्शकोंमें बिना आसनके सर्वसाधारण लोगोंके साथ बैठ जाते और दूसरे लोग गद्दी-तकिया लगाकर आसनोंपर बैठते। आप नीचे बैठे-बैठे सुनते रहते। आपने कभी अपना अपमान अनुभव नहीं किया। कुछ मण्डलेश्वर आये। वे गद्दा-तकिया लगाये बैठे थे। आप साधारण व्यक्तिकी भाँति आगे भूमि पर जाकर बैठ गये। किसीने कहा, "आसन दो।" आपने कहा, "आसनकी क्या आवश्यकता है, पृथ्वी ही आसन है।"

यहाँसे आप काशी गये। विश्वनाथजीके दर्शन करके आपने कहा, "अभी आधे विश्वनाथजीके दर्शन हुए हैं। आधे तब होंगे जब

मालवीयजीके दर्शन हों। आप विश्वविद्यालय गये। मालवीयजी-के बंगलेमें जाकर खिड़कीसे झाँका। वे आराम कर रहे थे। आपने कहा, "आराम करने दो।" किसीने मालवीयजीको सूचना दे दी। वे भी मिलनेको उत्सुक थे। सुनते ही दौड़ आये। दोनों महापुरुष एक दूसरेसे परस्पर लिपट गये और प्रेमके आँसू बहाने लगे। काशी से लौटकर आप फिर झूसी आये तथा अनुष्ठान समाप्त कर सबको साथ ले रामनवमी के अवसर पर श्री अयोध्याजी गये। उन दिनों लखनऊमें राष्ट्रीय महासभा (काँग्रेस) का अधिवेशन होने वाला था। हम सबके कहनेपर आप लखनऊ भी पधारे। वहाँ महात्मा गान्धीसे भी भेंट की। महात्माजी आपके त्याग-वैराग्यको देखकर बहुत प्रभावित हुए। लखनऊमें आपको जो भी अपने घर भिक्षाके लिये बुलाता वहीं उसकी प्रसन्नताके लिये चले जाते थे। कई बार तो एक-एक दिनमें साठ-साठ, सत्तर-सत्तर घरोंमें भिक्षा करते थे। कभी-कभी मैं भी साथ जाता था। परन्तु मैं तो ऊबकर लौट आता, तथापि आप सबका मन रखते। आप दूसरोंका कष्ट नहीं देख सकते थे। भूख न होने पर भी यदि कोई आग्रह करता तो उसे प्रसन्न करनेके लिये खा लेते थे। स्वयं कष्ट उठा लेते, किन्तु दूसरेका कष्ट नहीं देख सकते थे। इन्हीं कारणोंसे पीछे आपका पेट भी बिगड़ गया था।

आश्रम

जिन दिनों श्रीवृन्दावनमें मैं श्रीकृष्णलीलादर्शन लिख रहा था, उस समय मैंने आपसे वृन्दावन पधारनेकी प्रार्थना की। आप वहाँ पधारे और वहीं कुछ भक्तोंने एक छोटी-सी कुटिया बनाने का प्रस्ताव रखा। मैंने इसका विरोध किया। किन्तु मेरा तो एक ही

मत था। बहुमतके सामने वह अमान्य हो गया। संयोगकी बात कुटिया बन गयी और फिर शनैः शनैः उसका विस्तार बहुत हो गया। रामघाट, कर्णवास आदि स्थानोंमें भी श्रीमहाराजके भक्तोंने उनके नामसे आश्रम बनवाये। महाराजकी इन सबमें आसक्ति तो क्या होनी थी, किन्तु इस प्रवृत्तिके विस्तारसे भिन्नप्रकृतिके लोग एकत्रित हो गये। महाराज अङ्गीकार करना तो जानते थे, किन्तु अङ्गीकार करके त्यागना उनकी प्रकृतिके विरुद्ध था। प्रवृत्तिमें ऐसा होता ही है, इसमें किसीका दोष नहीं।

महासमाधि

महापुरुषोंकी समस्त चेष्टाएँ लोक-कल्याणके निमित्त होती हैं। यह संसार तो असुख है, अनित्य है। सदासे यह ऐसा रहा है और रहेगा भी। महापुरुष आते हैं, अपने स्वभावसे इसे सुखमय बनानेके लिये। परन्तु फिर भी यह ज्यों-का-त्यों हो जाता है। कुत्तेकी पूँछको चाहे जितने दिन कसकर सीधी बाँधो, खोलोगे तो फिर टेढ़ी-की-टेढ़ी। न जाने कितनी बार भगवान्‌ने इस अवनिपर अवतार लिया, फिर भी संसार से दुःख का अत्यन्ताभाव नहीं हुआ। यह संसार दुःखमय ही बना रहा यह नहीं, इसमें आकर बड़े-बड़े अवतारोंको भी दुःख सहन करने पड़े। जिसका संसारके साथ सम्बन्ध हुआ, ऐसा कौन है जिसे संसारने अपयशका पुरस्कार न दिया हो। जितने महापुरुष हुए हैं सभीने अस्त्रोंके द्वारा, विषके या अन्य प्रहारोंके द्वारा ही अपने प्राणोंका परित्याग किया है। संसारी लोग उनके यथार्थ स्वरूपको भूलकर उन्हें शत्रु समझने लगते हैं और उन पर आक्रमण कर बैठते हैं। वे भी ऐसी ही लीला रचकर शरीरका अन्त करना चाहते हैं। मरते-मरते अपनी मृत्युसे

भी वे लोगोंको शिक्षा दे जाते हैं। भगवान बुद्ध, श्री शङ्कराचार्य तथा अन्य आचार्यों पर भी संसारी लोगोंने आक्रमण किये तथा विषके प्रयोग किये। महात्मा पल्टूको जीवित ही जलाया गया था। इन बातोंमें कोई न कोई रहस्य होता है। हम अल्पज्ञ प्राणी उसे समझ नहीं सकते। महात्मा गान्धी यदि साधारण मृत्युसे मरते तो उनका सुयश इस प्रकार दिग्-दिगन्तमें व्याप्त न होता। उन्होंने गोलीसे मरकर बहुत बड़ा कार्य किया। श्री उड़िया बाबाजी कहते थे, "जब मैंने महात्माजीकी मृत्युकी बात सुनी तब मैं मुक्तकण्ठसे ढाह मारकर रोने लगा।" कौन जानता था, आप भी ऐसी ही मृत्युसे अपने इस पाञ्चभौतिक शरीरका अन्त करेंगे।

इधर कुछ दिनोंसे आप बहुमूत्र रोगसे पीड़ित थे, पैरकी नसमें भी कुछ सूजन आगयी थी। इससे चलनेमें भी कुछ कष्ट होता था। फिर भी आप चलते ही थे। गत वर्षके माघ मासमें अर्द्धकुम्भी थी। उस समय श्रीहरिबाबाजी प्रयाग पधारे थे। यहाँसे माँ श्रीआनन्द-मयीको वे बाँधके उत्सवपर ले गये थे। पूज्य बाबा इस उत्सवमें पधारने वाले थे। किन्तु अस्वस्थताके कारण न आ सके। उनके बिना श्री हरिबाबाजी उत्सव करते ही नहीं थे। जब नियत तिथि-पर नहीं पधारे तब श्री माँको लेकर श्री हरिबाबाजी महाराजके पास वृन्दावन पहुँचे। बाबाके लिये महाराज सब कुछ करनेको तैयार रहते थे। उन्हींके लिये वे घड़ी रखने लगे और यथासाध्य समयसे ही कथा कीर्तनादिके कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होने लगे। फिर भी पैदल चलनेके नियमको वे अब भी निभाते थे। इसके लिये श्रीहरि बाबाजीने कभी आग्रह भी नहीं किया। अबकी बार

उन्होंने बल देकर कहा, "आपके लिए नियम-फियम क्या ? आप मोटरपर चलें। आपके बिना उत्सव नहीं होगा। श्री माँने भी उनके कथनका समर्थन किया। बस, आप मोटर द्वारा बाँध गये। यही सवारी द्वारा आपकी प्रथम यात्रा थी। बाँधके उत्सवके पश्चात् श्री हरि बाबाजी तो माँके साथ नैनीताल, अल्मोड़ा चले गये और महाराज वृन्दावन आकर निवास करने लगे।

गर्मियोंके पश्चात् आषाढ़ मासमें श्री हरिबाबाजी काशी होते हुए भूसी पधारे और एक वर्षतक यहाँ संकीर्तनभवनमें निवास करनेका विचार किया। कार्तिकतक प्रायः पाँच महीने आप रहे भी। आपके बिना श्रीउड़ियाबाबाजीका मन बहुत उदास रहता था। अतः आपको बुलानेके लिए उन्होंने चार-पाँच बार आदमी भेजे। किन्तु आप यहाँसे नहीं गये। कहला दिया, 'मेरा एकवर्षतक वहीं रहनेका संकल्प है।'

जब कार्तिकमें आपने महाराजकी विशेष अस्वस्थताका समाचार सुना तो आपसे भूसीमें नहीं रहा गया। आप माताजीको साथ लेकर मार्गशीर्षमें वृन्दावन चले गये। वहाँ जाकर यह निश्चय हुआ कि श्री उड़िया बाबाजी, श्री हरिबाबाजी और माँ श्री आनन्दमयी सब मिलकर दिल्ली, कुरुक्षेत्र, अम्बाला, खन्ना और होशियारपुर होते हुए काँगड़ा-ज्वालामुखीकी मोटरोंद्वारा यात्रा करें और फिर होलीपर लौटकर वृन्दावनमें उत्सव हो। इस निश्चयके अनुसार प्रायः सौ भक्तोंके सहित तीनों ही दिल्ली आदि होते खन्ना पहुँचे। वहाँ महाराज श्री उड़िया बाबाजीको ज्वर आ गया। स्वास्थ्य तो पहले भी अच्छा नहीं था। अतः आगेकी यात्रा स्थगित करके सब वृन्दावन आ गये और सबने मिलकर वहीं होलीका उत्सव किया।

मैंने श्री हरिबाबाजीसे प्रार्थनाकी थी कि आप हमें बीचहीमें छोड़कर चले गये थे। अतः इस चैत्रके नवसंवत्सरोत्सवमें अवश्य पधारें। आपने उत्तर दिया, "भाई ! हम तुम्हारे ही कामसे वृन्दावन गये हैं। श्री बाबाको लेकर हम चैत्रके उत्सवमें अवश्य आयेंगे और अधिकसे अधिक रहेंगे। इस बातसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और हम बड़े उत्साहसे उत्सवका विशेष आयोजन करने लगे। पीछे समाचार मिला कि श्री उड़िया बाबाजीका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, अतः वे पधार न सकेंगे। अकेले श्रीहरि बाबाजी ही पधारेंगे। हमलोग बड़ी तैयारियाँ कर रहे थे। हमारी हार्दिक इच्छा थी कि महाराज पधारें, किन्तु जब स्वास्थ्यकी बात सुनी तो हमने आग्रह करना उचित न समझा।

चैत्र कृष्णा त्रयोदशी रविवारको साँयकालमें पूज्यपाद श्रीहरि बाबाजीको अकेले ही जानेकी सहर्ष अनुमति दे दी। उन्हें पहुँचानेके लिये वे मोटरतक आये, प्रसाद भी दिया और जबतक मोटर चली नहीं तबतक खड़े रहे। इस प्रकार बड़े स्नेहभरित हृदयसे विदादी।

श्रीहरि बाबाजी चतुर्दशी सोमबारको प्रातःकाल यहाँ पधारे। मङ्गलवारको तार आया कि श्री उड़िया बाबाजीका शरीरान्त हो गया। पढ़कर सभीको आश्चर्य हुआ। श्रीहरि बाबाजी कहने लगे; "मैं तो सकुशल छोड़ आया था।" श्रीमाँ कहने लगी,...कहीं गिरतो नहीं पड़े।" फिर सोचा—शरीरका क्या पता ? कब इसका अन्त हो जाय ? यह तो क्षणभंगुर है ही। यही सब सोच रहे थे कि दूसरे दिन बुधवारको 'अमृत बाजारपत्रिका' में पढ़ा, "उनकी उनके किसी शिष्य ने हत्या करदी।" यह और भी आश्चर्यजनक बात थी। एक-से-एक आश्चर्यकी बात सुनकर सभी चिन्तित, उद्विग्न और खिन्न थे। उसी

समय यथार्थ घटनाका पता लगानेके लिए एक आदमी वृन्दावन भेजा गया। गुरुवारकी रात्रिमें उसने सूचना दी, 'एक पागलसे व्यक्तिने गड़ासा लेकर तीनवार उनके सिरपर प्रहार किया। वहाँके सभी लोग अत्यन्त दुःखी हैं, आपकी प्रतीक्षामें हैं।' उसी समय श्रीहरि बाबाजीने वृन्दावन जानेका निश्चय किया और वे चैत्र शुक्ला तृतीया शुक्रवारको यहाँसे वृन्दावनके चिये चल पड़े।

इस घटनासे मेरे हृदय की क्या दशा हुई-यह कुछ कहा नहीं जा सकता। बड़े उत्साह से इस उत्सवकी तैयारियां कर रहा था। मुझे अब भी आशा थी कि सम्भव है, श्रीमहाराज पीछेसे आ जाँय। दूर-दूरसे लोगोंको आमन्त्रित किया था। किन्तु सभी उत्साह धूलिमें मिल गया। आश्रममें खिन्नताका वातावरण व्याप्त हो गया। सर्वत्र इसी घटनाकी चर्चा थी यद्यपि मैं एक विशेष अनुष्ठानमें हूँ। कहीं जाने का नियम नहीं है, प्रयाग भी नही जाता। कुटीसे संगमतक बस इतना ही इस अनुष्ठानमें मेरा संसार है। तथापि महाराजके परलोकप्रयाणकी बात सुनते ही मेरी जानेकी इच्छा हुई। किन्तु इतने लोग उत्सवमें आये हुए हैं, स्वयं श्रीहरि बाबाजी भी विराजमान हैं, ऐसे समय कैसे जाँय? जब दूसरे दिन दुर्घटनाका विवरण सुना तो मैंने श्रीहरि बाबाजीसे प्रार्थना की कि मुझे आज्ञा हो तो मैं ही हो आऊँ। उन्होंने कहा, "भैया! तुम जाकर क्या कर लोगे। जो होना था वह तो हो गया। ये तो साँसारिक शिष्टाचार हैं। अब उनका शरीर तो वहाँ होगा नहीं।" बड़े लोगोंकी आज्ञामें ननु न च नहीं करना चाहिये। मैं चुप हो गया। किन्तु मेरे मनमें एक विचित्र उथल-पुथल मच रही थी।

सभी नियमोंके अपवाद होते हैं। अपवाद ऐसे ही समयोंके लिये

हैं। जब पं० वागीशजी शास्त्रीने बताया कि अन्त समय महाराजने तुम्हारी ही चर्चा करते हुये प्राणोंका परित्याग किया है तो मुझसे नहीं रहा गया। शनिवारको प्रातः पुराणपाठ सुनकर तथा त्रिवेणी-स्नान करके शङ्करजीको साथ ले, मैं वायुयानद्वारा दिल्ली पहुँचा और वहाँसे श्रीआदित्यनारायणके साथ उनकी मोटरद्वारा शामके सात बजे वृन्दावन श्री महाराजके आश्रममें पहुँच गया। इस आश्रम-पर मैं अनेकों बार आया हूँ। पर आज इसकी ओर जानेमें भय लग रहा था। मोटर ज्यों-ज्यों आश्रमकी ओर बढ़ती जाती थी त्यों-त्यों हृदय बैठता जाता था। वहाँ पहुँचनेपर देखा आश्रमकी श्री नष्ट हो गयी है। सर्वत्र एक उदासीनताका वातावरण छाया हुआ है। आश्रमके कण-कणसे मानो विषाद फूट-फूटकर बह रहा है। उस समय वहाँ कोई दिखायी नहीं दिया। सब वस्तुएँ अस्त-व्यस्त पड़ी हुई थीं मेरा हृदय भर रहा था, मुझे रोना आ गया। रास-मण्डपमें पड़कर मैं रो पड़ा। मेरे रुदनको सुनकर भक्तगण इधर-उधरसे एक-त्रित हो गये। श्रीहरिबाबाजीने कहा, "यहाँ आकर श्री महाराजजी-की जो दशा सुनी उससे तो बड़ा आश्चर्य हुआ, उस समय उन्हें देहका अनुसंधान ही नहीं था।

जो लोग उस दुर्घटनाके समय वहाँ उपस्थित थे उनसे पता लगा कि उस दिन चैत्रकृष्ण चतुर्दशी सोमवार था। मध्याह्नोत्तरमें वे नियमानुसार सत्संगभवनमें पधारे। उस समय और भी बहुत-से लोग कथा सुनने आते थे। आनन्दजी 'भागवती कथा' की नित्य कथा कहते थे। आते ही उन्होंने पूछा, "झूसीके उत्सव का क्या हाल है ?" आनन्दजी ने कहा, 'महाराज ! अच्छा है। श्रीहरि बाबाजी पहुँच ही गये हैं, माँ श्रीआनन्दमयी आ गयी हैं, यहाँसे श्री नित्यानन्दजी

गये हैं और चतुः सम्प्रदाय के रामदासशास्त्री आदि भी जानेवाले हैं। उत्सव बड़े आनन्दसे हो रहा है। आप कोई चिन्ता न करें।" उनके मनमें थी कि मेरे न जानेसे वहाँ निराशा तो नहीं हुई। और भी उत्सवको एक-दो बातें पूछी। फिर 'भागवतीकथा' आरम्भ हुई। वीसवें खण्डकी कथा होरही थी, प्रह्लादजीका प्रसङ्ग था। अध्यायकी समाप्तिमें एक पृष्ठ शेष था कि उसी समय एक पागल-सा व्यक्ति काला कम्बल ओढ़े बगलमें कुट्टी काटनेका गड़ासा दबाये वहाँ आया। महाराज तो नेत्र बन्द किये कथामें ध्यानमग्न थे। और भी वहुत से नर-नारी कथा श्रवण कर रहे थे। उसने आते ही महाराज के सिरपर गड़ासेका प्रहार किया। महाराजका हाथ ऊपर सिरपर गया कि उसने पुनः प्रहार किया। इससे उङ्गली कट गयी। उसने तीसरा प्रहार और किया। वे प्रहार इतनी शीघ्रतासे हुए कि किसी का उसे पकड़नेका साहस ही नहीं हुआ। एक बूढ़ी माईने उसे प्रहार करनेसे रोका तब औरों ने भी दौड़कर पकड़ा। कुछ लोगोंने आवेश में आ उसे मारा और वह तत्क्षण वहीं मर गया। महाराजका शरीर कुछ स्थूल था। उनके सिर से रक्त के फब्बारे छूट रहे थे। चारों ओरकी भूमि रक्त रञ्जित हो गयी। उनके समीप ही हत्यारा मरा पड़ा था। वहाँका दृश्य अत्यन्त वीभत्स था। सभी किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहे थे। जितने मुँह उतनी बातें। वस्त्र रक्त-रञ्जित हो गये थे। हाय! विधाताकी कैसी कुटिल गति है। जिस सिरपर मनों पुष्प चढ़े थे उसी पर ऐसा निर्दयतापूर्ण प्रहार! जिस भूमिमें नित्य ही कथा, कीर्तन, रास और रामलीला आदि होती थीं, जो भूमि इत्र, गुलाब और चन्दनादिसे सीचीं जाती थीं वही रक्तरञ्जित हो रही थी! क्या कहा जाय, कुछ कहते नहीं बनता।

मेरे जानेपर उनके कृपापात्रोंने बताया—वे पहलेसे ही कहा करते थे कि मैं ऐसे-वैसे थोड़े ही मरूँगा। रक्तकी नदियाँ बहाकर जाऊँगा। वे कहते थे—'हम जानबूझकर इस प्रवृत्तिमें फँसे हैं। तुम लोगोंको यह शिक्षा देनेके लिए कि कोई कैसा भी सिद्ध हो जो इस प्रवृत्तिमें फँसेगा उसे दुःख उठाना पड़ेगा। जो कामिनी-काञ्चनसे संसर्ग रखेगा उसको यही सब सहन करना पड़ेगा।'

यथार्थमें बात यही है। महापुरुषोंके जीवनकी प्रत्येक घटनासे बड़ी भारी शिक्षा मिलती है। वे प्राणियोंके उपकारके निमित्त स्वयं अपने शरीरपर कष्टोंको झेलते हैं। प्रभु ईसामसीह अपने शिष्यों द्वारा ही पकड़ाये गये और उन्हें शूलीपर लटकाया गया। उनके पवित्र बलिदानसे ही आज ईसाई धर्मका इतना प्रचार हुआ। महात्मा गाँधीकी हत्या भी तो उन्हींके एक देशबन्धुने की थी। देवी जोन को भी उन्हीं लोगोंने जीवित जलाया जिनकी स्वतंत्रता के लिए वह प्राण प्रण से प्रयत्न कर रही थी। इस संसार की कुछ ऐसी ही उल्टी रीति है। महापुरुषोंको संसारकी ओरसे यही परितोषिक मिलता है।

महाराजका समस्त जीवन परोपकारमें ही बीता था। वे निराश्रयोंके आश्रय थे, दीनोंके बन्धु थे और मुमुक्षुओंके सर्वस्व। उनके यहाँ कथा-कीर्तनका अखण्ड सत्र चलता रहता था। उनके सान्निध्यमें सभी श्रेणीके पुरुष आश्रय पाते थे। परस्पर विरोधी विचारके व्यक्ति भी उनके पास रहते थे। वे परम सहिष्णु, धैर्यवान् और निर्भय थे। उनका सम्पूर्ण जीवन परमार्थके कार्योंमें ही व्यतीत हुआ था। इस समय उनकी आयु ७३ वर्षके लगभग थी। फिर भी ज्ञानार्जनकी उनकी इच्छा कम नहीं हुई थी। नित्य ही कुछ न कुछ

नयी बात यादकर लेते थे। उन्हें कितने श्लोक कण्ठस्थ थे इसकी कोई गणना नहीं। मैं जाता तो अपनी दैनन्दिनी दे देते और कहते कि तुम्हें जो सुन्दर श्लोक याद हो इसमें लिख दो। उनका श्लोक उच्चारणका ढङ्ग ऐसा सजीव था कि उसके विषयको उच्चारण करते-करते मूर्तिमान् करके खड़ाकर देते थे। उनके गुण महान् थे। भक्तवृन्द उनका जीवन लिखना चाहते हैं। यहाँ मैं जीवन लिखने नहीं बैठा हूँ। मैं तो केवल उनका स्मरण कर रहा हूँ। 'भागवती कथा' लिखनेमें मुझे उनके द्वारा बड़ी स्फूर्त्ति मिलती थी। वे आनन्दके द्वारा उसे नित्य सुनते और सभीको सुनवाते थे। कविकी कृतिका कोई कलाकार आदर करे—उसके लिये इससे बड़ा पुरस्कार और कुछ नहीं हो सकता। नया खण्ड निकालते ही सबसे पहले मैं श्री उड़िया बाबाजी और श्रीहरि बाबाजीके पास भेजता था। मेरे लिये यही बड़े सौभाग्यकी बात थी कि ये महापुरुष उसे सुनते थे। इससे मुझे लिखनेमें प्रोत्साहन मिलता था।

बाल ब्रह्मचारी पं० श्रीजीवनदत्तजी महाराज, नरवर

"महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ।"

—श्रीमद्भागवत

नाना प्रकारके पाप-पुण्यमय मिश्रकर्मकलापजनित शुभाशुभ कर्मफलोंको भोगनेके लिये उत्पन्न हुए जीवोंको कल्याणपथपर अग्रसर करनेके लिये भगवदिच्छासे समय-समयपर सन्तजन इस कर्म-भूमि भारतमें अवतीर्ण हुआ करते हैं। उनकी एक क्षणभरकी सत्सङ्गति भी इस भयंकर भवसागरकी उत्तुङ्ग तरङ्गमालामें पड़कर डूबते-उतराते मानवसमाजको पार करनेके लिए सुदृढ़ नौकाके समान होती है— "क्षणमपि सज्जनसङ्गतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका।" ऐसे महापुरुषोंके संगसे होने वाले परम श्रेयका मूल्य आँका नहीं जा सकता। इसमें कुछभी सन्देह नहीं कि पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजी भी ऐसेही जगदुद्धारक महापुरुषोंकी श्रेणीमें थे।

आज हमें उस अतीत कालका स्मरण हो उठा है जब हमें जिला बुलन्दशहरकी पूर्वीय सीमापर स्थित भागीरथी तटवर्ती रामघाट नामक तीर्थस्थानमें स्वर्गीय ब्रह्मचारी श्री हीरानन्दजीकी निवास-कुटीपर प्रथमवार श्री उड़िया बाबाजी महाराजके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय वे त्यक्त-दण्ड अवस्थामें थे। तबतक लोग उनके अगाध गाम्भीर्ययुक्त व्यक्तित्वसे समुचित परिचित नहीं हुए थे। रामघाटके कुछ सत्संगप्रेमी और साधुसेवी व्यक्तियोंको भी इसके कुछ काल पश्चात् ही उनके उपदेशामृतको पान करके कृतार्थ होनेका अवसर मिला। प्रसंगवश वार्तालाप चलनेपर उन्होंने बताया कि उनका पुण्य शरीर उत्कलदेशवासी

गौड़ ब्राह्मणवंशमें प्रकट हुआ था। वे वाल्यकालसे ही स्वभावतः विरक्त मनोवृत्तिके थे, तथापि अध्ययन समाप्त करनेके पश्चात् उन्होंने देशसेवाके लिये राष्ट्रीय आन्दोलनमें भी पर्याप्त भाग लिया। उन दिनों वे जगन्नाथपुरीके गोवर्धनमठमें नैष्ठिक ब्रह्मचारीके रूपमें रहते थे। फिर वहीं अधिक रुग्ण होनेपर उन्होंने आतुर संन्यास लिया। रोग शान्त होनेपर 'एक एव चरेद्भिक्षुः' इस वाक्यका निर्वाह करते हुए वे असंग और अपरिग्रही होकर विचरने लगे।

उन दिनों आप श्रीमद्भागवतके इन भगवद्वचनोंके अनुसार अधिकारि भेदसे कर्म उपासना और ज्ञान तीनों ही साधनोंका उपदेश करते थे—

'योगास्त्रयो मया प्रोक्तान्नृणां श्रेयो विधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥
निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम्॥
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः॥'*

आप यदृच्छासे विचरते हुए ही इस प्रान्तमें सबसे पहले रामघाटमें पधारे थे। धीरे-धीरे अपने अद्भुत और अभूतपूर्व गुणगणके कारण आप सर्वत्र विख्यात हो गये और फिर श्रद्धालु भक्तोंके

* मनुष्यों के श्रेयः साधनकी इच्छासे मैंने तीन प्रकारके योगोंका वर्णन किया है—ज्ञान, कर्म और भक्ति। इनके सिवा और कहीं कोई मार्ग नहीं है। इनमेंसे ज्ञान विरक्त पुरुषोंके लिये है जो कर्मोंका त्यागकर देनेवाले होते हैं। किन्तु जिसका चित्त कर्मोंसे उपराम नहीं है और जो भोगोंकी कामनावाले हैं उनके लिये कर्मयोग है। तथा जो न तो भोगोंसे उपराम हैं और न उनमें अत्यन्त आसक्त है उसे भक्तियोग सफलता प्रदान कर सकता है।

अत्यन्त प्रार्थना करनेपर अनेकों स्थानोंमें विचरकर उन्हें अपने सदुपदेशोंसे पवित्र करने लगे। आपके परिमित सरल और सरस शब्दोंमें ज्ञानकी बड़ी ठोस सामग्री भरी रहती थी। एक बार कुछ अँग्रेजी पढ़े-लिखे पदाधिकारियोंने पूछा—"आप बड़े सिद्ध संत सुने जाते हैं, कोई चमत्कार दिखाइये।" तब आप बोले—"इससे अधिक और क्या चमत्कार दिखाऊँ कि मेरा शरीर जड़ होनेपर भी बोलता है, सुनता है, देखता है, चलता है और नाना प्रकारके कार्य करता है।" इस प्रकार स्वभाव-सरल परिमित शब्दोंद्वारा शास्त्रीय दुरूह अर्थके विवेचनकी आपकी बड़ी ही सुन्दर शैली थी। ऐसे अनेकों उदाहरणोंकी छाप उनके अनुयायियोंके हृदयपटपर सदाके लिये अंकित है।

श्री स्वामी करपात्रीजी महाराजने हमें बतलाया था कि एक बार कोई बात पूछनेके उद्देश्यसे उन्होंने (श्री करपात्रीजीने) प्रसिद्ध अध्यात्मवेत्ता (Spritualist) श्री बी० डी० ऋषि द्वारा पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजीके अजर अमर आत्माका आह्वान कराया था। किन्तु उत्तरमें उन्हें यही ज्ञात हुआ कि वे अपने पाञ्चभौतिक कलेवरको विभिन्न तत्त्वोंमें विलीन कर सदाके लिये अजर-अमर भावापन्न हो विश्वव्यापक बन चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे परम क्षमाशील राग-द्वेषादि विवर्जित उच्च कोटिके महापुरुष थे।

जिस समय षड्दर्शनाचार्य पण्डित स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रमजी महाराजका नरवरमें ब्रह्मनिर्वाण हुआ उस समय ब्राह्ममुहूर्त्तमें ही श्री उड़िया बाबाजी उनके पास पहुँच गये थे। उन दिनों आप नरवरसे चार कोसकी दूरी पर थे। पता नहीं, किस सूचनाके

आधारपर रात्रिमें किस समय चलकर आप इतनी जल्दी नरवर आ गये थे। श्री पण्डित स्वामीजीका देहावसान होनेपर हमने देखा कि आपके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। आप गद्गद् कण्ठसे कह रहे थे कि आज हमारे संन्यासीमण्डलका विद्या-भास्कर अस्त हो गया। फिर आप हीके तत्त्वावधानमें आपहीके संकल्पबलसे ब्रह्मीभूत पण्डित स्वामीजीका निर्वाणोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया।

उनके जीवनकी अनेकों झाँकियों का हम कहाँ तक वर्णन करें। उन्हें इस जीवनमें हम भूल नहीं सकते। उनके कृपापरवश भक्तजन उनका पवित्र जीवन-चरित्र लिखने का विचार कर रहे हैं, --यह जानकर हमें अकथनीय हर्ष हुआ। बाबा 'तीर्थ' नामा संन्यासी थे। अपने जीवन में इन्होंने इस पदका पूर्णतया निर्वाह किया। अब लीलासंवरण करनेपर उनके नश्वर शरीरस्थ कार्यतत्त्व अपने कारणतत्त्वोंमें लीन हो गये हैं। तथापि हमें पूर्ण आशा है कि उनका जीवन-चरित्र तैयार हो जानेपर उनकी अजर-अमर कीर्त्ति चिर-काल तक हमारे देशमें स्थिर रहेगी।

स्वामी श्रीभजनानन्दजी एकरसानन्दाश्रम, मैनपुरी

मेरे जीवनके दो ही पथ-प्रदर्शक मिले हैं—एक श्रीउड़िया बाबाजी और दूसरे स्वामी श्रीएकरसानन्दजी सरस्वती। समय-समयपर दोनों ही महापुरुषोंने मुझको मार्ग दिखाया था। वैसे तो अनेक बार श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके चरणोंमें रहनेका सौभाग्य मिला। परन्तु एक बार कर्णवासमें,जिस समय श्रीजयदयाल गोयन्दका भी गर्मियोंमें वहाँ सत्सङ्ग करा रहे थे, मुझको प्रायः एक मास श्रीमहाराजके पास रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कभी-कभी वे मुझे प्यारसे बुलाते थे। यद्यपि उस समय सभी लोग मुझको 'भजनानन्दजी' कहते थे, परन्तु बाबा जब मुझे 'भजनलाल' या 'भजना' कहकर बुलाते तब मुझे भगवान् रामके स्वभावकी यह चौपाई स्मरण हो आती थी:—

'राम विलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचनि हँसि मिलनी॥'

मुझे तो बाबा साक्षात् भगवान् ही प्रतीत होते थे। उपनिषद्का 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' यह मन्त्र उनके जीवनमें सार्थक प्रतीत होता था। वे छोटेसे छोटा काम तो यहाँ तक करते थे कि अपने हाथसे परोसकर सबको भोजन कराते थे; और जब आसनपर बैठते थे और हमलोग उनका पूजन करनेके लिये जाते थे तो साक्षात् विराट् भगवान् ही जान पड़ते थे।

मैं बराबर एक माह कर्णवासमें ठहरा। उस समय बाबाको सन्निधिमें मुझे जैसा सुख-प्राप्त हुआ वैसा माता-पिताके पास रहकर भी नहीं मिला। बाबाके प्रति मेरे ही नहीं, सभीके यही भाव थे। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता था कि बाबा विराट् भगवान्का पूजन कर रहे हैं।

स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूत

निरभिमानताके प्रतीक श्रीबाबा

श्रीवृन्दावनधाममें एक बार मैंने एकादशी-व्रत रखा था। दैव-वश उस दिन फलाहारका कोई प्रबन्ध न हो सका। श्रीमहाराजके कृपापात्र श्रीपल्टूबाबाको किसी प्रकार इसका पता लग गया कि आज अवधूतजीके फलाहारका प्रबन्ध नहीं हुआ है। उन्होंने श्रीमहाराजजी-से प्रार्थना कर दी। कृपासिन्धु बाबाने सुनते ही मुझे बुलाने के लिये बाबू रामसहायको ब्रह्मनिवास आश्रम भेजा। महाराजजी की आज्ञा शिरोधार्य कर मैं श्रीचरणोंमें उपस्थित हुआ। उस समय आप गुफाके ऊपर बरामदेमें विराजमान थे। मुझ-जैसे अधमाति-अधम, पतिताति-पतित, तुच्छातितुच्छ व्यक्तिके पहुँचते ही आप अपने आसनसे उठ-कर खड़े हो गये और मेरा हाथ पकड़कर मधुर तथा मृदुल शब्दोंमें कहने लगे, "इसी आसनपर (जिसपर वे स्वयं विराजमान थे) बैठकर भोजन कीजिये।" इन शब्दोंको सुनकर मैं तो आश्चर्यसमुद्रमें डूब गया। ऐसे जगत्प्रतिष्ठित महापुरुष होनेपर भी उनके अन्तःकरणमें अभिमानकी गन्ध भी नहीं थी। मेरा हृदय प्रेमसे सराबोर होगया, क्षुधा निवृत्त-सी हो गयी तथा एकाग्रताके कारण मन प्रफुल्लित हो गया। आज्ञानुसार जैसे-तैसे फलाहार किया, परन्तु अनर्थनिवृत्तिका भोजन निरभिमानता भी प्राप्त हुई; क्योंकि वास्तवमें निरभिमानता ही मुक्ति का स्वरूप है—'यदा नाहं तदा मोक्षो यदाहं बन्धनं तदा।' जन्ममृत्युरूप बन्धनका हेतु अभिमान ही है। निरभिमानता या दीनता ही मुक्तिका हेतु है। विचारदृष्टिसे यही निर्णय होता है कि

जो कर्त्ता होता है वही गुणी होता है, क्योंकि संसारमें कर्त्तव्यके अधीनही गुणका आरोप होता है। अर्थात् जितना और जैसा कर्त्तव्य होता है उतने और वैसे ही गुणका व्यक्तिमें आरोप किया जाता है। इसलिये गुणरूप बन्धनका कारण कर्त्तव्य ही है। जितना गुण होता है उतना ही अभिमान होता है, बिना गुणके अभिमानकी सत्ता ही नहीं। अतः स्पष्ट हुआ कि कर्त्ता ही गुणी होता है और गुणी ही अभिमानी कहा जाता है। इसके विपरीत जो अकर्त्ता है वह निर्गुण होगा वह निरभिमानी भी होगा। अतः ब्रह्म अकर्त्ता और निर्गुण है। सुतरां ब्रह्म और निरभिमानीमें कभी किसी प्रकारका भेद सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये निरभिमानता ही ब्रह्मसाक्षात्कार का यथार्थ लिङ्ग है।

श्रीमहाराजमें निरभिमानता सदा सर्वथा मूर्त्तरूपसे विद्यमान थी। तभीतो मेरे-जैसे व्यक्तिको भी आपने अपने राजसिंहासनपर बैठाकर भोजन करनेकी आज्ञा दी। यह व्यवहार उनकी ब्रह्मनिष्ठाका ही परिचायक था।

दरिडस्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी सरस्वती

मुझसे प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके सम्बन्धमें अपने संस्मरण लिखनेके लिये कहा गया है। वैसे तो मुझे उनके सत्संग-सुखका जो यत्किञ्चित् अनुभव हुआ है वह मेरे लिये इतने महत्वकी वस्तु है कि उसे लिखना मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो अपने जीवनके उन पवित्र क्षणोंकी घटनाओंका उल्लेख करके मैं उन्हें सामान्य कोटिमें निविष्ट कर रहा हूँ—मानो ऐसा करके मैं उनका मूल्य घटा रहा हूँ; फिर भी उस समयकी विलक्षण अनुभूतियोंका मेरे अन्तःकरणपर जो प्रभाव पड़ा है उससे मेरे जीवनको दिशानिर्देश प्राप्त हुआ है; अतः उस विषयमें कहने-सुनने और लिखनेकी चाह मेरे हृदयमें प्रारम्भसे ही है।

जब मैं नर्मदातटपर विचर रहा था उस समय मैंने पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके न तो दर्शन किये थे और न विशेष कुछ सुना ही था। सर्वप्रथम 'कल्याण' में प्रकाशित उनके वेदान्तविषयक उपदेशोंने मुझे आकृष्ट किया। उनसे मेरी विचारधाराके प्रवाहको पर्याप्त गति मिली और तभीसे मेरे हृदयमें उनके प्रति सर्वाधिक आदरका स्थान बन गया। कुछ दिनों पश्चात् जबलपुरमें स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वतीसे भेट हुई। आपने एक दिन स्वाभाविक ही बतलाया कि मैं प्रायः श्रीउड़ियाबाबाजीके पास श्रीवृन्दावनमें रहता हूँ, कभी आप भी वृन्दावन आइये। संयोगवश उसके कुछ ही दिनों पश्चात् मुझे पञ्जाब जाना पड़ा। वहाँसे लौटते समय मैं वृन्दावन जानेके लिये मथुरास्टेशनपर उतर पड़ा और पैदलही वृन्दावन पहुँचा। आश्रममें प्रवेश करतेही स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीको श्रीमद्भागवतकी कथा

करते देखा । वहाँ रुककर दो-चार दिन सत्संग किया और फिर नर्मदातटको चला गया। उस समय श्रीमहाराजजी वहाँ नहीं थे, कहीं अन्यत्र पैदल भ्रमण कर रहे थे।

इसके पश्चात् जब मैं दूसरी बार वृन्दावन आया तो अक्षय-तृतीयाके दिन मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए । आप मध्याह्नमें बाहरसे आये थे और भक्तोंको सत्तूका प्रसाद बाँट रहे थे। मैं उनकी सौम्य और सरल मूर्त्तिके प्रथम दर्शनमें ही मुग्ध हो गया। प्रातःकाल आपका श्रीशंकरानन्दी गीतापर प्रवचन होता था। मैं उसमें उपस्थित रहने लगा । उस समय उनके मुखकमलसे अत्यन्त ओजस्विनी भाषामें ज्ञान, वैराग्य, योग और भक्तिविषयक सूक्ष्मतम तत्त्व विनिः-सृत होते थे। प्रवचनके अनन्तर लोग श्रीमहाराजजीसे प्रश्न करते थे और वे संक्षिप्त भाषामें प्रायः एकही वाक्यमें उत्तर दे देते थे। स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीकी प्रेरणासे मैं भी कुछ प्रश्न करने लगा। पर उस समय तक मेरे प्रश्न शायद रूक्ष होते थे। कभी तो प्रश्नका उत्तर मिलता और कभी वे चुप होजाते। मैं गम्भीरतापूर्वक प्रश्न और उत्तरपर विचार करता तथा सत्संगसे लौटनेपर स्वामी श्रीअण्डा-नन्दजीसे भी पर्याप्त विचार-विमर्श होता। उन्होंने महाराजजीका सुन्दर अध्ययन किया था।

धीरे-धीरे मैं निकट आता गया। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्तमें जो ध्यान और सत्संग होता था, उसमें मैं भी नियमसे उपस्थित रहने लगा। श्रीमहाराजजीके एक अनन्य भक्त थे बाबू रामसहाय। इनके प्रश्न बड़े विलक्षण हुआ करते थे। पहले तो अन्य नवीन आगन्तुकों के समान मेरी भी उनके प्रति कुछ विपरीत धारणा बन गयी। मुझे लगता, इनके प्रश्न निरर्थक और व्यक्तिगत आक्षेपयुक्त ही होते हैं।

किन्तु जब कुछ दिन मैंने ध्यानपूर्वक उनकी बातें सुनी तो मुझे उनके विचारोंमें पर्याप्त गम्भीरता दिखायी दी। सत्संगको विचारजन्य अनुभूतिके साधनरूपमें ही होने देना इन्हें रुचिकर था। इन्हें मिथ्या तुष्टि और गुरुडमसे चिढ़ थी। इनसे हृदय मिलनेपर महाराजजीके विषयमें विशेष बातों का ज्ञान हुआ।

सत्संगमें आते-आते मुझे श्रीमहाराजजीकी कृपादृष्टि और सहज स्नेहका अनुभव होने लगा। अब हमारी चर्चाका विषय केवल वेदान्तविषय ही नहीं रहा वरन् अनुभूतिका स्वरूप, समाधि, योगकी कतिपय क्रियाएँ और व्यावहार भी हो गया। महाराजजी कभी-कभी विना पूछे भी मुझे अनेकों आवश्यक विषयोंका मार्मिक उपदेश दिया करते थे। मुझ साधनहीनपर उनकी जो अहैतुकी स्नेहवर्षा हुई उसने मुझे पागल-सा बना दिया। जब भी अवकाश मिलता मैं उनके पास चला जाता था। उस समय मेरा एकमात्र साधन उनका सत्संग ही रह गया था। वे भी अन्यान्य कार्योंसे अवकाश पाते ही मुझे बुला लेते थे।

उनकी विशेषताओंके विषयमें मैं कुछ भी कहनेका अधिकारी नहीं हूँ, क्योंकि मैंने उनके व्यक्तित्वका समालोचनात्मक निरीक्षण कभी नहीं किया। मैं जबतक उनके सम्पर्कमें रहा उन्होंने मुझे बराबर अपने स्नेह-सरोवरमें निमग्न रखा। फिर भी अपने अनुभवके आधारपर इतना तो निःसन्देह कह ही सकता हूँ कि वे अपने समयकी उच्चतम विभूतियोंमेंसे थे। मुझे जो शान्ति और आध्यात्मिक स्फूर्ति उनके चरणकमलोंकी छायामें प्राप्त हुई, वह अत्यन्त दुर्लभ थी। विचारके प्रसंगमें मेरे मनमें कुछ ऐसे प्रश्न आ जाते थे जो प्रकरण ग्रन्थोंकी विचारप्रणालीसे भिन्न भूमिकामें उद्भूत

होनेके कारण अत्यन्त जटिल प्रतीत होते थे। उनको यथावत् समझकर उनका समुचित समाधान करना अशक्य-सा ही था। अनेकों महात्माओंके सामने तो उनको उपस्थित करनेमें भी भय और संकोच अनुभव होता था। श्रीमहाराजजीके निकट तो भय या संकोचका कोई प्रसङ्ग ही नहीं था। उनके यहाँ ऐसे प्रश्नोत्तरके अवसरपर मर्यादारक्षणके लिये कृत्रिम नियमोंका आश्रय नहीं लिया जाता था। उनमें स्वाभाविक ही ऐसा प्रभाव था कि उनके समीप किसी भी सहृदयको अशिष्ट होनेकी प्रवृत्ति नहीं होती थी। साथ ही उनके उत्तर इतने गम्भीर और मर्मस्पर्शी होते थे कि जिज्ञासुका हृदय शीघ्र ही समाधि-स्थितिका-सा अनुभव करने लगता था। अतः उनके सत्सङ्गसे मेरे उन सभी प्रश्नोंका अन्त हो गया जो मेरी आध्यात्मिक रसानुभूतिमें बाधक थे। इसके अतिरिक्त बहुत नवीन प्रकाश भी मिला।

विचारसे जो लाभ होना चाहिये था वह तो हुआ ही, उसके सिवा बहुत बड़ा लाभ तो उनकी सन्निधिमें रहकर उनकी स्वाभाविकी असंगताके दर्शनसे हुआ। उसके द्वारा अपने जीवनके व्यावहारिक पक्षको लक्ष्यानुरूप निर्माण करनेकी प्रेरणा प्राप्त हुई। वे अपने कृपापात्र भक्तोंको विचारके उच्चतम शिखरतक पहुँचाकर ही सन्तुष्ट नहीं होते थे, वरन् ज्ञाननिष्ठाकी दृढ़ताके लिये प्रयत्नशील रहनेका भी उनका आग्रहपूर्ण आदेश था। उनके विचारमें संन्यास का उद्देश्य निःस्पन्दता था। उनका कथन था कि इसके लिये तबतक अभ्यास करते रहना चाहिये जबतक वह ऐच्छिक न हो जाय। जबतक प्राणस्पन्दनिरोध ऐच्छिक नहीं हो जाता तबतक साधक कामपर आत्यन्तिक विजय प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने एक

दिन मुझसे कहा था, "बेटा ! मेरा यह अभ्यास पचास वर्षोंसे चल रहा है। फिर बादमें मुझे पता चला कि उनको यह स्थिति स्वायत्त हो गयी थी।

मुझे श्रीमहाराजजीके सत्सङ्गका सुयोग तब मिला जब वे वृद्ध और रुग्ण थे। उस समय भी मैंने उनमें अभ्यासकी जितनी तत्परता देखी, उतनी आजकलके तरुण साधकोंमें भी मिलना कठिन है। एक दिनकी बात है, श्रीमहाराजजी गङ्गातटपर विचर रहे थे। उस समय उनके साथ कोई पचास भक्त होंगे। रात्रिको सबके साथ आपने गाँवके बाहर एक खाली मकानमें निवास किया। मैंने अर्ध-रात्रिके समय नींद खुलने पर देखा कि सब लोग निद्रादेवीकी गोदमें हैं और श्रीमहाराजजी सिद्धासन लगाये योगनिद्रामें। उस समय स्वच्छ आकाशमें पूर्णचन्द्र अपनी अमृतमयी शीतल रश्मियोंसे विश्वको शीतलता प्रदान कर रहा था। वह दृश्य आजभी मेरे हृदयमें प्रत्यक्ष-जैसा है! उन्होंने डटकर निद्रा शायद ही कभी ली हो।

मेरा यह सौभाग्य यद्यपि थोड़े ही कालमें समाप्त हो गया। तथापि उस स्वल्प समयकी ही स्मृतियाँ और अनुभूतियाँ मेरे लिये पर्याप्त हैं। उनकी असीम कृपाके लिये क्या कृतज्ञता प्रकट करूँ—यह मेरी क्षुद्रबुद्धिमें नहीं आता। इतना ही आता है कि जो उनसे पाया है उसपर यदि यत्किञ्चित् भी आचरण करूँ तो वही सम्भवतः उनकी सबसे प्रिय सेवा होगी।

बाबा श्रीरामदासजी महाराज, करह (ग्वालियर)

प्रातःस्मरणीय बाबाका दर्शन सर्वप्रथम मैंने अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन यज्ञ भूसीमें किया था। वहीं उनके प्रेमपूर्ण व्यवहारसे मैं उनकी ओर आकर्षित भी हो गया। उन दिनों बाबाका ऐसा स्वभाव था कि कोई कुछ भी बात करता हो आप चुप बैठे रहते थे। कोई प्रश्न करता तो प्रेमसे समझा देते थे। जब मैं श्रीरामायणजीकी कथा कहता तो आप बड़े प्रेमसे सुनते थे। एक अन्य कथावाचक महोदय अनेक प्रकारके बाह्य दृष्टान्तोंद्वारा जनताका मनोरञ्जन किया करते थे। इसपर [कहना नहीं चाहिये, विज्ञजन क्षमा करें] बाबाने श्रीमुखसे कहा था, "प्रेमभावकी कथा तो रामदासजीकी ही होती है।"

अखण्ड संकीर्तनके समाप्त हो जाने पर मुझे प्रयाग-परिक्रमा, श्रीअयोध्यायात्रा और लखनऊपर्यन्त श्रीस्वामीजीके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् तो जहाँ-कहीं उत्सव होता, वे मुझे अवश्य बुलाते थे। श्रीरामायणकी कथामें उनका अपार अनुराग देखा। मुझपर उनकी अपार कृपा थी। मेरी तथा मेरे साथ रहने-वाले सन्तों की छोटी-छोटी आवश्यकताओंका भी वे बड़ा ध्यान रखते थे। यद्यपि इससे मुझे बड़ा संकोच होता था, परन्तु प्रेमवश वे मानते नहीं थे। खन्नामें उनकी आँखें प्रेमाश्रुओंसे भर आयी थीं, जब उन्होंने कहा था—"बाबा! मेरा तो स्वास्थ्य ठीक नहीं है, आप गाड़ीपर बैठते ही हैं। वर्ष में कम-से-कम तीन बार अवश्य आया करें।" श्रीस्वामीजीके ये वचन मुझे जन्मभर नहीं भूलेंगे।

ऐसा कई बार हुआ कि जब सत्सङ्गमें स्वामीजी अद्वैत वेदान्त-का वर्णन करते होते और मैं पहुँच जाता तो वे प्रसंग बदलकर शुद्ध भक्तियोगका वर्णन करने लगते। कारण यही था कि नाम-रूप-मिथ्याप्रतिपादक अद्वैत वेदान्तके प्रतिपादन द्वारा वे भक्तोंके हृदयमें ठेस पहुँचाना नहीं चाहते थे। ऐसा करना उनके स्वाभावके विपरीत था।

(१)

एक बार स्वामीजीके पास एक वकील साहब आये। वे ईश्वरपर विश्वास नहीं रखते थे। उनसे उनकी इस प्रकार बातें हुईं—

वकील साहब—प्रकृति ही सब कार्य करती है। जैसे एक बीज-से अन्य बीज उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ही पशु-से-पशु और स्त्री-पुरुष-संयोगसे मनुष्योंकी सृष्टि होती रहती है। मनुष्य पृथ्वी आदि तत्त्वोंसे असंख्य वस्तुएँ निर्माण कर लेता है।

स्वामीजी—परन्तु पृथ्वी आदि तत्त्वोंको किसने बनाया ?

इस पर वकील साहब चुप हो गये। कुछ भी न बोले। तब स्वामीजीने पूछा—क्या काम करते हो ?

वकील साहब—वकालत करता हूँ।

स्वामीजी—तभी तो बुद्धि तर्कजालमें पड़ गयी है।

वकील साहब—क्या आप ईश्वर की सत्ताको समझा सकते हैं ?

स्वामीजी—एक वर्षतक पच्चीस हजार नाम प्रतिदिन जपो, तब समझाऊँगा।

(२)

जब स्वामीजी स्थान करहके यज्ञमें पधारे थे तो बड़ी तत्परतासे प्रत्येक कार्य की स्वयं देख-भाल करते थे। अपने निजजनोंको सम्पूर्ण

सेवाकार्यके लिये आज्ञा दे रखी थी। यहाँ तक कह रखा था कि माला और भजन छोड़कर भी भगवत्सेवाभावसे सम्पूर्ण कार्य करो। कथा, कीर्तन, सत्संग एवं रासलीला आदि सभी कार्यक्रमोंमें बड़े प्रेमसे सम्मिलित होते थे। उस समय उनका बड़ा ही अनुराग देखनेमें आया। उत्सवकी समाप्तिके बाद जब बिदाईका समय आया तो आपने कुछ भी भेंट स्वीकार नहीं की। बोले, "यहाँसे लेना नहीं है।" अपने एक सेवक रामबाबूके द्वारा आपने रजाइयोंकी सेवा भी करायी। चुपकेसे आपके एक रसोइयाको एक रजाई दे दी गयी। जब आपको पता लगा तो उसे फटकारा कि रजाई ली क्यों।

एक बार मैं रामघाटमें श्रीस्वामीजीके पास श्रीरामायणजीकी कथा कह रहा था। वहीं स्वामी विवेकानन्दजी योगवसिष्ठकी कथा भी कहते थे। एकदिन कथा में यह प्रसंग आया—

'मोह मगन मति नहि विदेहकी। महिमा सिय रघुवर सनेहकी।'

उस समय श्रोताओंके नेत्रोंमें आँसू आ गये। अनेक संन्यासी संत भी बैठे थे। उनमेंसे तीन-चारको प्रेमाश्रु आ गये। इसपर स्वामी विवेकानन्द कहने लगे, इनका संन्यास बिगड़ गया। ज्ञानी पुरुष कभी रो नहीं सकता।" तब स्वामीजीने कहा, "प्रेममें ज्ञानीको आँसू क्यों नहीं आ सकते। राजा जनकको देखो, पूर्ण ज्ञानी होते हुए भगवत्प्रेममें कैसे रो रहे हैं ? आज-कल तो जनक-जैसा कोई भी ज्ञानी नहीं है। भगवत्प्रेमकी महिमा ही यह है कि उससे ज्ञानी भी रो पड़ते हैं।"

(३)

एक बार श्रीस्वामीजीने मुझसे कहा था कि हम और आप एक साथ तीर्थयात्रा को चलेंगे। उसके कुछ समय पश्चात् आप परम-

धाम पधार गये। तीर्थयात्राका प्रोग्राम पूरा न हो सका। स्वामीजी के परमधाम पधारनेके दो वर्ष बाद मैं पण्डरपुर गया। यह दक्षिण-का महान् तीर्थस्थान है, जहाँ श्रीविट्ठल भगवान् और रखूमाई (रुक्मिणीजी) विराजते हैं। एकदिन रात्रिमें मुझे श्रीस्वामीने स्वप्नमें दर्शन दिया। मैंने पूछा, "बाबा! आप यहाँ कहाँ?" स्वामीजी बोले,"मैंने आपसे कहा था न कि हम और आप एक साथ तीर्थयात्रा को चलेंगे' इसीलिये आया हूँ।" ठीक उसी रातको मीरा और पुजारीको* भी आपने स्वप्नमें दर्शन दिया और बतलाया कि हमने बाबा को वचन दिया था कि हम दोनों एक साथ तीर्थयात्राको चलेंगे, इसीलिये आया हूँ।" प्रातःकाल नींद खुलनेपर जब आपसमें स्वप्नों की चर्चा चली तो हम सभी आश्चर्य करने लगे।

(४)

श्रीस्वामीजी प्रायः कहा करते थे कि शिष्यके कल्याणके लिये उसमें गुरुनिष्ठाका होना नितान्त आवश्यक है। एक बार गुरुनिष्ठापर एक कथा भी सुनाई थी, जो इस प्रकार है —

उड़ीसा प्रान्तमें एक कायस्थ सज्जन थे। उन्होंने माँ कालीकी उपासनाके लिये एक ब्राह्मणसे मन्त्रकी दीक्षा ली थी। ब्राह्मण देवता मदिरापान किया करते थे। दैववशात् मदिराके नशेमें उन्होंने मन्त्र-का अशुद्ध उच्चारण किया। और शिष्यने उसीको ग्रहण कर लिया। वे एक वर्ष पर्यन्त अशुद्ध मन्त्र को ही जपते रहे। तब माँ कालीने उन्हें साक्षात् दर्शन देकर कहा, "वत्स! तुम्हारा मन्त्र अशुद्ध है, इसे शुद्ध करके जपा करो।"

---

*श्रीरामदासबाबाके सेवक।

शिष्य—माँ ! मेरा मन्त्र तो गुरुजीसे मिला हुआ है, वह अशुद्ध कैसे हो सकता है ?

काली—तेरे गुरुने मदिरा के नशेमें मन्त्रका अशुद्ध उच्चारण किया था।

शिष्य—माँ ! गुरुजीके दिये हुए जिस मन्त्रका केवल एक वर्ष जप करनेसे आपने साक्षात् दर्शन् दिया वह अशुद्ध कैसे हो सकता है ? वह जैसा भी हो, मैं तो उसीका जप करूँगा।

काली—तेरी गुरुनिष्ठासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। वर मांग।

शिष्य—माँ ! गुरुजीने मुझे जो मन्त्र दिया है उसीका जाप करने से आप दर्शन दिया करें।

काली—एवमस्तु।

आजभी उड़ीसा प्रान्तमें उस अशुद्ध मन्त्र से जितनी जल्दी सिद्धि मिलती है उतनी जल्दी शुद्ध मन्त्र के जपनेसे नहीं मिलती।

स्वामी श्रीविज्ञानभिक्षुजी परिव्राजक (विशारदजी)

संत अकारण ही कृपा करते हैं।

यह बात सन् १६४२ के चैत्र मासकी है। मैं पाठशालाके मैदानमें घासपर बैठा था। सूर्यनारायण अस्त हो चुके थे। कुछ अध्यापक द्रुत गतिसे पगपथपर जा रहे थे। उनमेंसे एक ने कहा, "आप यहाँ बैठे क्या कर रहे हैं ? चलिये, परमहंस श्रीउड़ियाजी महाराज गंगातटसे पधारे हैं, उनके दर्शन कर आवें।" पूज्य श्रीमहाराजजीका नाम तो पहले ही सुन चुका था, सुनते ही ज्यों-का-त्यों उठकर चल दिया। एक वृद्ध अध्यापकजीके आदेशानुसार सत्संग चलानेके लिये कुछ प्रश्न भी सोच लिये।

इसी उधेड़-बुनमें सहतानिवासी भाई कन्हैयालालजीका बाग आ गया। पूज्य महाराजजी चौकीपर विराजमान थे। आस-पासकी ग्राम्य जनता भी पर्याप्त मात्रामें थी। बड़ी ओजस्वी भाषामें आपका प्रवचन हो रहा था। सम्भवतः किसी प्रश्नका उत्तर दिया जा रहा था। हम लोग भी पीछे बैठकर उपदेश सुनने लगे। भाषणका तारतम्य इस प्रकारसे मिलता जा रहा था कि सभी प्रसंग गुम्फित होते हुए मेरे प्रश्नोंके उत्तर थे। सारी शंकाओं का समाधान सहज ही हो गया। जनता मन्त्रमुग्ध-सी होकर एकटक दर्शन करती हुए प्रवचन सुन रही थी। मैं भी चकित रह गया। वास्तवमें मैंने जैसा सुना था उससे भी अधिक पाया; और पाया अपनी समझसे भी परे; नहीं, नहीं, बहुत परे।

प्रवचन समाप्त हुआ। लोग पुनः कानाफूसी करने लगे। यह

बात मुझे असह्य हुई। मैंने कुछ और सुनने की इच्छासे जान-बूझकर खड़े हो करबद्ध प्रणाम कर एक प्रश्न कर दिया—"यह प्रश्नकर्त्ता कौन है ?"

पं० श्रीशिवदयालजीने करबद्ध प्रार्थना की, 'महाराजजी ! यही चिरञ्जीलाल* हैं।"

"अच्छा ! यही है चिरञ्जी।" इन शब्दोंको सुनकर मेरी क्या दशा हुई, लिखने की बात नहीं है।

"बताओ, तुम्हारे जीवनका क्या लक्ष्य है ?"

मैंने हड़बड़ाकर उत्तर दिया, "समाजसेवा।"

"अरे ! तू क्या समाजसेवा करेगा !"

मुझे पता नहीं कि आगे आप क्या-क्या कह गये :

कल रविवार है, प्रातःकाल ८ बजे आ जाना," मुझे आज्ञा दी गयी।

रातभर नींद नहीं आयी। श्रीसन्तोंकी महान् महत्ता और अपनी तुच्छताका विचार रह-रहकर आता रहा। अन्ततः यही निश्चय हुआ कि श्रीमहाराजजीने मुझे अपना लिया है। सन्तोंकी कृपा अकारण ही होती है—यह ध्रुव सत्य है।

मैं प्रातःकाल ७ बजे ही कुटियाके सामने पहुँचकर बैठ गया। उन दिनों आप प्रातःकाल प्रायः ९ बजे उठकर शौचादि से निवृत्त होते थे। परन्तु आज तो आठके पूर्व ही बाहर निकल आये। मैं चरणोंमें लोट गया।

आप दतौन करते हुए चल दिये और मैंने कमण्डलु उठा लिया। आपके दर्शन करके सभी आकर्षित हो जाते थे। कुछ देर पश्चात् और लोग भी आगये। बड़ी प्रसन्नतासे सबने आपको स्नान कराया।

*लेखक का पूर्वाश्रम का नाम।

तत्पश्चात् आप मुझे अपने साथ बागमें ले गये और एक सन्तरे के पेड़के नीचे एकान्तमें ढेलोंपर ही सिद्धासनसे बैठ गये, जैसा कि आपका स्वभाव था।

मैंने निराकार ईश्वरके ध्यानके विषयमें अपना प्रश्न और शङ्काएँ आपके सम्मुख रखीं। यही विषय कई वर्षोंसे मुझे उलझन-में डाले हुए था, जिसका न तो तबतक समाधान हुआ था और न मुझे अभ्यासकी विधि ही अवगत हुई थी। इसके लिये मैं कई सन्त-महात्माओंसे प्रार्थना कर चुका था। आपकी मेरे ऊपर असीम कृपा तो पहले ही हो चुकी थी। प्रश्नका उत्तर बहुत ही थोड़े शब्दोंमें सयुक्तिक देकर, सभी शङ्काओंका श्रुतिप्रमाणपूर्वक समाधान कर बड़ी सरलता से अभ्यासकी विधि समझा दी; तथा स्वयं करते हुए साथ-साथ मुझसे भी कराने लगे। जबतक मुझे सन्तोष न हुआ बार-बार पूछते रहे। कई बार अभ्यास कराया और जबतक मैंने यह नहीं कह दिया कि अब कर लिया करूँगा, ठीक समझ गया हूँ, कोई रुकावट नहीं होगी—बीचमें नहीं छोड़ा। लगभग डेढ़ घण्टा लग गया। मेरे हर्षका क्या ठिकाना रहा—इसे कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है।

इधर लोगोंकी भीड़ जमा हो रही थी। मुझे देखकर कई लोग कहने लगे, "इतनी जल्दी ऐसा कसकर पकड़ा है।" उनका कहना यथार्थ था। अन्तर केवल इतना था कि वे मेरे प्रति कह रहे थे और मैं श्रीमहाराजजी के प्रति समझ रहा था।

श्रीभगवानदासजी, मास्टर प्रेम और नत्थीलालजी आदि हमलोग समय-समयपर रामघाट, कर्णवास, अनूपशहर दर्शनार्थ जाया करते थे। उन दिनों आप अधिकतर गङ्गातटपर ही विचरते थे। मुझे प्रायः

यही सावधान करते थे, "बेटा ! विवाहके चक्करमें मत पड़ जाना।" जब मैं नौकरी छोड़नेके सम्बन्धमें प्रार्थना करता तो यही शब्द सुननेको मिलते, "अरे ! नौकरी स्वयं छोड़ देगी, तू क्या छोड़ेगा ?" अन्तमें आज्ञा हुई, "जब मैं कहूँ छोड़ देना।"

एक दिन अचानक ही मुझे सम्बोधित करते हुए बोले, "अरे चिरञ्जी ! अब नौकरी छोड़ दे। तुझसे काम ठीक नहीं होता।" बात यथार्थ थी। मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। इस प्रकार श्रीमहाराजजीने अध्यापकी छुड़ा गुरुपूर्णिमा सन् १९४१ ई० को कर्णवासमें वाह्य चिह्न देकर सदैवके लिये निवृत्तिपथका पथिक बना दिया।

यह हुई मुझपर अकारण ही सन्तकृपा, जिसे यथार्थ कृपा कहना चाहिये। पूज्य गुरुदेव इस वाक्यको प्रायः कहा करते थे—'सन्तके भेदको वेद न जाने।' जिसे श्रुति भी जाननेमें असमर्थ है उसे मनुष्य और मनुष्योंमें भी साधारण तथा उनमें भी मुझ-जैसा बालबुद्धि क्या समझ सकता है ? फिर विशेषता यह कि श्रीमहाराजजीने अपनी लीलाओंद्वारा अपनेको ऐसा छिपा लिया था कि उन्हें समझना असम्भव था। सर्वथा असम्भव ही था। अतः यहाँ कुछ ऐसी घटनाएँ देता हूँ जिनमें यथावसर उन्हींके कहे हुए सद्वाक्य घटित होते देखे हैं।

(१)

एक बार हम लोग श्रीकृष्णजन्माष्टमीपर दर्शन करने गये। उन दिनों श्रीगुरुदेव गङ्गाकिनारे रामघाटमें ही रहते थे। अवस्था भी पूर्ण त्याग और वैराग्यमयी थी। प्रायः हर समय ध्यानावस्थित

रहते थे। कोई आओ, कोई जाओ, चाहे खड़े रहो चाहे बैठ जाओ, किसीने प्रश्न किया तो बहुत थोड़े शब्दोंमें उत्तर दे दिया। नेत्र प्रायः बन्द या अर्धोन्मीलित अवस्थामें रहते थे। सदैव सिद्धासनसे बैठते थे। स्त्री-समाजको दर्शन करनेतककी आज्ञा नहीं थी। एक बाईने केवल दर्शन करनेके लिये अत्यन्त प्रयत्न किया, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। एक खिड़की थी; कुटिया बन्द होनेपर भिक्षासामग्री उसमें होकर भीतर पहुँचा दी जाती थी। नौ-नौ घंटे तक स्थिर समाधिमें एक आसनसे बैठे हुए तो लोगों ने स्वयं देखा था। मोहनपुरके भक्त-प्रवर श्रीरामदास जो प्रायः हर समय सेवामें रहते थे, कहा करते थे कि महाराजजी दूधका कटोरा मुँह से लगा देने पर भी ध्यानस्थ रहनेके कारण पी नहीं पाते थे। प्रायः नौ बजे कुटीका द्वार खुलता था। दो-चार भक्त, जो उस समय आ जाते थे, दर्शन-प्रणाम कर साथ-साथ श्रीगंगास्नानके लिये चल देते थे। श्रीमहाराजजी मार्गमें दातौन करते प्रायः मौन या कुछ परमार्थचर्चा करते हुए धीमी चाल-से ध्यानमुद्रामें ही आगे-आगे चलते थे। आपका स्वर कोमल और सरस था। उसमें तीक्ष्णता आदिको तो स्थान ही कहाँ था ?

शौच-स्नान आदिसे निश्चिन्त होनेपर रेतीमें ही सत्सङ्ग होने लगता था। बारह बजेके लगभग कुटियापर वापस पहुँचते थे और भिक्षाकी झोली ले रामघाट या गोकुलपुर भिक्षाके लिये चले जाते थे तथा अन्य लोग अपने-अपने स्थानोंको लौट जाते थे। रात्रिमें दस बजेके पश्चात् कुटियापर कोई रह नहीं सकता था तथा प्रातःकाल आठ बजेके पूर्व कोई नहीं जा सकता था। उन दिनों झाड़ीमें हिंसक पशु भी देखे जाते थे, परन्तु आपका कथन "फकीर बेख्वाहिश बेपर-वाह होते हैं" पूर्णतया आपपर घटित होता था।

आपने मुझसे पूछा, "चिरञ्जी ! व्रत रखता है ?" मैंने प्रार्थना की, "आजके दिन मेरी माताजीका देहान्त हुआ था, अतः हमारे लिये जन्माष्टमी खोटी है।" आप मौन रहे। थोड़ी देरबाद प्रसादमें पेड़े आ गये। तब मुझे प्रेमसे देकर कहा, "खा ले।"

सायंकाल हमलोग रामघाट गये और कुछ खा-पीकर जब लौटे तो प्रश्न हुआ, "कहाँ गये थे तुम लोग ?"

मैंने निवेदन किया, "बस्ती में चले गये थे।"

"क्यों ? भूख लगी होगी।" कुछ मुसकराते हुए बोले, "क्या खाया था ?"

मैंने कहा, "पेड़े।"

"और क्या ?"

मैंने उत्तर दिया, "और तो कुछ नहीं खाया।"

श्रीगुरुदेव एक मास्टरकी ओर देखकर मुसकरा गये। इन्हें तम्बाकू पीनेकी आदत थी। उसी समय मुझे भी याद आयी कि मास्टरजीने बीड़ी पी थी। मैं भी उनकी ओर देखकर कुछ मुसकरा गया। मास्टरजीपर घड़ों पानी पड़ गया।

तत्काल ही प्रसङ्ग चलाकर आपने कहा, "बेटा ! आजके दिन अन्न नहीं खाना चाहिये। व्रत रखकर धूम्रपान आदि नशा नहीं करना चाहिये। लोग व्रत रखकर भंग पीते हैं यह ठीक नहीं।"

बस, मास्टर जोरावरसिंहजीने श्रीगंगाजीमें खड़े होकर सदैवके लिये धूम्रपान छोड़नेकी प्रतिज्ञा की। इसी प्रकार आपके संकेतमात्र-से कई लोगोंने आजन्म ब्रह्मचर्यपालनका नियम भी लिया था।

(२)

यों तो रामघाटके अधिकांश लोग साधुसेवी थे। परन्तु श्रीमहाराजजीके कृपापात्रोंमें विशेषत: श्रीवंशीधरजी और बाबू रामसहायजी उल्लेखनीय हैं। पं० श्रीवंशीधरजीने ही सबसे पहले पूज्य गुरुदेवका आरती-पूजन आदि किया। आपका यही प्रयत्न रहता था कि श्रीगुरुदेवजी रामघाटमें ही रहें। बाबू रामसहायजीने तो अपना सर्वस्व ही दे डाला। ये अपनी सारी क्रियाएँ और भाव गुप्त रखने की चेष्टा करते रहे हैं। अब भी इनकी विचित्र दशा है, कोई समझ नहीं पाता। लोगोंकी दृष्टिमें तो ये सर्वदा श्रीगुरुदेवसे झगड़ा-सा ही करते रहते थे। आप उनके गुप्त कृपापात्र थे।

एक बार रामघाटमें जूतोंकी चोरी अधिक होने लगी। यह बात श्रीमहाराजजी तक पहुँची। आपने हँसकर कहा, "हमारे यहाँ सब कुछ है। सत्सङ्ग चाहनेवालेको सत्सङ्ग, प्रसाद चाहनेवालेको प्रसाद और जूते चाहनेवालेको जूते।" सुनकर सबलोग हँस पड़े।

(३)

दो बङ्गाली नवयुवकोंके पीछे खुफिया पुलिस लगी हुई थी। आपने उन दोनोंको भोजन कराकर झाड़ी-ही-झाड़ीमें होकर दूर पहुँचवा दिया। इस प्रकार उनकी रक्षा हो गयी। आप सत्सङ्गमें आकर बैठ गये, जहाँ पुलिसके लोग अपने अफसरोंके साथ साधारण वेषमें बैठे थे। वार्तालापके बीचमें आप कहने लगे, "देखो भैया! महात्मा किसीको बँधवाता नहीं, वह तो मुक्तिदाता है।" फिर अफसरकी ओर देखकर मुसकराते हुए कहा, "क्यों रे! ठीक है न?"

अफसर भी मुसकराता हुआ बोला, "महात्माजी ! आप ठीक-ही कहते हैं।"

जब वे लोग जाने लगे तो आपने उन्हें भी प्रसाद देकर विदा किया।

(४)

एक बार हम लोग अनूपशहर दर्शन करनेके लिये गये। शीतकाल था, श्रीगुरुदेव पं० श्रीरामशंकरजीके बगीचेमें विराजमान थे। रातको १२ बजेसे पूर्व कभी सोते ही नहीं थे। प्रातःकाल सत्संग आरम्भ हो जाता था। रातको प्रायः १२ बजे मुझसे कहा, "हमारे लिये क्या लाया है ?" मैंने एक पुस्तक सामने रख दी।

हम लोग सोने चले गये। नींद मुझे भी कम आयी। उठकर आपकी कुटिया में पहुँचा। आप ध्यानावस्थित थे। थोड़ी देर बाद बोले, "बत्ती जला दे।" बत्ती जला दी गयी। अभी चार नहीं बजे थे। कहने लगे, "पुस्तक तो अच्छी है। मैंने साधनसम्बन्धी बढ़िया स्थलोंपर चिह्न भी लगा दिये हैं। यह असङ्गताके अभ्यासमें बड़े काम-की चीज है।"

यों तो श्रीगुरुदेवने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और सुख-दुःख (अनुकूलता-प्रतिकूलता) के सम्बन्धमें असङ्गताके अभ्यासके प्रति उदाहरणसहित भली प्रकार क्रियात्मकरूपसे समझा दिया था। मैंने पुस्तक उठाकर देखी। सारी पुस्तकमें यत्र-तत्र लाल पेंसिलसे रेखाएँ खिची हुई थीं।

"श्रीमहाराजजी ! आज तो आप बिलकुल ही नहीं सोये" मैंने कहा।

आप बड़ीही गम्भीर वाणीमें कहने लगे, "जीवका सोना तो स्वभावसिद्ध है। वह सदैव सोता ही रहता है। जागनेपर जीव जीव नहीं रहेगा।

(५)

एक बार एक बहुत बड़े आदमी श्रीमहाराजजीके दर्शन करनेके लिये वृन्दावन आये। जब वे चलने लगे तो आप भी उनके पीछे-पीछे परमहंस आश्रमतक चले गये। उन भले आदमीने आपको साथ चलनेसे नहीं रोका। शिष्टताके नाते ही सही, रोकना तो आवश्यक था। यह मुझे अखरा। अवसर मिलनेपर मैंने प्रार्थना की, "भगवन्! आप तो लोगोंके साथ-साथ उन्हें पहुँचानेके लिये इतनी दूरतक चले जाते हैं।" मुझे खिन्नमन देखकर आप हँसते हुए बोले, "अरे, तू बड़ा बावला है। देख, पहले के बड़े लोग महात्माओंके पास परामर्श-की इच्छासे आया करते थे। परन्तु अब वे हमसे भी मान-सम्मान चाहते हैं। हमारी इसमें क्या हानि है? लो, मान-सम्मान भी लेलो। हमारे यहाँ इसकी भी कमी नहीं है।"

(६)

रामनवमीका उत्सव कर आप करहसे ग्वालियर होकर होलीपुरा जा रहे थे। रात के नौ बज चुके थे। एक मन्दिर और कुँआ देखकर वहीं ठहरनेका विचार कर लिया। मन्दिरके पुजारीने, न जाने, क्या समझा। कहने लगा, "महात्माजी! आगे आधे मीलपर ही ठहरने-का बड़ा अच्छा स्थान है।" श्रीमहाराजजीने कहा, "अब तो आसन पड़ गया। हम लोग आपको कुछ कष्ट नहीं देंगे।" बस, मन्दिर और कुएँ से हटकर हम सबने आसन लगा लिये।

प्रात.काल जब चलकर निर्दिष्ट स्थानपर दोपहरके लगभग पहुँचे

तो मार्गमें कोई स्थान नहीं मिला । आपने कहा, "यदि रातको उसकी बात मानकर चल देते तो कितना कष्ट पाते । संकल्प नहीं बदलना चाहिये । जो हो गया, सो हो गया ।"

(७)

एक गाँवमें प्रातःकाल श्रीगुरुदेव कुएँ पर खड़े दातौन कर रहे थे। गाँवके बहुतसे दर्शनार्थी तथा हमलोग आस-पास खड़े हुए थे । एक बहुत हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति हाथमें बन्दूक लिये हुए आया । पहले उसने बन्दूक अलग रख दी । फिर श्रीगुरुदेवको बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर प्रणाम किया और चरण छूकर अलग खड़ा हो गया । जब वह चला गया तो लोगोंने कहा, "महात्माजी ! यह इस प्रान्तका बहुत बड़ा डाकू है । प्रायः चम्बल के खारोंमें रहता है । कभी बन्दूक अलग नहीं रखता । भोजनके समय भी पास ही रहती है । किसीको प्रणाम करना तो जानता ही नहीं । आज इसकी यह नयी बात देखनेमें आयी है ।"

सन्तोंके पास पहुँचकर ऐसे दुष्टोंका स्वभाव भी बदल जाता है ।

(८)

श्रीमहाराजजी प्रायः ग्रीष्मकालमें ही परिभ्रमण किया करते थे । ग्रीष्मकी तपन और लू में सम्पूर्ण दुपहरी बागमें वृक्षोंके नीचे और प्रातः-सायं चलनेमें व्यतीत होते थे ।

होलीपुरासे वृन्दावन जाते हुए आप आगरा पधारे । वहाँके एक सुयोग्य भक्तने आलूके कारखानेमें उन्हीं कमरों में, जिनमें आलू और प्याज भरे पड़े थे, ले जाकर ठहरा दिया । सामने थोड़ी-ही दूरपर सड़े हुए पानीका कुण्ड था । दुर्गन्धका क्या ठिकाना । सांस लेना भी कठिन था । शहरके अन्य प्रतिष्ठित लोगोंने दूसरे स्थानपर ठहरनेकी

बहुत प्रार्थना की। आप बोले, "साधुका आसन जहाँ पड़ गया, पड़ गया। दूसरेका चित्त दुःखी न हो, अब चाहे कितना ही कष्ट सहन करना पड़े। विवश होकर हम लोगोंको पन्द्रह-सोलह दिन वहीं काटने पड़े। आप कहा करते थे, "साधुको सब कुछ सहन करना चाहिये। सब कुछ सहन करना और परेच्छापर निर्भर रहना ही साधुता है।"

(९)

पूज्यपाद अमरसावाले स्वामीजी (श्रीरामानन्दजी सरस्वती) को फ़ालिज मार गया था। वे गंगातटपर शहवाजपुरमें अपने आश्रमपर थे। उनके शब्द-संकेतसे ज्ञात हुआ कि वे आपसे मिलना चाहते थे। आप भी रामघाटमें संग्रहणी रोगसे पीड़ित थे। परन्तु अपने कष्टकी कुछ परवाह न करके चल दिये। बड़ी अनुनय-विनय करनेपर हम लोगोंको साथ लिया। कष्ट सहन करके शीघ्रतासे चलकर उनसे मिले और तीन-चार दिन ठहरकर लौट पड़े। आप कहा करते थे— "शून्या दृष्टिः वृथा चेष्टा।"

(१०)

आपको अन्य लोगोंका ध्यान बहुत अधिक रहता था। एकबार पितृपक्षकी अमावस्या करके कर्णवाससे भिरावटीको चले। वहाँ पूज्य श्रीहरिबाबाजी उत्सव कर रहे थे। कुटियासे चलनेमें दोपहर हो गया, प्रखर ताप बढ़ रहा था। नावसे गंगाजी पार करके बड़ी तेजीसे चले। मार्गमें न पानी न वृक्ष। हम सब लोग व्याकुल अवस्थामें भागते चले जारहे थे। चार मील चलकर एक बाग और कुआँ मिला। उसीके पास एक फूँसकी कुटियामें आप जा विराजे। हम लोग यत्र-तत्र वृक्षोंके नीचे जैसे-के-तैसे पड़ गये। प्याससे व्याकुल

होनेपर भी बहुतोंमें इतना साहस न रहा कि कुएँपर जाकर जल पी लें। हम लोगोंकी व्याकुलता देखकर बागवालों को सहृदयता दिखानेका अवसर मिला।

यह सब देखकर आप सांयकाल छः बजे वहाँसे चले। रास्तेमें कहते जाते थे, "धूपमें चलनेसे तो इस समय चलना ठीक है।" रातके दस बजे उत्सव-स्थलपर पहुँचे। लोगोंने बड़ा स्वागत किया। आप आसनपर इस प्रकार जा विराजे मानो कुछ हुआ ही नहीं।

इसी प्रकार एकबार अलीगढ़से कर्णवास जाते हुए रातको नरवर पाठशाला ठहरे। आज हम लोगोंको बहुत चलना पड़ा। हम तो थक ही गये थे, परन्तु आपकी चालसे हम लोगोंने जान लिया कि आज तो श्रीमहाराज भी थक गये हैं। आपकी वृद्धावस्था, लम्बी यात्रा, रोगग्रस्त शरीर और ग्रीष्मकाल। थकानेवाली सभी सामग्री तो थीं। थोड़ी देर बैठकर बोले, "आज तो मनसे चला हूँ।"

(११)

आप कहा करते थे, "साधुका सबसे बड़ा शत्रु क्षोभ है। यह हुआ और साधुता नष्ट हुई।"

एकबार आपको सम्पूर्ण समाजके सामने ही एक वयोवृद्ध विद्वान् ब्रह्मचारीजीने बड़े ही कटुवाक्य कहे और तिरस्कार करते हुए धिक्कारा। वे कीर्तनके बहुत विरुद्ध थे। आप चुपचाप खड़े सुनते रहे, मानो कुछ हो ही नहीं रहा है।

(१२)

उत्सव होरहा था। विद्वानोंके प्रवचन, रास, कीर्तन और कथा-वार्ताकी धूम थी। पण्डाल खचाखच भरा हुआ था। सनातन धर्मके एक बहुत प्रसिद्ध पण्डितजी, नहीं मालूम, क्यों खिन्न हो गये। वैसे

तो श्रीमहाराजजीका बहुत आदर करते थे। किन्तु आज प्रवचन करनेके लिये खड़े हुए तो सर्वप्रथम इन्हींकी कटु आलोचना करने लगे। अनाप-शनाप न मालूम क्या-क्या बके। उस दिन पंडितजीने निवृत्ति-पथानुगामियोंकी कटु आलोचना ही प्रवचनका विषय बना लिया। विद्वान् हो ठहरे। विद्याके अभिमानमें बहुत कुछ बोल गये। विषयान्तरके कारण पण्डित, विद्वान्, संन्यासी और वैष्णव महात्मा उठ गये। परन्तु आप जैसे-के-तैसे अचल स्थित रहे; यद्यपि सारी बौछार आपपर ही थी। जब उस समयका सारा प्रोग्राम समाप्त हुआ तब आप उठकर अपनी कुटियामें आये। मैंने कहा, "आज पण्डितजी तो बहुत ही बिगड़े हुए थे।" आप हँसकर बोले, "सेवामें कुछ कमी हो गयो होगी। पंडित और श्रीमान् मान-सम्मानके भूखे होते हैं। इन्हें तृप्त न करना अपनी ही भूल है।" प्रायः देखनेमें आता था कि असङ्ग रखते हुए भी औरोंकी भूलको अपनी बतलाकर समाजमें शान्ति रखना आपका उद्देश्य था।

(१३)

आप सहताके बागमें थे। एक पण्डितजी आगये और संस्कृत बोलने लगे। आपने मुसकराते हुए कहा, "पण्डितजी ! मैं तो संस्कृत पढ़ा नहीं हूँ, हिन्दी भी अच्छी तरह नहीं जानता।" फिर क्या था ? पण्डितजी धड़ाधड़ श्लोक बोलने लगे, परन्तु बोलते अशुद्ध थे। आप चुपचाप बैठे सुनते रहे। सब कुछ जानते हुए भी कुछ न बोले। पीछे उनकी पण्डिताई पर खूब हँसे।

(१४)

एक दिन एक ईसाई महोदय कहींसे आ गये। वे कदाचित् आगरेके थे। हिन्दूधर्मपर उन्होंने बहुत कटाक्ष किये। आप सब कुछ सुनते

रहे। हम लोगोंमेंसे भी किसीने कुछ न कहा। उसकी मूर्खतापर हँसते-मुसकराते रहे। हम लोगोंके मौन रहनेसे वह आगे बढ़ा और व्रज-गोपियोंपर कटाक्ष करने लगा। यह बात साधुओंको बुरी लगी। सम्भव था, कुछ झगड़ा हो जाता। आप बड़ी शान्तिसे बोले, "अच्छा भाई! एक बात बताओ, तुम ईसाई होते हुए श्रीकृष्णको प्रेम कर सकते हो ?"

"नहीं" उसने कहा।

"ईसाको प्रेम करते हो या ईसाइयतको ?" आपने प्रश्न किया।

वह घबड़ा गया कि क्या उत्तर दूँ। आपने समझ तो पहले ही सब कुछ लिया था। कहने लगे, "देखो, मैं हिन्दू साधु हूँ। परन्तु ईसासे प्रेम कर सकता हूँ। मैं ही क्या, प्रत्येक हिन्दू, हिन्दू रहते हुए, ईसा या बुद्ध आदिमेंसे जिसे चाहे प्रेम कर सकता है। प्रेम अलग है और मजहब अलग। मजहब नियमों में बँधा होगा, प्रेम स्वतंत्र है।" इसी प्रकार अनेक प्रकारसे उसे समझाया। अन्तमें बोले, "बेटा! तुम हिन्दूधर्मकी व्यापकता और प्रेमकी गूढ़ताको नहीं जानते।"

श्रीगुरुदेवके साधुतापूर्ण व्यवहारसे वह बहुत प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़कर क्षमायाचना करने लगा। आपने हँसते हुए कहा, "कोई बात नहीं, ऐसा तो होता ही रहता है।" पीछे वह हम लोगोंसे आपकी प्रशंसा करता क्षमायाचना करके चला गया।

(१५)

भोजनका समय था। भोजन गाँवसे बनकर बागमें आ चुका था। इतने ही में आसपासके गाँवोंसे पच्चीस-तीस व्यक्ति और आ

गये हम लोग उनके लिये गाँवसे प्रसाद माँगकर लानेकी सोचने लगे। आप 'अरे! नहीं रे! कुछ न करो' कहकर उससे बातचीत करने लगे। इतनेमें हाथरससे लड्डू और कचौड़ियोंकी झाल आ गयी। आपने हँसकर सबको प्रसाद बाँटा। बीचमें कहते जाते थे, "बेटा! खूब खाओ, तुम्हारे ही लिये आया है। सबको तृप्त कर दिया और बोले, मैं किसीको भूखा नहीं देख सकता।" यह बात आप कभी-कभी कहा ही करते थे।

दूसरोंको भोजन करानेमें आपको बड़ा आनन्द आता था। आपके यहाँ भोजन-भण्डारोंकी बड़ी धूमधाम रहती थी। हर उत्सव और भण्डारके दिन भिक्षुक पंक्ति लगाकर भोजन करते हुए आपके ही यहाँ देखे गये थे और विशेषकर कंट्रोल और तेजीके समयमें। यह दरबार सबके लिये खुला हुआ था। आप भिखारियोंकी हिमायत करते थे। जब उनके निकालनेका प्रश्न आता तो आप कहते, अरे! ईश्वरकी सृष्टिमें सब रहते हैं, किसे निकालोगे?"

(१६)

इन्द्रियदमन, दया और दानकी आप साक्षात् मूर्ति थे। इनके निर्वाहके लिये तो आप सदैव कटिबद्ध रहते थे। आप प्रायः कहा करते थे—"दया बिन संत कसाई। दया करी तो आफत आई। परन्तु कुछ परवाह नहीं—बे ख्वाहिश, बे परवाह।"

एकबार लक्ष्मणझूला (ऋषिकेश) से गुरुपूर्णिमा करने श्रीवृन्दावनधाम आरहे थे। समय थोड़ा, यात्रा लम्बी और मार्गमें परिचित प्रान्त होनेके कारण रोकनेवाले भी बहुत थे। अतः प्रतिदिन अधिक ही चलना पड़ता था। त्रयोदशीकी रात्रिको ज्वर आ जानेके कारण

मैं अलग पड़ रहा। आपकी दयादृष्टि तो प्रत्येक व्यक्तिपर रहती थी। पूछा, "चिरंजी कहाँ है ?" मैंने सुन लिया। उठकर समीप आया और चरणस्पर्श करके बैठ गया। बोले, "क्यों, ज्वर आ गया है ? ओढ़कर आसनसे बैठ जा।" मैं बैठ गया। आपने झोलेमेंसे एक गोली निकालकर दी। गोली खातेही मुझे कई बार इतना पसीना आया कि थोड़ी देरमें ही न मालूम ज्वर कहाँ चला गया। बोले,"जा सो रह" प्रातःकाल होते ही पूछा, "क्या हाल है ?" मैंने कहा,"आपकी कृपासे ठीक हूँ।" मुसकराते हुए बोले, "संकल्प न विगाड़ना। वृन्दावनतक पैदल ही चलना है। आज रातको १० बजे पहुँच जायेंगे। सवारीमें नहीं बैठने दूँगा। बेटा! संकल्प करके उसे बिगाड़ना ठीक नहीं। जो हो गया सो हो गया। अरे! कोई इसका झोला ले लो।" बाबूजीने मेरा झोला ले लिया।

चलना आरम्भ हुआ। लोग थके हुए तो थे ही। आप कृपादृष्टिसे सबकी ओर देखकर बोले, "मेरे साथ लगे-लिपटे चलो। रातके १० बजेतक वृन्दावन पहुँचा दूँगा।" दो-एकको छोड़कर,जो पीछे रह गये, जिन्होंने आपका साथ छोड़ दिया,सभी चतुर्दशीकी रातको कुटियापर पहुँच गये। मुझ जैसे निर्बलों को सत्संग-चर्चा करते हुए साथ ही रखा।

(१७)

आपकी क्रियाओं में कभी-कभी वात्सल्य-स्नेहकी झलक देखनेमें आ जाती थी। कासगंजसे हाथरस आ रहे थे। गर्मी और धूपकी तेजीसे मै और श्रीप्रबोधानन्दजी बहुत व्याकुल हो गये। आपने बार-बार यह कहकर'अरे बेटा! अब क्या है ? आगये, बस थोड़ीही दूर रह गया है' उस धूपमें पाँच मील चलाया। निर्दिष्टस्थ ानपर पहुँचकर

मैने कहा—"पाँच मील तो आपको बहुत ही थोड़ा होता है।"

(१८)

एकबार हाथरसमें सत्संग हो रहा था। किसीने कहा—"परमात्मा तो निराकार है।" आपने हँसकर कहा— "और यह सम्पूर्ण दृश्य तुम्हारा चाचा होगा।" सब लोग हँस पड़े। फिर आप गम्भीरतापूर्वक प्रवचन करने लगे।– "यह सबका सब ज्यों का त्यों आत्मस्वरूप ही है। यह तो जैसा का तैसा ही था, है और रहेगा। केवल दृष्टिमात्र का भेद है।"

आपकी दृष्टि सदैव पारमार्थिक रहती थी। जब कभी कोई व्यावहारिक क्रिया देखकर मैं प्रश्न कर बैठता तो आप उसका पारमार्थिक उत्तर देकर मेरा रास्ता रोक देते थे। मैं क्या लिखूँ वे क्या थे? ओहो! महार्णवकी थाह कौन ले सकता है? मुझ जैसे को खड़े-खड़े क्षणभरमें अनायास बिना अपने किसी संकल्प के अपनी ही प्रेरणासे सर्वत्याग कराकर व्यवहारसे सदैव के लिये हटा दिया! क्या पायेगा कोई उनकी महत्ता का पता?

(१९)

एकबार एक साधुने आपसे किसीकी चोरीकी चर्चा की। आपने उसे झिड़ककर रोका और कहा— "अरे! तेरी दृष्टि उधर क्यों गयी? हमें किसी की चोरी-चारी से क्या मतलब?"

श्रीवृन्दावनमें बड़े-बड़े लोग आपसे मिलने आते थे और आपके आसनपर कुछ रख जाते थे। दाँव लगनेपर यार लोग उड़ा ले जाते थे, क्योंकि आपके यहाँ सभी प्रकारके लोग आने लगे थे। एक दिन मैंने धीरे से डरते-डरते कहा—"ऐसा व्यवहार ठीक नहीं लगता। लोगों की आदत बिगड़ती है।" आपने कहा–"मुझसे क्यों कहते हो?

उन लोगोंको रोको जो यहाँ रख जाते हैं। कोई रख जाओ, कोई उठा ले जाओ, मुझे क्या ?"

(२०)

एकबार सत्याग्रहके समय कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओंपर किये गये जुल्म और अत्याचारोंके सम्बन्धमें एक कविता सुनकर आप द्रवित हो गये थे। पूज्य बापू (महात्मा गाँधीजी) के निधनपर तो आप बहुत रोये। पाकिस्तानमें बच्चों और स्त्रियोंपर किये गये पाशविक अत्याचारोंको सुनकर तो आप कहने लगे थे,"मैं नहीं जानता था कि मनुष्य इतना बदमाश होता है।"

पिछले दिनोंमें मानवसमाजकी हीनावस्था को देखकर आप कहा करते थे, "मैने नयी बात चलायी थी। विरक्तोंको छोड़कर गृहस्थोंका सुधार करना चाहा था। सो नहीं कर सका। फेल हो गया। चलो भैया ! अब तो गंगाकिनारे चलो। अब तो वहीं वृक्षोंके नीचे रहेंगे और रोटी माँगकर खायेंगे।" उनका कोमल हृदय मानवकी दुर्दशाको देखकर द्रवित हो जाता था।

(२१)

एक साल वृन्दावनमें मलेरियाका भयंकर प्रकोप था। कुनैन भी नहीं मिलती थी। कहींसे श्रीमहाराजजीके पास पर्याप्तमात्रामें कुनैन आ गयी। मुझे आज्ञा हुई कि मैं ज्वरपीड़ितोंको अपने सामने कुनैन खिलाऊँ। मैंने अपना काम आरम्भ कर दिया। लोग अच्छे भी होने लगे। किन्तु कुनैनके साथ दूधका प्रबन्ध नहीं था। एक साधुने कहा, "स्वामीजी ! इसने तो फूँक डाला। ज्वर तो चला गया, परन्तु इसकी गर्मीसे भुना जाता हूँ। नीबूतक नहीं मिलता।"

श्रीगुरुदेव नीचे गुफामें थे। मैंने इस ढंगसे कहा कि वे सुन लें,

'महात्माजी ! अब श्रीउड़ियाजी महाराजपर कङ्गाली आ गयी है। दूध और नीबूका प्रबन्ध कैसे हो ?"

आपने सुना और चट ऊपर आगये—"क्या है रे !" मैंने कहा, "ये महात्माजी कह रहे हैं कि कुनैन तो खिला देते हो। पर न थोड़ा दूध ही देते हो और न नीबू ही। इसकी गर्मीने फूंक डाला है।" आप चुप रहे। मैंने पुनः कहा, "भगवन् ! दिन-रात आपके यहाँ कन्नी-बसूली चालती है। खुट-खुट, खुट-खुटके मारे नाकमें दम है। सैकड़ों रुपये रोजका खर्च है। इन गरीब साधुओंके लिये पाव-पाव भर दूधका प्रबन्ध नहीं हो सकता ? कुनैनके साथ थोड़ा दूध तो आवश्यक है।"

आप बोले, "तुम लोगोंको पता नहीं। तुम मुझे बिलकुल नहीं जान सके। मुझे जो कोई जिस निमित्त से देता है मैं उसका पैसा उसके संकल्पानुसार उसी काममें लगा देता हूँ। मैं स्वयं कुछ नहीं करता और न किसीसे कुछ कहता ही हूँ। आज-कल लोग ईंट-पत्थरोंमें पैसा लगाना पसन्द करते हैं। नामके लिये मरते हैं। साधु-सेवा कौन करता है ? कोई दूधके लिये पैसा दे तो मैं दूध पिला दिया करूँ। महात्माजी ! सहन करो। भैया ? समय ऐसा ही आ गया है।"

(२२)

एकबार सत्संगमें इस विषयपर कि ज्ञान हो जानेपर ध्यानकी आवश्यकता नहीं रह जाती, अधिक देरतक तर्क-वितर्क होता रहा। अन्तमें श्रीगुरुदेव बोले, "भैया ! मेरी समझमें तो ध्यानके बिना ज्ञान और ज्ञानके बिना ध्यान पंगु हैं।" इस सम्बन्धमें आपका यही आदेश रहता था कि जब आनन्दमय कोषको भी अपनेसे भिन्न देखोगे, तब

असंग-भावना होगी। जब जीव शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंधके अति-रिक्त सुख-दुःखसे भी असंग होगा तब वास्तविक असंगता होगी। उस परम शान्तिका क्या ठिकाना ? ज्ञानमार्ग का वास्तविक अधिकारी तो वही है जो असंग-बुद्धि, निःस्पृह और मनको वशमें करनेवाला है।

(२३)

एक दिन श्रीगुरुदेवजीने हमसे प्रश्न कर दिया, "महात्माकी सबसे बड़ी हानि क्या है ?" हममेंसे एक-दोने कुछ कहा। फिर कृपालु भगवान् स्वयं ही प्रवचन करने लगे, "बेटा ! चित्तमें क्षोभ आ जाना, चित्तका उत्तेजित हो जाना—चाहे वह पानीकी लकीरकी तरह ही क्यों न हो—महात्माकी सबसे बड़ी हानि है। इसका सब से सरल उपाय यह है कि उत्तेजना पैदा करनेवाले शब्दोंको चिड़ियों की चहचहाट समझो। 'चिड़ियाँ बोल रही हैं' ऐसा सोचने लगो। तत्त्वपर दृष्टि रखो, अपमानकी भूमि इस मल-मूत्रके थैलेसे अपनेको हटा लो। यदि इस थैलेको ही सर्वस्व समझे हुए हो तो वास्तवमें अपमान और निन्दाके पात्र ही हो। अन्यथा किसकी सामर्थ्य है जो तुम्हारी निन्दा कर सके। एक स्वप्नपुरुष किसी दूसरे स्वप्नपुरुषसे कुछ कह रहा है तो कहने दो।"

कुछ उपदेश

१. संसारमें आना-जाना है। हमारे यहाँ न आना है न जाना।

२. जो चीज यहाँ है, वह त्रिलोकीमें नहीं है।

३. पदार्थका भान हो, पर उसमें आसक्ति न हो।

४. प्रत्येक इन्द्रियके विषयका ज्ञान हो, परन्तु उसमें राग न हो।

५. पदार्थका ज्ञान होते हुए भी उसमें आसक्ति न होना—यह सत्त्वगुणका लक्षण है तथा पदार्थमें राग होना रजोगुण और आसक्ति होना तमोगुण है।

६. ज्ञानियोंका चित्त अचिन्त होता है।

७. अनात्मामें आत्मबुद्धि ही अज्ञान है।

८. प्रपञ्चमें सत्यत्वबुद्धि हो अज्ञान है।

९. विषयोंमेंसे सत्यबुद्धि, नित्यबुद्धि, सुखबुद्धि, दुःखबुद्धि और अनुराग हट जाना ही आनन्द है।

१०. हमारा तो सिद्धान्त है कि हर समय प्रसन्न रहो तथा पापीको भी पापी न समझकर हृदयसे लगा लो।

११. चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते प्रसन्न ही प्रसन्न रहो।

१२. क्या मजाल है कि कोई पापी मेरा स्पर्श कर सके।

१३. समझो कि जबतक बोधकी इच्छाका त्याग न हो, तबतक बोध नहीं हुआ।

१४. जब साधुसेवा, सत्संग और शास्त्रसे प्रेम हो, उस समयसे समझो कि संसारसे उद्धार होगया।

१५. कैसे ही रूपसे बचो, यही आसक्ति बढ़ानेवाला है। दुःखका कारण विषय नहीं, उसकी आसक्ति ही है।

१६. शरीरको सजाना तो पायखाना सजाना है और फिर उसमें राग करना—राम ! राम ! राम !

१८. चित्त सर्प है। इसके सामने विषय आनेसे इसमें विष बढ़ताहै।

१७. धनिकोंके अन्नसे बचो।

१९. यदि कोई गृहस्थ पुरुष काम्य-कर्म, निषिद्ध-कर्म और कर्म-फल-का त्याग करनेवाला है तो वह घरपर ही संन्यासी है।

२०. हर समय सावधान रहो कि क्षोभ न होने पावे। देखते रहो।

२१. सबसे बड़ा काम है ध्येय और ज्ञेयमें वृत्तिको विस्मृत कर देना।

२२. देखो, विस्मृति-तो ज्ञान और अज्ञान दोनोंहीमें होती है। अज्ञान (निद्रा) में विस्मृति होनेसे ही कितना सुख मिलता है, फिर ज्ञान में विस्मृति हो तो कितना सुख मिलेगा ?

२३. इष्टाकार वृत्तिका नाम भजन है और सन्धिमें वृत्तिको स्थित करना मुख्य भजन है।

२४. शान्ति संकल्पका त्याग है और अशान्ति संकल्प करना है।

२५. विचार करो, सम्पूर्ण दोषोंका कारण मनोराज्य है, क्योंकि विषयोंके चिन्तनसे उनमें आसक्ति हो जाती है और अन्तमें उनमें फँस जाता है।

२६. वासनारहित मौनसे उत्तम और कोई पद नहीं है।

२७. जबतक किसी उपाधिको लेकर यह कहता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ' तबतक भी बोध हुआ मत समझो।

२८. जहाँ भेद है, वहाँ अज्ञान है।

२९. जहाँ उत्पत्ति है, वहाँ अज्ञान है।

३०. अकर्तापनका त्याग न करो। यदि स्वयं होजाय तो हो जाने दो।

३१. असंगताका अभ्यास तो निरन्तर करते रहना चाहिये। बोध होनेपर भी करते रहो।

३२. बोध होनेपर भी विवेक और वैराग्यको बनाये रखो। नित्य-अनित्यका विवेक करके नित्यमें राग और अनित्यमें वैराग्यका अभ्यास करते रहो।

३३. बाह्य त्याग तो बिना विवेकके भी होजाता है। ऐसे त्यागी और वैराग्यवान् देखे गये हैं जिन्हें विवेक नहीं हुआ। परन्तु त्याग-वैराग्य है प्रशंसनीय।

३४. कभी-कभी विवेक होजानेपर भी वैराग्य नहीं होता। जैसे बड़े-बड़े पंडितोंको विवेक होते तो देखा गया है, परन्तु उनमें वैराग्यकी गन्ध भी नहीं होती।

३५. अनेक मूर्खोंको तो संसारके दुःख और क्लेशके कारण उससे क्षणिक वैराग्य हो जाता है।

३६. त्यागमें दो पदार्थ रहते हैं, एकको ग्रहण करता है, दूसरेका त्याग करता है। परन्तु बोधमें तो पर-सत्ताका सर्वथा अभाव होजाता है।

३७. 'सब स्वरूपही है, अन्य कुछ नहीं। जो दिखायी देता है वह प्रतीतिमात्र है।' जब ऐसा अनुभव हो तभी बोध होता है।

३८. वेदान्तमें 'परसत्ताकी जो प्रतीति हो रही है, उसका त्याग ही' अभ्यास है।

३९. विचारद्वारा यह सिद्ध होजानेपर कि यह सब आकाश ही है, सबको आकाशवत् देखना, मनोराज्य या स्वप्नवत् देखना ही अभ्यास है।

४०. बोधके पूर्व बाह्य वैराग्य होता है, वास्तविक वैराग्य तो बोध-के पश्चात् ही होता है।

कुछ प्रश्नोत्तर

प्रश्न—हम लोगोंने अनेक बार श्रीमुखसे उपदेश सुना है और अभ्यासकी विधि भी सुनी है, फिर भी हमारे लोभ, मोहादि नहीं

छूटते। इससे तो यही जान पड़ता है कि जबतक श्रीमहाराजजीकी कृपा न होगी हमारा उद्धार नहीं हो सकता।

उत्तर--तुम लोग घबड़ाओ मत। बराबर यत्न करते रहो। अन्तमें सफलता अवश्य मिलेगी। यदि अभ्यास करते-करते शरीर छूट जाय तो समझ लो कि काम पूरा होगया। बीचमें जो त्रुटियाँ हों उनकी परवाह मत करो।

× × × × ×

प्र०—संसार में सुखी कौन है ?

उ०—मैं सुखी हूँ।

प्र०—हम लोग कैसे सुखी हो सकते हैं ?

उ०—मेरे पास आओ।

प्र०—क्या हम लोग आपके पासतक नहीं पहुँचे हैं ?

उ०—नहीं।

प्र०—हम कैसे जानें कि अब हम आपके पास पहुँच गये ?

उ०—जब तुम मेरे बिना न रह सको।

स्वामी श्रीसिद्धेश्वराश्रमजी

(दण्डिस्वामी सियारामजी)

श्रीमहाराजजीकी सारी लीलाएँ अलौकिक थीं। उनकी प्रत्येक क्रिया रहस्यपूर्ण होती थी। वे हमारे बीचमें बैठे-बैठे ही सहस्रों मील दूरवर्ती भक्तोंकी सुधि लेते रहते थे। इधर सत्सङ्गमें सामने बैठे हुए नर-नारियोंको उपदेश करते और ठीक उसी समय योगबल द्वारा सुदूरस्थ भक्तोंको भी प्रेरणा प्रदान करते रहते थे। ऐसे एक-दो नहीं, सैकड़ों भक्त हैं जिन्हें स्वप्नोंमें श्रीमहाराजजीने दूर रहते हुए भी उपदेश दिये हैं और संकटनिवृत्तिका उपाय बताया है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि ऐसे भी सैकड़ों भक्त हैं जिन्हें श्रीमहाराजजीने अप्रकट रूपसे गोपनीय ढङ्गसे परमार्थपथमें लगाया, और अग्रसर किया, तथापि स्वयं उन भक्तोंको इस रहस्यका पतातक नहीं चला। इस रहस्यको विरले व्यक्ति ही समझ पाये हैं कि वे क्या करते और कैसे करते थे। यह विषय सामान्य बुद्धिसे परे है। तथापि उनकी पवित्र स्मृतिके हेतु अपने अनुभव में आयी हुई कुछ लीलाओंका वर्णन किया जाता है।

(१)

श्रीमहाराजजी जब प्रथम बार देदामई पधारे थे तब एक स्थानपर उन्हें काँटा लग गया। वहीं बैठकर उन्होंने काँटा निकलवाया। वहाँ एक भग्नावशिष्ट कुआँ था, जिसमें जल भी नहीं था। स्थान भी भयङ्कर था और उसपर ऐसे लोगोंका अधिकार था जो साधु-सन्तोंके विरोधी थे। उस कुएँको देखकर श्रीमहाराजजी मुझसे

बोले, "बेटा ! यहाँ कुआँ और बगीचा हो तो अच्छा हो।" इतना कहकर वहाँसे चल दिये। इसे श्री महाराजजीकी वाक्‌सिद्धि कहें अथवा संकल्पसिद्धि ? जो कुछ भी हो, स्थानके मालिकके हृदय में स्वतः ऐसी प्रेरणा हुई कि उसने वहाँ एक पक्का कुआँ बनवा दिया, जैसा आस-पासके गाँवोंमें कहीं नहीं है और साथ ही बगीचा एवं पक्की कुटी भी बनवा दी। एक वर्ष पश्चात् जब महाराजजी पुनः पधारे तो उसी कुटी में ठहरे।

(२)

इसी प्रकार एकबार आप भ्रमण करते हुए एक स्थानपर बैठ गये और मनोरञ्जनके लिये पृथ्वीपर लकड़ीसे एक मकानका नक्शा बनाया। फिर वहाँसे उठकर चल दिये। उसके कुछ काल पश्चात् जब उस रास्तेसे होकर निकले तो अपने बनाये हुए नक्शेके अनुसार मकान बना देखा। मालूम होता है, सत्यसंकल्प महात्माओंके संकल्प को सत्य करने के लिये प्रकृतिदेवी स्वतः प्रस्तुत रहती हैं।

(३)

गंगा किनारे शहबाजपुरमें एक बुढ़िया माई रहती थी। वह बहुत निर्धन थी और उसके एक ही लड़का था। वह श्री महाराज-जीको भी अपना पुत्र ही मानती थी। उसका प्रेम सच्चा था। घरमें बर्तनोंका भी अभाव-सा था। अतः प्रातःकाल अँधेरेमें ही उठ-कर वह मिट्टीके खिपड़े में ही आटा गूँदती और मोटी-मोटी तीन रोटी सेंकती। दो अपने और अपने पुत्र के लिये तथा एक श्री महाराजजीके लिये। उसे लेकर वह अँधेरे में ही बाबाके पास पहुँच जाती। आप उसका सच्चा प्रेम देखकर बिना स्नान किये बासी

मुँह उस रोटीको खा लेते। इतना ही नहीं, वह माई आपको अंचल से ढाँपकर स्तनपान भी कराती थी और आँखोंसे प्रेमके आँसू गिराती जाती थी। आप भी चुपचाप बालककी तरह उसकी गोदमें पड़े स्तनपान करते रहते थे। ऐसे आप खिलाड़ी थे।

परन्तु भक्तोंके भाव तो भिन्न-भिन्न होते हैं। बलदेव ब्रह्मचारी का आपसे था सखा-भाव। उन्हें यह बात बहुत बुरी लगती थी। एक दिन जैसे ही वह अँधेरेमें आयी उन्होंने डंडा उठाया और यह कहते हुए उसकी ओर दौड़े— "अरी रांड़! तू सबेरे ही सबेरे अँधेरेमें चली आती है बिना नहाये-धोये ही रोटी खिला देती है। ठहर तो!" बुढ़िया प्राण लेकर भागी। उसके बाद वह डरके कारण दो-तीन दिनोंतक नहीं आयी, परन्तु रोती रही। उसकी यह अवस्था बाबासे छिपी नहीं थी।

एक दिन प्रातःकाल आप शौचके लिये गये। ब्रह्मचारीजी जलका कमण्डलु लेकर साथ हो लिये। बाबाने उनके हाथसे कमण्डलु ले लिया और अरहरके खेतोंमें छिपते-छिपते बुढ़ियाके घर पहुँच गये। वह बड़ी प्रसन्न हुई और तत्काल भोजन बनाने लगी। इधर जब बाबाके आने में देर हुई तो बलदेव ब्रह्मचारी को सन्देह हुआ और उन्होंने अनुमानसे समझ लिया कि आप बुढ़ियाके घरही गये हैं। बस, वे भी उधरही चल दिये और जाकर देखा कि बुढ़िया तो रोटी बना रही है और आप मसाला पीस रहे हैं। बलदेवब्रह्मचारीको देखते ही बुढ़िया डरी और इन्हें भी गुस्सा चढ़ आया। बोले, "अरे बाबा! यह राँड़ तुम्हें क्या खिलायेगी, तुमसेही मसाला पिसवा रही है!" बाबा बोले, "चुप रहो, बोलो मत।" बस, उस दिन भोजन

करके बुढ़ियाको प्रसन्न करकेही आप वहाँसे गये। आप दूसरोंके मनको खूब पहचानते थे।

(४)

एक माई श्रीमहाराजजीसे अपने घर चलकर भिक्षा करने का बहुत दिनसे आग्रह कर रही थी। आप उससे कह देते, "कभी आयेंगे।" एक बार उसके गाँव होकर कहीं जा रहे थे। आपको उसकी याद आ गयी। अतः उसके घर जाकर'नारायण हरि:'कहा। वह मइया घरके भीतर रोटी बना रहीथी और उसका लड़का बाहर खेल रहा था। लड़केने भीतर जाकर माँसे कहा, "माँ! साधुको रोटी देदे।" वह चिल्लाकर बोली, "कह दे, चला जा, हाथ खाली नहीं हैं।" बालक ने आग्रह करते हुए कहा, "साधुबाबा अच्छे हैं, रोटी देदे।" तब उसने रातकी सूखी रोटी भेज दी। श्रीमहाराजजी उसे लेकर चले आये।

कुछ दिनों पश्चात् वह माई फिर आपके दर्शन करने आयी और पुनः घर चलकर भिक्षा करनेका आग्रह करने लगी। तब आपने कहा कि तू एक रोटी देनेमें साधुको अच्छा-बुरा देखती है, ठीक तरह नहीं दे सकती। फिर हमें भिक्षा करानेसे क्या लाभ? तब वह मइया रोने लगी और क्षमाप्रार्थना भी की। आपने उसे आश्वासन देकर शान्त किया।

(५)

श्रीमहाराजजी जब सर्वप्रथम इस प्रान्तमें आये थे तब मोहनपुरमें बहुत दिन ठहरे थे। वहाँके भक्तगण आपसे बहुत स्नेह करते थे। आपको बगलबंदी पहना देते और खेतमें लेजाकर मिट्टीके ढेले फुड़वाते तथा जबरदस्ती साग, रोटी, दूध और खीर आदि खिलाते

थे। वे आपको अपने घरका और प्राणप्रिय समझते थे। एकबार जब आपको मोहनपुर छोड़े हुए बहुत दिन होगये तब एक बूढ़ी माई कर्णवास आयी और आपको देखकर फूट-फूटकर रोने लगी। बोली, "अरे लाला ! तू हमें ऐसा भूल गया है। हमें क्या पता था कि तू ऐसा कठोर हो जायगा। तुझे हम गरीबोंके साग-रोटी अच्छे नहीं लगे। तेरे बिना हम कैसे जियेंगे ?" इस प्रकार कह-कहकर उसने बड़ा विलाप किया। इससे वहां बैठे अन्यान्य भक्त भी फूट-फूटकर रोने लगे और भावोंमें विभोर होगये। श्रीमहाराजजीने उसे सान्त्वना दी और पुनः आनेका वचन दिया।

(६)

श्रीमहाराजजी जब दिल्ली पधारे थे तब वहाँ सत्सङ्गियों एवं दर्शनार्थियोंकी बड़ी भीड़ लगी रहती थी। साथमें मैं भी था। शीत-कालके दिन थे। रात को सोनेके समय भक्त लोग आपको कम्बल ओढ़ा जाते, किन्तु सवेरे वह अलग पड़ा मिलता था। मैंने इसका कारण पूछा तो महाराज बोले, "बेटा ! ओढ़ाते समय मैं उनका मन रख देता हूँ, किन्तु उनके चले जानेपर कम्बल हटा देता हूँ। साधुको अपने नियममे रहना चाहिये।" इस प्रकार श्रीमहाराजजी अपने साथ रहनेवालोंको क्रियात्मक शिक्षा देते रहते थे।

(७)

एकबार कर्णवासकी झाड़ीमें एक प्रेत मिला और बोला कि मैं कुश्ती लड़ूंगा। आपने उत्तर दिया, "बेटा ! हम तो साधु हैं, किसी-से कुश्तो नहीं लड़ते।" परन्तु प्रेत न माना। तब आपने उसकी ओर ऐसी दृष्टिसे देखा कि वह चिल्ला उठा, "बाबा ! मैं जलता हूँ

मेरा उद्धार करो।" आपने कहा, "श्रीगंगाजीमें स्नान कर, गंगाजल पानकर और आजसे प्राणियोंको कष्ट देना बन्द कर। ऐसा करेगा तो तेरा कल्याण हो जायगा।" तब वह प्रेत वहाँसे चला गया।

(८)

श्रीमहाराजजीके सम्पर्कमें आनेसे कई डाकुओंकाभी सुधार हुआ। एकबार एक प्रसिद्ध डाकू आपका दर्शन करनेके लिये आया। वह बोला, "मैं आपका नाम लेकर डाका डालता था तो सर्वदा सफल होता था, परन्तु अब मुझे कष्ट हो रहा है, वैसी सफलता नहीं मिलती।" इस डाकूसे श्रीमहाराजजीका कोई पूर्वपरिचय नहीं था। उसने केवल एकबार दर्शन किये थे और सुन रखा था कि बाबाके पास जो व्यक्ति जिस इच्छासे जाता है उसकी वह कामना पूरी हो-जाती है। उसकी बात सुनकर श्रीमहाराजजीने कहा, "भैया इस कामको तू बिलकुल छोड़ दे, यह तेरे योग्य नहीं है।" डाकू सुनकर चुपचाप चला गया और कुछ दिन वह शान्त भी रहा। परन्तु जब एकबार उसके साथियोंने बहुत दबाव डाला तो वह उनके साथ हो-लिया। यद्यपि बाबाकी आज्ञा-भंग करनेके कारण उसका चित्त दुःखी था।

दैवयोगसे उसदिन गाँववालोंने सभी डाकुओंको घेरलिया। अब वह बहुत घबड़ाया और मन-ही-मन श्रीमहाराजजी से प्रार्थना करने लगा कि प्रभो! आज मुझे बचाइये। मेरी रक्षा कीजिये। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि फिर ऐसा काम अब कभी नहीं करूँगा। उसी क्षण उसके हृदयमें ऐसी प्रेरणा हुई कि वह एक करबके ढेरमें छिप गया। गाँववालोंने दूसरे डाकुओंका पीछा किया। इसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। पीछे वह श्रीमहाराजजीका स्मरण करता

हुआ दूसरी ओर निकल गया और उस घेरेसे बच गया। दूसरे दिन श्रीमहाराजजीके पास आया और चरण पकड़कर रोने लगा। श्रीमहाराजजीने उससे जीवनपर्यन्त फिर डाका न डालनेकी प्रतिज्ञा करायी और उसे आश्वासन देकर शान्त किया।

(९)

कभी-कभी श्रीमहाराजजी विनोदमें भक्तोंके साथ खेल भी किया करते थे। उनके एक भक्त हैं पं० लालमणि। यदि कोई व्यक्ति उनके पैर छू लेता है तो वे बहुत बिगड़ते हैं और अत्यन्त दुःखी होते हैं। एक बार श्रीमहाराजजी गढ़मुक्तेश्वरके मेलेमें जा रहे थे। साथमें अनेक भक्त थे। उनमेंसे ठाकुर प्रतापसिंहने विनोदमें पं० लालमणि के पैर छू लिये। अब तो वे बड़े दुःखी हुए और रोने लगे। उन्होंने बाबाके पास जाकर प्रतापसिंहकी शिकायत की। वे मुसकराये और बोले, "प्रताप! इधर आ। तूने लालमणिको क्यों दुःखी किया? तुझे इसका दण्ड दिया जायगा। तेरे लिये यही दण्ड है कि लालमणिके पैर छूकर क्षमा माँग।" प्रतापसिंह लालमणिके पैरोंमें गिर गये और सभी भक्त हँसने लगे।

इसी प्रकार समय-समयपर आप सर्वथा निर्दोष मनोरञ्जन किया करते थे। आपकी लीलाएँ तो अनेक हैं। उनका कहाँ तक वर्णन किया जाय। यहाँ केवल दिग्दर्शनमात्र करा दिया है।

पं० श्रीजगन्नाथजी भक्तमाली, वृन्दावन

जिस दिन मैं पहली बार श्रीउड़िया बाबाजी महाराजके आश्रममें कथा कहनेके लिये आया था, उससे पहली रात्रिमें मैंने उन्हें स्वप्नमें देखा था। वे मुझसे कह रहे थे कि यदि तुम मुझे कथा सुनाओगे तो तुम्हारा भक्तिभाव बढ़ेगा। दूसरे दिन प्रातःकाल ही मेरे पास आपके आश्रमसे बुलावा आगया कि श्रीहरिबाबाजी आपको भक्तमालकी कथा कहने के लिये बुला रहे हैं। यह बाबाके विषयमें मेरा पहला अनुभव हुआ।

दूसरा अनुभव मुझे आपके लीलासंवरण करनेके पश्चात् हुआ। उस समय मैं आपके निर्वाणोत्सवमें कथा कहनेके लिये आया करता था। रात्रिको स्वप्नमें मैंने देखा कि आप मुझे विनयपत्रिकाके इस पदका उपदेश कर रहे हैं—

प्रभु तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधनधाम विमुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों॥

उनकी वह भोली-भाली सूरत प्रायः मेरी आँखोंके सामने नाचने लगती है।

श्रीपल्टूबाबाजी, वृन्दावन

श्रीचरणोंमें आगमन

एकबार मैं खुरजामें किसी मन्दिरमें ठहरा हुआ था। एक दिन रात्रिमें भक्त केदारनाथजी आये और मन्दिरकी परिक्रमा करने लगे। वे अँधेरेमें मुझसे टकराकर गिर गये। मुझे दुःख हुआ कि मेरे कारण किसी व्यक्तिको चोट लगी और उन्हें इस बातका दुःख हुआ कि मेरे कारण किसी महात्माको कष्ट हुआ। फिर हम दोनोंकी परस्पर बातचीत होने लगी। उन दिनों मुझे संतोंकी बानियाँ बहुत याद थीं और सत्संगमें भी मैं बानियोंका खूब प्रयोग करता था। इससे भक्तजीने मुझे कोई अच्छा सत्संगी महात्मा समझा। वे बोले, "आपने श्रीउड़ियाबाबाजी, स्वामी निर्मलानन्दजी अथवा लंबे नारायणजी आदिका दर्शन किया है ?" मैंने कहा, "नहीं।" तब उन्होंने कहा, "ये सब बहुत अच्छे महात्मा हैं, इनका दर्शन अवश्य करना।" मैंने कहा, "इनमेंसे किसी एक मुख्यका नाम बताओ, मैं उन्हींका दर्शन करूँगा।" तब उन्होंने श्रीमहाराजजीका नाम बताया।

श्रीमहाराजजी उन दिनों मोहनपुरमें थे। खुरजासे मुन्नालाल (वर्तमान स्वामी सनातनदेव) उनके दर्शन करनेके लिये जा रहे थे। मैंने यह अवसर अच्छा समझा और उनके साथ हो लिया। मार्गमें हाथरस जंकशनपर शंकरलाल और प्यारेलाल भी मिल गये। मोहनपुर पहुँचनेपर सब लोग श्रीमहाराजजीको दण्डवत् प्रणाम करने लगे। उस समय मैं खड़ा-खड़ा अपनी एक आँखसे विचित्र प्रकारसे

देख रहा था। मुझे इस प्रकार ताकते देखकर श्रीमहाराजजीने पूछा, "मुन्नालाल ! क्या ये महात्मा अंधे हैं ?" मैं झटसे बोल उठा "महाराजजी ! अन्धे न होते तो आपके पास आते ही क्यों ?"

अस्तु। हम सब वहाँ गये। फिर मुन्नालालने मेरा कुछ परिचय दिया। तब श्रीमहाराजजीने मुझसे पूछा, "क्या तुमको ज्ञान होगया ?"

मैं—मैं न तो यही कह सकता हूँ कि ज्ञान होगया है और न यही कह सकता हूँ कि नहीं हुआ।

श्री महाराजजी—ठीक है, ज्ञानीलोग ऐसे ही बोला करते हैं।

उस समय मैं अपनेको ज्ञानी मानता था।

श्रीमहाराजजी—अच्छा, तुमको क्या ज्ञान हुआ है ?

मैं—मैं सबको आत्मस्वरूप देखता हूँ।

श्रीमहाराजजी—यह तो उपासना है। ज्ञानका स्वरूप तो ऐसा दृढ़ निश्चय होता है कि मेरे अतिरिक्त दूसरी वस्तु है ही नहीं। बल्कि शुद्ध स्वरूपमें तो 'मैं' कहना भी नहीं बनता। तुम इसका अनुभव प्राप्त करो।

तब मैंने समझा कि मैं जो अपनेको ज्ञानी मानता था वह मेरा भ्रम ही था। उसके पश्चात् श्रीमहाराजजीने जप करनेके लिये मुझे मन्त्र बताया।

अन्तर्यामिता

एकबार श्रीमहाराजजी कर्णवासमें थे। वहाँ एक नृत्यकार आया हुआ था। उसे नृत्य करते देखकर मेरे मनमें विकार हुआ। मैं वहाँ-

से उठा और सीधा श्रीमहाराजजीके पास जाकर बैठ गया। उनसे मैंने कहा कुछ भी नहीं। तथापि वे मुझे डाँटते हुए बोले, "तुम साधु हो, इतने दिनोंसे भजन करते हो, फिर भी एक नर्त्तकको देखकर तुम्हारे मनमें विकार हो गया!" तबसे मैंने समझ लिया कि श्रीमहाराजजी दूसरोंके मनकी बात जान लेते हैं।

निर्वाणके पश्चात्

श्रीमहाराजजीका निर्वाण होनेपर मैं अत्यन्त दुःखी रहता था। चित्तमें व्याकुलता बहुत बढ़ती तो मन बहलानेके लिये रातको बाहर घूमने चला जाता। एक रात्रिको स्वप्नमें श्रीमहाराजजीने दर्शन दिया और बोले, "क्या तुम मुझे शरीर समझते हो? मैं क्या शरीर हूँ? तुम मेरे शरीरसे प्रीति करते हो? शरीर तो आजतक किसीका नहीं रहा। ब्रह्मा और शिवका शरीर भी उनकी आयु समाप्त होनेपर नहीं रहता। मेरे सत्संगका क्या यही फल है? याद रखो, शरीर तो सभी अनित्य हैं।"

इस प्रकार उनका उपदेश पाकर मुझे कुछ आश्वासन हुआ और मैंने उनकी आज्ञानुसार नियमसे भजन करते हुए श्रीवृन्दावनमें ही रहने का निश्चय कर लिया।

श्रीमहाराजजीके विषयमें मैं अपने अनुभव क्या बतलाऊँ? जबसे मैंने उनका दर्शन किया है, तबसे आजतक मुझे उनके जैसा कोई महापुरुष नहीं मिला।

"एक प्रेमी"

'गुरुके द्वारा मुझे भगवान् मिलेंगे' ऐसा मानना भक्तका सर्वोत्तम भाव नहीं है। सबसे श्रेष्ठ भाव तो यही है कि गुरुके रूपमें साक्षात् भगवान् ही हैं। वस्तुतः शिष्यका कल्याण करनेके लिये स्वयं भगवान् ही गुरुरूपमें मिलते हैं। अपनी प्राप्तिका मार्ग वे स्वयं ही बतलाते हैं। जीव गुरुदेवके ऋणसे कभी उऋण नहीं होसकता। उनके उपकारोंका कभी बदला नहीं चुका सकता। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें श्रीउद्धवजी कहते हैं—

> नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापिकृतमृद्धमुदः स्मरन्तः।
> योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति॥

अर्थात् हे सर्वेश्वर! आप बाहर आचार्यरूपसे और भीतर अन्तर्यामीरूपसे स्थित होकर प्राणियोंकी अशुभ वासनाओंको नष्ट करते हुए उन्हें अपने स्वरूपका अनुभव कराते हैं। ऐसे आपके उपकारोंको बड़े-बड़े विद्वान् पुरुष भी यदि परमानन्दमें परिप्लुत होकर ब्रह्माकी आयुपर्यन्त स्मरण करते रहें तो भी आपसे उऋण नहीं होसकते।

जिनकी ज्ञानरूप दीपक प्रदान करनेवाले साक्षात् भगवत्स्वरूप श्रीगुरुदेवमें 'ये मनुष्य हैं' ऐसी अशुद्ध वृत्ति है, उसका सारा श्रवण गजस्नानके समान निरर्थक है। यथा—

> यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
> मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्॥

श्रीभगवान् प्रेमास्पद हैं । उनसे हँसना, रोना, रूठना, खेलना सभी कुछ हो सकता है । पर गुरु केवल श्रद्धाके स्थान हैं, उनपर तो केवल श्रद्धाही होनी चाहिये । कलियुगने तो मूलपर ही कुठाराघात किया है । सबकी जड़ तो श्रद्धा है उसीको नष्ट करदिया है, फिर लाभ कैसे हो ?

परमपूज्यपाद श्रीबाबामें मेरा गुरुभाव—भगवद्भाव रहा है । इसलिये उनके सम्बन्धमें कुछ कहना या उनका जीवन-चरित्र वर्णन करना सम्भव नहीं है, क्योंकि जोकुछ कहा जायगा उक्त भावसे नीचे उतरकर ही कहा जा सकेगा । मेरे विचारसे तो उपासनामें गुरुही सर्वस्व हैं, मोक्षादिकी प्राप्ति तो आनुषङ्गिक है । श्रीमहाराजजीके समक्ष मैंने तो शायद ही कभी कोई प्रश्न किया हो । कभी प्रश्न करनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी । मनमें किसी प्रश्नका संकल्प उठतेही वे तुरन्त अपने आप उसका उत्तर दे देते थे । ऐसा अनुभव मुझेही नहीं अनेक भक्तोंको हुआ है । मेरेलिये तो यही परम आश्वासन है कि उन्होंने मुझे कृपापूर्ण दृष्टिसे देख लिया । ऐसा होनेपर अब मेरा सब प्रकार कल्याण होना सुनिश्चित ही है ।

श्रीमहाराजजीमें मैंने कभी कोई इच्छा नहीं देखी । यदि उनमें कभी कोई इच्छा दिखायी भी दी तो यही कि किसका कल्याण किस प्रकार हो । वे केवल सबका कल्याण चाहते थे । जिसे स्वयंही इच्छा है वह दूसरेका कल्याण क्या करेगा ? एकबार श्रीगुरुपूर्णिमाके अवसरपर श्रीमहाराजजीके मुखसे ये वचन सुने थे—"भैया ! सब हुआ, पर न तो इन लोगोंकी चित्तवृत्ति बदली, न आज्ञापालनमें ही इनकी निष्ठा है और न ये भजनपरायणाही हुये । अब इन लोगोंके साथ रहनेमें क्या लाभ है ?"

श्रीमहाराजजीके पास रहते तो बहुत लोग थे; परन्तु उन्हें ठीक-ठीक जान कोई नहीं सका। यदि किसीने कुछ जानाभी तो उतना ही, जितना उन्होंने अपने-आपको जनाना चाहा। पूर्णतया कोई नहीं जान सका। जानता भी कैसे—"सो जानहु जेहि देहु जनाई।"

श्रीमहाराजजी प्रायः कहा करते थे—"आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा" अर्थात् आज्ञापालनके समान श्रेष्ठ स्वामीकी कोई दूसरी सेवा नहीं हो सकती। वे आज्ञापालनपर ही जोर देते थे और आज्ञापालन करनेपर ही विशेष प्रसन्न होते थे। वस्तुतः हम सबका परम कल्याण भी उनकी आज्ञाका पालन करनेमें ही है। गुरुदेवकी आज्ञाका पालन करनेसे गुरुचरणोंमें जो अनुरक्ति होती है वह साधककी मान-प्रतिष्ठा आदि सभी विघ्नोंसे रक्षा करती रहती है।

श्रीमहाराजजीका सबसे अधिक जोर करनेपर था। वे कहते थे कि करो। कुछभी करो। यातो जो रुचे वह करो, जो ठीक समझते हो वह करो, या जो मैं कहूँ वह करो। पर करो अवश्य। अकर्मण्य मत रहो। भगवतीश्रुति भी इसी तत्त्वका उपदेश इन शब्दोंमें करती है—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेच्छतः ॐ समाः।" अर्थात् इस संसार-में अथवा यह मनुष्यजन्म पाकर कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे। भगवान श्रीकृष्णजी कहते हैं—

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यासि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥"

अर्थात् मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त होओ, मेरेलिये यज्ञ करो और मुझेही नमस्कार करो। यदि ऐसा करोगे तो मुझेही प्राप्त होगे। यह मैं तुम्हें प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो।

साधकका एक क्षणभी व्यर्थ न जाय, निरन्तर भगवत्प्रीत्यर्थ

भजन होता रहे, तभी उसे अपने ऊपर प्रभुकी कृपा समझनी चाहिये। एकबार एक पण्डितजी केवल भगवत्कृपाका ही पक्ष लेरहे थे। परन्तु श्रीमहाराजजीका कथन था कि भगवान् हमसे भजन-साधन करावें तभी उनकी कृपा समझनी चाहिये। और यदि न करावें तो इसे उनकी अकृपा माननी चाहिये।

श्रीमहाराजजीके विषयमें और अधिक क्या कहूँ ? मैं तो यही देखता हूँ—'मोपर करहिं सनेह विशेषी।'

"एक साधु"

एकबार किसीने श्रीस्वामीजीसे पूछा, "आप कोई ऐसा साधन बताइये जो सरलहो, संक्षिप्त हो, जिसमें सामग्रीकी आवश्यकता न हो और जिसमें सबका अधिकार हो। साथही वह शीघ्र फल देनेवाला भी हो।" तब आप बोले, "ऐसा साधन तो केवल भगवन्नामजप ही है। उसमें उपर्युक्त चारों बातें हैं। वह सरलभी है, उसमें सामग्रीकी भी आवश्यकता नहीं है और सबका अधिकार भी है।

एकबार एक विरक्त और विद्वान् महात्मा श्रीमहाराजजीके पास आये उन्होंने जनसमूहके सामनेही एक क्लिष्ट ग्रन्थकी शंका आपके आगे रखी। उसके उत्तरमें आप बोले, "इस शंकाका उत्तर हम न तो दे सकते हैं न देही सकेंगे। हमतो विशेष पढ़ा-लिखा नहीं जानते।" यह उत्तर सुनकर महात्मा चकित हुये और मनमें विचारने लगे कि यदि इनके मनमें मानकी इच्छा होती तो इतने स्पष्ट शब्द इनके मुखसे नहीं निकल सकते थे।

एक समय श्रीवृन्दावनमें आपने यमुनाजीमें दूध चढ़ानेकी आज्ञा दी और कहा कि जिस भावसे जितना भी दूध मिले ले आओ। जब दूध यमुनाजीके किनारे पहुँचा तो किसीने शंकाकी कि यदि यह दूध यमुनाजलमें न डालकर दूसरे मनुष्योंको पिला दिया जाय तो उन्हें पुष्टिदायक हो सकता है। यह सुनकर महाराजजीने कहा, "लोगोंके पेटमें गया दूधतो मल-मूत्र बन जायगा। हमें तो इसे यमुनाजल बनाना है मल-मूत्र नहीं।"

उदारता एक महान् गुण है, यह साधुका भूषण है। प्राचीन-कालमें संतोंमें यह गुण विशेष रूपसे पाया जाता था। इससे हृदय

प्रसन्न होता है, क्योंकि दूसरोंको दी हुई प्रसन्नता तुरन्त लौटकर दाताको मिलती है। अर्थात् दूसरोंका हृदय प्रसन्न करनेसे तुरन्त अपना हृदयभी प्रसन्न होता है। उनके हृदयके आशीर्वाद तत्काल फल प्रदान करते हैं। गरीबोंको दे, अतिथियोंको दे, रोगी-अपाहिजों-को दे, साधु-ब्राह्मणोंको दे, गंगा-यमुनाको दे—किसीको भी दे, पर देता अवश्य रहे। विशेषत: अन्न खिलाकर दूसरोंके हृदयको जितना वशमें किया जा सकता है उतना और किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। किसीका अन्न खानेसे हृदय तुरन्त उसका कृतज्ञ बन जाता है। अपनी वस्तु न हो, दूसरेकी हो, तो भी उसे देते रहनेसे हृदयमें त्यागकी भावना आती है। प्रत्यक्ष देखलो, जिसदिन आप दूसरोंको भोजन कराते हैं उसदिन स्वयं खानेकी लालसा कम रहती है। हलवाइयोंको देखो, वे पैसा लेकर देते हैं तो भी उनमें दूसरोंकी भाँति खानेकी लालसा कम रहती है। इसलिये कुछ-न-कुछ देते रहना चाहिये। बाबामें यह गुण विशेष रूपसे था। वे अपने पास आया हुआ मिष्ठान्न बाँटते, फल-फूल बाँटते, वस्त्र-कम्बलादि बाँटते, रोटी बाँटते, मलेरियाके समय कुनैन बाँटते और लवंग-इलायचीका टिकट बाँटते थे। उनके इस आचरणसे एक बड़ी शिक्षा मिलती है। कहते हैं महात्मा हातिम को मारनेके लिये उनके किसी शत्रुने एक आदमी को भेजा था। महात्मा हातिमने उस व्यक्तिको खूब खिलाया-पिलाया। पीछे यह पूछनेपर कि आप कहाँ जा रहे हैं? उस आदमीने कहा, "मैं हातिमको मारने जा रहा हूँ।" इसपर हातिमने अपना सिर झुका दिया और बोले, "मैं ही हातिम हूँ, मुझे मार डालो।" परन्तु उस व्यक्तिका हाथ नहीं उठा, बोला, "मैंने आपका अन्न खालिया है, अब यह नहीं हो सकता।" बस, कृतज्ञता प्रगट करता हुआ वह वापिस लौट गया।

बाबा श्रीदेवकीनन्दनशरणजी (दीनजी) वृन्दावन

प्रथम दर्शन

पूर्वाश्रममें मैं 'कल्याण'का स्थायी ग्राहक था और उसमें प्रकाशित लेखोंको बड़े चावसे पढ़ता था। प्रायः प्रत्येक महीने 'कल्याण' में पूज्यपाद श्रीउड़िया बाबाजीके सदुपदेश छपते थे। उनमें शब्द तो थोड़े ही होते थे, परन्तु उनका चित्तपर ऐसा प्रभाव पड़ता था कि बार-बार पढ़नेकी इच्छा होती थी। उन्हींसे धीरे-धीरे मेरे मनमें बाबाके दर्शनोंकी लालसा जाग्रत हुई।

एक दिन में लखनऊकी गीताप्रेसकी दूकानपर गया। वहाँ दो व्यक्ति बैठे थे। उनसे मैंने प्रार्थनाकी कि आप मुझे कोई ऐसी पुस्तक दीजिये जिसे पढ़कर मैं रो सकूँ अथवा किसी महात्माका ही पता बतलानेकी कृपा करें। उन्होंने विचारकर एक पुस्तक दी और कहा कि इसे ले जाकर पढ़िये। इससे रोना और महात्माका पता दोनों ही काम हो जायेंगे। उस पुस्तकको ले जाकर मैंने एकान्तमें पढ़ा। उसके प्रथम भागमें मुझे पूज्यबाबा और श्री हरिबाबाजीका परिचय मिला। दूसरे भागमें कथाकी रोचकता थी और आगेके खण्डोंको पढ़नेसे रोनेमैं सफलता मिली। यह पुस्तक थी ब्रह्मचारी श्री प्रभुदत्त-जी द्वारा लिखित 'श्री चैतन्यचरितावली'। इसीसे प्रभावित होकर मैं धीरे-धीरे श्री ब्रह्मचारीजीके आश्रममें झूसी पहुँचा। वहाँ एक वर्षका श्री हरिनामसंकीर्तन यज्ञ अभी आरम्भ ही हुआ था। मैंने भी एक वर्षपर्यन्त वहीं रहनेका संकल्प कर लिया।

झूसीमें रहते हुए मैंने श्री ब्रह्मचारीजीसे बाबाके दर्शन करानेकी

प्रार्थनाकी। ब्रह्मचारीजीने कहा, "बाबाके दर्शन तो तुम्हें यहीं माघमें अर्धकुम्भीके अवसरपर हो जाते। परन्तु किसी भक्तकी प्रार्थनासे वे काशमीरकी ओर जा रहे हैं।" उसके कुछही दिनों बाद ब्रह्मचारीजी एक दिन बोले, "तुम लोगोंको दर्शन देनेका विचार बाबाके संकल्पमें हो गया है और वे काश्मीर-यात्रा स्थगित-कर झूसीके मार्गपर चल पड़े हैं। आशा है, अर्धकुम्भी पर्वके दिन ग्यारह बजेतक वे पहुँच जायेंगे।" इससे हम सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और हम उनकी प्रतीक्षा करने लगे।

धीरे-धीरे निश्चित तिथि आ गयी। झूसी आश्रमके समीप ही बाबाको ठहरानेके लिये एक छप्परकी कुटी बनायी गयी। ठीक समयपर बाबा भक्तमण्डली सहित आश्रममें पधारे और मुझ दीनकी चिरकालीन अभिलाषा पूरी हुई।

झूसीमें बाबा बड़े प्रसन्न रहते थे। प्रातःकाल चार बजे एक घंटा अखण्ड कीर्तनमें विराजते थे। फिर पाँच बजे भक्तोंसहित त्रिवे-णीस्नानको जाते थे। श्री ब्रह्मचारीजीकी बाबामें अपार श्रद्धा थी। वे अपने हाथोंसे डाँड चलाकर उन्हें संगमपर ले जाते थे। वहाँसे लौटनेपर प्रायः आठ बजे आप आसनपर विराज जाते और दस बजेतक दर्शनार्थियोंके प्रश्नोंके उत्तर अथवा उपदेश देते रहते। तीसरे पहर कथा-प्रवचन आदिमें और सायंकाल समष्टि संकीर्तनमें सम्मिलित होते थे। आश्रमके सभी प्रोग्रामोंमें आप बड़ी प्रसन्नता और उत्साहसे विराजते थे।

बाबाकी दयालुता

एक दिन त्रिवेणी-स्नानके उपरान्त बाबा अपनी कुटियाके आगे धूपमें बैठे हुए थे। सामने भक्तगण और दर्शनार्थी थे। आप कहने

लगे, "भैया ! यहाँ कभी-कभी खुफिया पुलिसके लोग भी आते हैं और जिसकी खोजमें वे आते हैं वह भी आता है। परन्तु दोनों एक-दूसरे-को नहीं पहचानते। एक आदमी तो ऐसा आता है जिसपर सरकारने दो हज़ार रुपयेका इनाम घोषितकर रखा है। मुझे सुनकर बड़ा कुतूहल हुआ। एकान्त पाकर मैंने बाबासे प्रार्थनाकी, "बाबा ! मुझे उस आदमीको दिखा दीजिये, जिसपर दो हज़ार इनाम है।" बाबा सुनकर मुसकराये और बोले, "अच्छा, कल दिखायँगे।"

दूसरे दिन नित्यकी तरह जमाव लगा। थोड़ी देरमें उठकर बाबा कुटियामें चले गये। उनके पीछे एक तरुण संन्यासीने प्रवेश किया, जिसका शरीर इकहरा था और सिरपर जटाएँ थीं। उसके वस्त्र गेरुआ थे और कंधेपर एक झोली थी, जिसमें कुछ पुस्तकें थीं। बाबाने मुझे संकेत किया और मैं तुरंत कुटियामें पहुँचकर चटाई झाड़नेका बहाना करने लगा। वह संन्यासी बोला, "बाबा ! अब तो कई वर्ष होगये हैं, मेरा मन घर जानेको होता है। आप आज्ञा दें तो घर चला जाऊँ।" बाबा बोले, "नहीं, तू घर जायगा तो अवश्य पकड़ा जायगा। तू यहाँ आता है और खुफिया पुलिस भी आती है। अभी कुछ दिन और इसी अवस्थामें रहो। नित्य गीतापाठ करते रहो।" उस व्यक्ति ने फिर भी घर जानेकी अनुमति माँगी, परन्तु बाबाने अनुमति न देकर बार-बार सान्त्वना देते हुए यह कहकर विदा कर दिया कि फिर कभी मिलना। उसके चले जानेपर आपने मुझसे कहा, "यह क्रान्तिकारी है, अँग्रेजोंका कट्टर शत्रु है। इसीपर दो हज़ार रुपयेका इनाम है। इसके और भी कुछ साथी हैं, वे भी कभी-कभी आते हैं।"

यह सुनकर मेरे हृदयपर बाबाकी दयालुताकी छाप पड़ी।

अद्भुत समाधान

एक दिन प्रातःकाल नौ बजे मै अपनी कुटियामें बैठा था। उसी समय मेरे परिचित कालीचरण खत्री कॉलेजके प्रिंसिपल श्रीकालीदास कपूर एम० ए० एल्० टी० एक अँग्रेजको साथ लिये आये। उन्होंने मुझे बताया कि ये अँग्रेज सज्जन एक जर्मन विश्वविद्यालयके रिसर्च स्कॉलर हैं। ये वेदान्त पर एक ग्रन्थ लिखते-लिखते किसी विषयपर अटक गये हैं। उसीकी समझनेके लिये ये छुट्टी लेकर भारतमें आये हैं। कलकत्ता, बम्बई, काशी, हरिद्वार आदि कई नगरोंमें हो आये, परन्तु अभीतक इनके हृदयका समाधान नहीं हुआ। अब ये अपने उद्देश्यसे निराश हो चुके हैं। आप किसी महात्माका पता बता सकें तो बड़ी प्रसन्नता होगी। ये बातें सुनकर मेरा ध्यान बाबाकी ओर गया। मैंने उन्हें कुछ आश्वासन देते हुए कहा कि यहाँ एक महात्मा पधारे हैं। पहले मैं उनसे आज्ञा ले लूँ, तब आपसे मिलाऊँगा।

बाबा उस समय कथामण्डपमें कथा सुन रहे थे। मैंने उनसे संक्षेपमें सब हाल कहा। वे बोले, "मैं कुटियापर चल रहा हूँ। तुम उन्हें साथ लेकर वहाँ आओ।" बाबाके समीप पहुँचकर अँग्रेजी सभ्यताके अनुसार उस व्यक्तिने अपना टोप उतारकर अभिवादन किया और बैठ गया। प्रिंसिपल साहब ने प्रयोजनका स्पष्टीकरण किया। बाबाने प्रश्न करनेकी आज्ञा दी। उस अँग्रेजने प्रश्न किया और प्रिंसिपल साहबने दुभाषियेके रूपमें उसका अनुवाद किया। बाबाने पूछा, "इस प्रश्नका उत्तर ये कितने समयमें समझना चाहते हैं ?" अँग्रेजने प्रश्न किया, "आप कितनी देरमें समझा सकते हैं ?" बाबा बोले, "एक वर्षमें, एक महीनेमें, एक दिनमें

और केवल पन्द्रह मिनटमें।" तब अँग्रेजसज्जनने पन्द्रह मिनटमें ही समझनेकी इच्छा प्रकट की और अपने हाथपर बँधी घड़ीकी ओर देखा।

बाबाने उत्तर देना प्रारम्भ किया और साथ-ही-साथ कपूर साहब उसका अँग्रेजीमें अनुवाद करते गये। बाबा चौदह मिनटमें उत्तर देकर चुप होगये। उसके प्रश्नका समाधान होगया और उसने प्रसन्नतासे बड़ी कृतज्ञता प्रकट की। कुछ समयतक तो वह स्तब्ध होकर बाबाके मुखकी ओर निहारता रहा। फिर उसने दूसरा प्रश्न किया, "भारतमें जो नामसंकीर्तन होता है, क्या इसका प्रचार श्रीचैतन्यमहाप्रभुने ही किया है?" बाबा बोले, "बैकुन्ठधाममें नारद-प्रह्लाद आदि भक्तोंद्वारा सदा ही भगवान्‌के सामने संकीर्तन होता रहता है। यह संकीर्तन तो अनादि है। महाप्रभुजीके कालमें भगवान्‌की ही विभूतियों द्वारा इसका पुनरुद्धार हुआ था। श्रीचैतन्यमहाप्रभु भी भगवान्‌की ही विभूति हैं। उन्होंने लोककल्याणके लिये ही संकीर्तनका पुनः प्रचार किया था।" बाबाके इस उत्तरसे भी उस अँग्रेजको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह प्रणाम करके चला गया।

उन दोनों व्यक्तियोंके चले जानेपर बाबाने कहा, "यह प्रश्न-कर्त्ता अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि और विद्वान है, पर अनुवादक योग्य नहीं है।" मैंने कहा कि अनुवादक तो उच्चकोटिके विद्वान और लेखकभी हैं। बाबा बोले, "भलेही इन्होंने अनुवाद कर दिया, पर प्रशंसाके योग्य तो प्रश्नकर्त्ता ही था। अनुवादक इस विषयसे अपरिचित है।"

बाबाकी यह बात मेरी समझमें नहीं आयी। छः महीने पश्चात् मैंने अनुवादक महोदयसे उस विषयको समझना चाहा। परन्तु इन्होंने कहा, "मैंनेतो बाबाके वाक्योंका अंग्रेजीमें अनुवादमात्र किया

था। प्रश्नोत्तरका मुख्य विषय मेरी समझमें कुछ नहीं आया। मुझे आश्चर्य है कि उस अँग्रेजने तो प्रश्नका उत्तर पाकर कृतज्ञता प्रकट-की और मैं ज्यों-का-त्यों रह गया।"

लखनऊमें

मेरी प्रार्थनापर पूज्य बाबा झूसीसे अयोध्या होकर लखनऊ पधारे थे। साथमें श्रीब्रह्मचारीजी तथा बाबा रामदासजी आदि कई सन्त और भक्तगणभी थे। जबतक आप लखनऊमें विराजे तबतक कथा, कीर्तन, सत्संग और प्रवचन आदिका बड़ाही सुन्दर सुयोग रहा। बाबाकी भिक्षाके लिये प्रार्थना करने वालोंकी संख्या जब बहुत अधिक बढ़ गयी तो उन्होंने प्रतिदिनकी नामावली निश्चित करने-का काम मुझे सौंप दिया था। एक दिन कृपा करके आपने मेरे घरको भी पवित्र किया था।

जबसे बाबा लखनऊ पधारे थे उस दिनसे मैं नित्यही उनसे प्रार्थना करता था कि मुझे साधु बना लीजिये, अब मैं आपके साथ ही रहा करूँगा। एकदिन तो, जब वे मुहल्ला गणेशगंज जानेवाले थे, मैंने उनके चरण पकड़कर साधु बना लेनेके लिये प्रार्थना की थी। तब वे बोले, "नहीं, तुम अभी साधु नहीं बन सकते। तुम्हें साधु होनेका संस्कार नहीं है। अभी तुम्हें आर्थिक चिन्ता है और सन्तानप्राप्ति भी शेष है, इसलिये अभी तुम साधु नहीं बन सकते।"

मैं—"बाबा! आपकी इन बातोंसे तो मेरे चित्तमें बहुत दुःख होता है। मैं तो कई वर्षोंसे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन कर रहा हूँ। क्या मुझे फिर गार्हस्थ्यके जालमें फँसना होगा?"

बाबा—"यहतो होनहार है, टल नहीं सकता। धैर्य धारण करो। आगे चलकर तुम साधु हो जाओगे।"

मैं—"यदि बीच हीमें मर गया तो ?"

बाबा—"क्या तुमने शरीर अपने अधीन कर लिया है ? यदि मरभी गये तो दूसरा शरीर धारण करके साधु होगे । यदि तुम साधु न हो सको तो मुझे साधु मत कहना ।"

मैं—"तो बाबा ! वह संतानप्राप्तिवाली बात तो आप किसी प्रकार मेट दीजिये ।"

बाबा—"होनहार अमिट होती है । रावण जैसे प्रतापी भी होनहारको नहीं मेट सके, तुम्हारी क्या सामर्थ्य है ?"

यह कहकर बाबाने वह इतिहास सुनाया जिस प्रकार रावणकी पुत्रीका विवाह एक भंगीके लड़केके साथ हुआ था । इसके पश्चात् बाबासे मेरा वियोग हो गया । किन्तु दस-बारह वर्षके भीतर उनकी वह भविष्यवाणी सत्य हो गयी और उनके कथनानुसार मैं इस जीवनमें ही साधुभी हो गया । इससे पता चलता है कि बाबाकी भविष्यका भी ज्ञान हो जाता था । मेरे ऊपर बाबाके अनन्त उपकार हैं । उनके चरण-कमलोंमें मेरी सदा प्रीति बनी रहे—यही प्रार्थना है ।

सेठ श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला, दिल्ली

गत कई वर्षोंसे जब-जब मुझे मथुरा जानेका अवसर प्राप्त होता था, मैं वृन्दावनके आश्रममें श्री उड़िया बाबाजीसे भी मिलनेके लिये जाया करता था। उस समय सायंकालमें वहाँ कथा-कीर्तन आदिका कार्यक्रम रहता था, जिसमें बहुतसे साधु-संत तथा अन्य लोग भी सम्मिलित होते थे। कथा-कीर्तनकी समाप्तिपर कईबार बाबासे देशकी परिस्थितिके सम्बन्धमें वार्तालाप होता था। उस समय द्वितीय महायुद्ध होरहा था, जिसके सम्बन्धमें प्रारम्भसे ही बाबाकी यह निश्चित-सी धारणा बनी हुई दिखाई देती थी कि अब भारतमें अंग्रेजी साम्राज्य समाप्त होजायगा। किन्तु युद्धके अन्तमें अमेरिकन सहायतासे जब जर्मनी और जापान परास्त होगये और अँग्रेजोंकी विजय हुई तब एकबार फिर इस विषयमें बाबासे चर्चा हुई। उस समय भी बाबाने दृढ़तापूर्वक वही बात दोहरायी कि कुछ भी हो अब भारतमें एक वर्षके भीतर-भीतर अँग्रेजी साम्राज्य समाप्त होजायगा और भारत पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त करेगा।

बाबाकी वह भविष्यवाणी प्रत्यक्ष चरितार्थ हुई, यद्यपि इसमें पाकिस्तान भी बन गया और यहाँके करोड़ों हिन्दुओंको भयानक सङ्कटोंका सामना करना पड़ा। संत और भक्त होते हुए भी बाबा पाकिस्तानके हिन्दुओंकी उस घोर विपत्तिसे चिंतित दिखायी देते थे। यह भी कहते थे कि कुछ वर्षोंके पश्चात् पाकिस्तानको अपने पापोंके कारण नष्ट होना पड़ेगा तथा भारतमें अवश्यमेव रामराज्य एवं धर्मराज्य स्थापित होगा।

कविरत्न पं० श्रीराधेश्यामजी कथावाचस्पति, बरेली

श्रीमहाराजजीकी प्रशंसा मैंने अपनी युवावस्थाके आरम्भमें कलकत्तेमें सुनी थी। योगिराज अरविन्दके समान लोग आपको बताते थे। सुना तो यह भी था कि उस क्रान्तिकारी दलमें आप रहे थे।* जो हो।

प्यासा कुएँके पास पहुँच ही गया। प्रयागमें मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शन हो ही गये—मेरे घनिष्ट मित्र स्वर्गीय राष्ट्रकवि श्रीमाधव-शुक्लकी कृपासे। मैं तब वहाँ अपनी रामायणका 'केवट संवाद' गा रहा था। उसकी व्याख्या करते-करते मैंने कहीं यह कह डाला—"भगवान् तो बड़े हैं ही, पर मैं आज एक भक्तके दर्शन कराता हूँ और वह भी सीधे-सादे एक ग्रामीणके—मल्लाहके, जिसका आग्रह है चरण धोये बिना नावपर नहीं चढ़ाऊँगा। भगवान्को भक्तकी माननी पड़ी। तबतो सिद्ध हुआ कि भक्त भी बड़ा है। एक भक्त कहता है—

'खुदाई आपकी, ऐ जान जाँ ! मेरी बदौलत है।
सनम जिस दिन अकेले तुम हुए उस दिन कयामत है।"

मेरी इस व्याख्यापर मुझे श्रीमहाराजजीका आशीर्वाद मिला। मैंने अपनेको बड़भागी समझा।

कितनेही वर्ष पश्चात् फिर मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शन हुए एक गाँव भिरावटीमें। उन दिनों श्रीहरिबाबाजी वहाँ एक उत्सव कर

---

* क्रान्तिकारी दलमें तो नहीं, किन्तु बंगालके स्वदेशी आन्दोलनमें पिकैटिंग आदि अवश्य किया था।

रहे थे। घनारी स्टेशनसे माँ श्रीआनन्दमयीजीके साथ-साथ मुझे हाथीपर जाना पड़ा। मैंने बहुतही निवेदन किया कि मैं हाथीपर नहीं जाऊँगा। पर माँ क्यों मानने लगीं ? अन्तमें बोलीं, "तो हम भी हाथीपर नहीं जायँगे।" लाचार मुझे उनके साथ जाना पड़ा।

गाँवके समीप पहुँचते ही मैंने देखा, श्रीहरिबाबाजी हाथमें आरती लिये सामनेसे आ रहे हैं। उनके साथ श्रीमहाराजजी तथा और भी सैकड़ों पुरुष हैं। मैंने समझ लिया, यह माँका स्वागत है। एक भावनाने उस समय मुझे विवश किया कि मैं हाथीसे कूद पड़ूँ। भावना यह थी कि माँके साथ कहीं मेरी आरती न हो जाय। बस, कूदा मैं हाथीसे अनाड़ीकी तरह। हाथीका हड्डा मेरे सीनेपर लगा। मैं एकदम अचेत होगया। आँख खुली तो मैंने अपनेको श्रीहरिबाबाजीके हाथोंपर पाया। श्रीमहाराजजी खड़े थे और हाथी-पर बैठी हुई माँ हँस रही थीं। बाबाने कहा, "कहींभी हड्डी नहीं टूटी है, दिलकी हालत ठीक है।" मैं बोल उठा, "मर जाता तो अच्छा था, ऐसा मौका किसे मिलता है ? जटायु रामकी गोदमें मरा, मैं महाराजके हाथोंपर मरता।" निश्चय ही अपने उस दिनके पुनर्जीवन को मैंने सन्तों हीकी कृपा समझा। तीनोंमेंसे किसीकी भी हो मुझ-पर कृपा अवश्य हुई। सुननेवाले तो अबतक कहते हैं कि ऐसी घटना प्राण ले लेनेवाली ही हुआ करती है।

भिरावटीमें कई दिन रहनेके कारण प्रतिदिन कईबार श्रीमहा-राजजीके दर्शन होते थे—सबके सामने भी और एकान्तमें भी। एक दिन बड़े प्रसन्न थे, फरमाने लगे, "रामायण हीकी भाँति अब तुम कृष्णायनको भी पूर्ण करो। कृष्णचरितमें बाँसुरीका रस और गीताका ज्ञान ही नहीं है, संसारभरकी राजनीति और जीवनका संघर्ष भी है। अब ऐसा समय आनेवाला है कि विश्व में दिनों-दिन संघर्ष

बढ़ता ही जायगा। उस समय वही जीवनको सफल बना सकेगा जिसने श्रीकृष्णको खूब समझा होगा।" श्रीमहाराजीके भविष्यसूचक वचन आज प्रत्यक्ष हैं।

अन्तिम दर्शन मैंने श्रीकृष्णाश्रम वृन्दावनमें ही किये थे। उस समय मेरी प्रार्थनापर श्रीमहाराजजीने बरेली आनेकी सहर्ष स्वीकृति दी थी। पर बरेलीका दुर्भाग्य ! उसके पहले ही गाँधीजीके समान श्रीमहाराज भी आनकी आनमें सर्वव्यापिनी शक्ति जगदात्मामें लीन होगये। अब केवल उनकी स्मृति हमारे दिल में है, जिसे कोई भी हमसे दूर नहीं कर सकता; जैसा कि भगवान् श्रीकृष्णके मथुरा जाते समय गोपियोंने कहा था—

'हाय विधाता ! क्यों दिया हमें प्रेमका रोग।
जब तुमको संयोगमें था मंजूर वियोग॥'

× × × ×

'आँखोंके भीतरकी छविको तू अगर हटाए तो जानें।
हृदयोंके श्याम समलियाको मथुरा ले जाए तो जानें॥'

बरेली
१५-११-१९५३ }

(अपनी कृष्णायनसे)

प्रो० श्रीगंगाशरणजी 'शील' एम्० ए०, चँदौसी

सन् १९२७-२८ की बात है। उस समय मैं मेरठ कालेज की बी० ए० क्लासमें पढ़ता था। एक दिन वहाँके परमभक्त श्रीकर्ता-रामजीने मुझसे कहा, "आजकल मैं रामघाटमें एक कुटी बनवा रहा हूँ। वहाँ एक सिद्ध सन्त श्री उड़िया बाबाजी रहते हैं। मुझे 'उड़िया बाबा' नाम बड़ा विचित्र-सा लगा, क्योंकि मैं तो कई जन्मों-से इन्हीं चरणोंकी सेवा करता आरहा हूँ; मालूम पड़ता है बाबाका और मेरा सम्बन्ध कई जन्मोंसे था। अतः 'प्रीति पुरातन लखै न कोई' के नाते इस संतके प्रति मुझे बड़ा आकर्षण उत्पन्न हुआ। परन्तु लाख प्रयत्न करनेपर भी मैं श्री सरकारके दर्शन शीघ्र न कर सका।

मेरठके प्रथम संकीर्तन-सम्मेलनमें श्रीमहाराजजी नहीं पधार सके। उन दिनों बाँधपर एक अपूर्व सम्मेलन हुआ था। उसमें मेरठ से 'संकीर्तन' मासिक-पत्रके संचालक श्रीदुर्गाप्रसादजी भी पहुँचे थे। वे वहाँके बहुतसे संत और भक्तोंके फोटो लाये थे। उनमें श्रीसर-कारका भी फोटो था। उसीके द्वारा पहले-पहल मुझे आपके दर्शनों-का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् दिल्लीमें और फिर बुलन्द-शहर एवं अलीगढ़में बड़े विशाल उत्सव हुये। इन सभी सम्मेलनोंमें मुझे श्रीचरणोंमें बैठने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

जिस दिन मैंने प्रथम बार श्रीमहाराजजी के दर्शन किये उसी दिन किसी चिरपरिचित बालककी भाँति उन्होंने मुझे अपना लिया, जिससे मैंने भी तत्क्षण श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया। उसी दिन मुझे श्रीमहाराजजीकी कई विशेषताओं (चमत्कारों) का

अनुभव हुआ। पूज्य श्रीमहाराजजी और श्रीहरिबाबाजीकी असीम सहनशीलताका अनुभव तो मुझे बुलन्दशहरके उत्सवमें हुआ, जब ब्रह्मलीन श्रीरामतीर्थस्वामीके शिष्य श्रीनारायणस्वामीजीने बाँधके आश्रमों और मधुरभावकी उपासनाके कारण स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी बंगाली के प्रति गहरे कटाक्ष किये, किन्तु उनका उत्तर देनेकी आज्ञाके लिये लाख प्रयत्न करनेपर भी मुझे अनुमति नहीं मिल सकी।

एक बार श्रीमहाराजजी हरिद्वार पधारे थे। उस समय मैंने अपनी बहिन हीरावतीको उनके दर्शन कराये। उसी समय वह उनकी अनन्य भक्त हो गयी। उसी साल गुरु-पूर्णिमा वृन्दावनके श्रीकृष्णाश्रममें मनायी गयी। हीरो उस अवसरपर श्रीमहाराजजीके लिए एक अत्यन्त सुन्दर हार गूँथकर लायी और कहने लगी, "इस हारसे मैं बाबाकी पूजा तो अवश्य करूँगी, परन्तु मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि यह हार उनके करकमलों द्वारा तुम्हें प्रसादमें मिले।" मैंने कहा, "बाबा अन्तर्यामी हैं, तुझे विश्वास न हो तो आज यह खेल भी देख लेना।" बात बड़ी विचित्र हुई। श्रीमहाराजजीके गलेमें फूलों और गोटेके सैकड़ों हार थे। अब हारोंका प्रसाद बँटने लगा। जब हीरो-वाले हारपर सरकारका हाथ पड़ा तो आपने बड़े प्यारसे मुझे बुलाया और हार देकर कहा, "यह तेरे लिये है।" बहिन हीरो इस घटनाको देखकर चकित रह गयी।

मैंने जुलाई सन् १९३४ ई० में इस चँदौसी कालेजमें साधारण अध्यापक के रूपमें कार्य प्रारम्भ किया था। एक दिन प्रिंसिपल श्रीशिवशंकर महोदयने मुझसे कहा, "आप हिन्दीमें एम्० ए० क्यों नहीं कर लेते ? हमें हिन्दी के एम्० ए० की बहुत आवश्यकता है।" मैंने सोचा, ठीक तो है; केवल संस्कृत में एम्०-ए० रहने से उतना

लाभ नहीं हो सकता। यह सोचकर मैंने सन् १९३५ में परीक्षाका आवेदनपत्र भर दिया और सन् १९३६ में उसका पूर्वखण्ड उत्तीर्ण कर लिया। उस समय चँदौसी में कोई हिन्दीका एम्० ए० था नहीं; अतः मेरे सामने यह समस्या थी कि मैं अपना पाठ्यक्रम तैयार करने में किससे सहायता लूँ। कालेज केवल इण्टर क्लासतक था, अतः पुस्तकालयसे एम० ए० की पुस्तकें भी नहीं मिल सकती थीं। फिर १० बजेसे ४ बजेतक कालेजमें पढ़ाना, घरपर कापियाँ जाँचना और डायरी भरना। इनसे अवकाश मिले तो कथा-कीर्तन आदिमें जाना। इन सब झंझटों एवं असुविधाओंके कारण मेरी तैयारी पास होने योग्य भी नहीं हो सकी।

इसी प्रकार आजकल करते-करते होली आ गयी। इसके पश्चात् ही परीक्षा थी। सोचा कि अब होलीकी छुट्टियोंमें जीभरकर परिश्रम कर लूँगा। पर साथ ही बाँधके उत्सव और पूज्य बाबाके दर्शनोंका भी लोभ था। अन्तमें यही सोचा कि जब वर्षभर कुछ नहीं पढ़ा तो चार दिनोंमें ही क्या तैयारी कर सकूँगा। बाँधपर चलकर बाबाका आशीर्वाद अवश्य प्राप्त करना चाहिये। यह सोचकर मैं बाँधपर चला गया। आजतक बाबासे किसी प्रकारकी प्रार्थना नहीं की थी। परीक्षाके लिए कहते हुए बड़ी लज्जा-सी लगी। एक दिन जब प्रसाद बाँटते-बाँटते बाबा स्वयं ही मेरी झोंपड़ीमें आ गये तो मैंने कहा, "बाबा, इस वर्ष परीक्षा देनी है।" वे हँसकर बोले, "जीवनभर परीक्षा ही देता रहेगा ?" मैंने कहा, "इसके पश्चात् नहीं दूँगा। अब तो नौका पार लगा दो।"

अस्तु। वहाँसे आकर मैं अस्वस्थ हो गया, फिर भी जैसे-तैसे बरेली पहुँचा। मेरे कनिष्ठ भ्राता भोलानाथजी चाय आदि पिलाकर

किसी प्रकार इस योग्य तो कर ही देते थे कि परीक्षा दे आऊँ। पर वहाँ जो कुछ लिखा जाता था वह तो मैं ही जानता हूँ। परीक्षा देकर घर आया और जब परीक्षाफल प्रकाशित होनेवाला था तब बिजनौर के संकीर्तन-सम्मेलनमें चला गया। घर रहकर करता भी क्या ? अपने परिश्रम और प्रश्नोंके जो उत्तर लिखे थे उनसे तो पास होनेकी भी आशा नहीं थी, फिर किसी उत्तम श्रेणी की तो कौन कहे ?

परन्तु जब परीक्षा फल देखा तो मेरा नाम प्रथम श्रेणीमें था। पूज्य बाबाके इस चमत्कारको देखकर मैं रो पड़ा और अपनेको सँभाल न सका। यदि बाबाकी असीम कृपासे उस समय प्रथम श्रेणी प्राप्त न होती तो आज कालेजके हिन्दी विभागका अध्यक्ष कौन बनाता ? यह घटना सन् १९३७ ई० की है।

× × × × × ×

एक दिन महाराजजीने सत्संगमें लोगोंसे पूछा कि गीताका सार चौथाई श्लोकमें क्या है ? इसपर साधकलोग अपनी-अपनी निष्ठाके अनुसार उत्तर देने लगे। किसी ने कहा, "भक्ति", कोई बोला, "ज्ञान" और किसी ने कहा, "कर्म"। तब अन्तमें श्रीमहाराजजीने कहा, "तुमलोग जो कुछ कहते हो वह भी ठीक है, परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि गीता का सारांश आठ अक्षरोंमें यह है— "सर्वभूतहिते रताः।"* इसीलिये सन्तोंका आविर्भाव होता है तथा इसी निमित्तसे भगवान् अवतीर्ण होते हैं।

मुझे बड़ा आश्चर्य तो तब हुआ जब परलोकविद्याके द्वारा आवाहन किये जानेपर श्रीमहाराजजीने परलोक से आकर भी यही बात कही। यह घटना इस प्रकार हुई—एक भगवद्भक्त पुत्र के पर-

*सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें तत्पर रहने वाले।

लोक सिधारनेपर मेरा आकर्षण परलोकविद्याकी ओर हो गया था। पूज्य बाबाके आवाहनके लिये उमेशप्रसादके रूपमें मुझे माध्यम भी बहुत उच्चकोटिका मिल गया। यह अच्छा साधननिष्ठ बालक था। उन दिनों इस विद्याके द्वारा मेरा बड़े-बड़े प्रेमियों से परिचय हो गया था, जो परलोकमें रहते हुए भी हमारी सहायता करते हैं तथा प्रार्थना करने पर हमारा पथप्रदर्शन करने के लिये आ जाते हैं। अभी राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधीका परलोकवास हुआ ही था कि कुछ ही महीनों के पश्चात् पूज्य बाबा भी हमें छोड़कर चले गये। मेरे परलोकके मित्रोंने बताया कि बाबाका पता चौदहवें लोकतक भी नहीं है, वे तो लोकातीत हैं। यदि किसी कार्यवश वे नीचे उतरेंगे तो तुम्हारी प्रार्थनापर उन्हें यहाँ लाया जा सकेगा। बड़ी प्रतीक्षाके पश्चात् केवल पाँच मिनट के लिये बाबा परलोकसे मेरे यहाँ पधारे। चँदौसीके प्रमुख भक्त भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। सबने नतमस्तक होकर प्रणाम किया और एकस्वरसे प्रार्थना की कि आप तो चले गये, अब हम क्या करें? तब श्रीमहाराजजीने अचेत माध्यमके द्वारा लिखवाया—'लोकहित' अपने जीवनकालमें आपने, आपने कहा था—'सर्वभूतहिते रताः' और अब परलोकसे आकर भी आपने वही बात कैसे सूक्ष्म अक्षरोंमें कही—'लोकहित।'‡

(१) पंचाक्षर, द्वादशाक्षर और महामन्त्र आदिमेंसे किसी-न-किसी मन्त्र का जप अवश्य करना चाहिये।

(२) गीता और रामायणका पाठ करे तथा इन्हें कण्ठ करनेका भी प्रयत्न करता रहे।

---

‡अपने जीवनकालमें बाबा लौंगका टिकट बाँटा करते थे। यहाँसे जाते समय भी आप कुछ लौंगें छोड़ गये, जिससे लोगोंको आपके पधारनेमें किसी प्रकारका सन्देह न रहे।

(३) तम्बाकूका सेवन किसी भी रूपमें न करे तथा और भी समस्त मादक वस्तुओं से बचे ।

(४) सौन्दर्य दृष्टिमें है, सृष्टिमें नहीं; अतः संसारके सौन्दर्यको देखकर कारणपर दृष्टि रखनी चाहिये, न कि कार्यपर । पण्डितकी दृष्टि सर्वदा कारण पर ही रहती है, कार्यपर तो मूर्खलोग ही मुग्ध होते हैं ।

(५) कलियुगमें नामसंकीर्तनसे विशेष लाभ होता है, अतः स्वयं संकीर्तन करे और दूसरोंसे भी कराता रहे ।

मैंने अपने जीवनमें ये ही पाँच रत्न अपने पल्लेमें बाँधे हैं और यथाशक्ति इनका अनुसरण करते रहनेका प्रयत्न करता रहता हूँ । मैं तब भी आपका कृपापात्र था और अब भी उनकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ । मेरे जीवनमें जो दोष हैं वे मेरी निर्बलताके सूचक हैं और गुण उन्हींकी अपार, अहैतुकी एवं असीम कृपाके परिचायक हैं ।
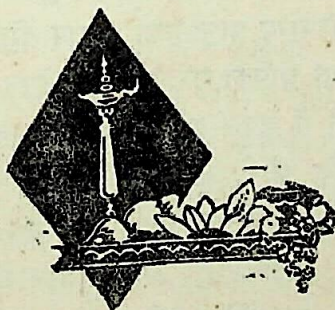
पं० श्रीसुबोधचन्द्रजी, चन्द्रनगर (बदायूँ)

पूर्णानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्ति
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

प्रातःस्मरणीय पुज्यपाद श्रीउड़ियाबावाजो बहुत बड़े महापुरुष हैं —यह चर्चा दासने सबसे पहले संतमण्डलीमें विराजमान ब्रह्मविद्वरिष्ठ श्री अच्युतमुनिजी महाराजके मुखारविन्दसे भृगु क्षेत्रमें सुनीं थी। उनसे मुझे यह भी विदित हुआ कि वर्तमानकालमें पूज्य बाबाके अतिरिक्त श्री भागीरथीतटपर कोई अन्य परमवैराग्यनिधि जीवन्मुक्त संत नहीं है। यह सुनकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता और उनके दर्शनोंकी उत्कण्ठा हुई। श्रीहरिकी अनुकम्पासे एक दिन अकस्मात् अनूपशहरके दक्षिणमें पतितपावनी श्रीगङ्गाजीके तटपर दासको आपके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप तीव्र गतिसे कर्णवासकी ओर जा रहे थे तथा आपका शरीर कृश होनेपर भी अत्यन्त तेजस्वी था। उस समय तो मैं केवल दूरसे आपके दर्शन ही कर सका। मुझे ऐसा लगा कि कोई व्यक्ति उनसे वार्तालाप अथवा उनकी छायाका स्पर्श करनेका भी साहस नहीं कर सकता। इसके पीछे तो रामघाट, कर्णवास, अनूपशहर, श्रीहरि बाबाजीके बाँध और श्री वृन्दावन आदि कई स्थानोंमें आपके दर्शन एवं सत्संगका सुअवसर प्राप्त हुआ। ऐसा अद्भुत और अपूर्व सत्सङ्ग तो आजतक मेरे देखने या सुननेमें नहीं आया। आपके सत्सङ्गमें एक विशेषता यह थी कि

अज्ञ-विशेषज्ञ, भक्त-अभक्त सभी मानो समाधिसुखका अनुभव करने लगते थे; उस समय सभीकी बोधमयी वृत्ति हो जाती थी। यह बात वर्तमान समयमें सर्वथा अलभ्य है।

पूज्य बाबाके उस देवदुर्लभ सत्सङ्गका प्रभाव देखकर चित्तमें यह विचार हुआ कि आत्मजिज्ञासाकी निवृत्तिके लिये यदि श्री महाराजजीको गुरु रूपसे वरण कर लिया जाय तो फिर सब प्रकार कल्याण ही कल्याण है। इस विचारके आनेके दूसरे ही दिन परम योगी सर्वज्ञ बाबा स्वयं ही मेरा हाथ पकड़कर श्री गङ्गातटपर एकान्तमें ले गये और बोले, "सुबोध ! तू क्या चाहता है ?" में एक दम विस्मित हो गया और मैंने उनके आगे अपना विचार प्रकट किया। तब बाबाने स्वयं स्नान किया और मुझे भी स्नान करनेकी आज्ञा दी। मैंने स्नान किया और बाबाके कौपीन तथा कटिवस्त्र धोकर झाऊके पौधोंपर फैला दिये। फिर आपने स्वस्तिकासनसे मुझे अपने सामने बिठाया और द्वादशाक्षर मन्त्रका उपदेश दे मुझे उसके जपकी विधि और अवधि बता दी।

मैंने विधिवत् जप आरम्भ किया और कुछ ही सप्ताह व्यतीत होनेपर मुझे बिना ही संकल्प किये अर्द्ध रात्रिके समय स्वप्नमें भगवती श्रीमहाकालीके दर्शन हुए। भगवतीके अङ्गकी कान्ति उज्ज्वल नीलमणिके समान थी तथा रक्त जिह्वा उनके मुख मण्डलको शोभायमान कर रही थी। उनकी पृथुल जंघाओंपर जांघिया खिचा हुआ था। उसपर भाँति-भाँतिके आभूषण ध्वनि कर रहे थे। पूज्य बाबा एक रत्नजटित स्वर्णमय थालमें सब प्रकारकी सामग्री ले षोडशोपचारसे पूजनकर भगवतीकी आरती कर रहे थे। उस समय उनकी भक्तमण्डली हाथ जोड़े बाबाके पीछे खड़ी थी। ऐसे परम विचित्र,

मनोहारी, रोमाञ्चकारी कालीविग्रहका दर्शन पा मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ और मैं बाबाका ध्यान करने लगा। मैंने जब भगवती-दर्शनका यह अद्भुत प्रसङ्ग श्रद्धेय प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी और आनन्द ब्रह्मचारी आदि भक्तगणके सम्मुख प्रकट किया तो उत्तर मिला कि बाबाकी तुमपर अत्यन्त कृपा है। पूज्य बाबाने मन्त्रोपदेश देकर तुम्हें अनुग्रहीत किया है, अतः यह सब उन्हींका प्रसाद है। किन्तु सङ्कोचवश दासने यह देवी-दर्शनका प्रसङ्ग पूज्य बाबाको नहीं सुनाया बस, नियमानुसार मन्त्र जप करता रहा।

दैवगतिसे पूज्य बाबाद्वारा बतायी हुई मन्त्रजपकी अवधि पूरी हो गयी। घरमें स्वाध्यायके समय भी बाबाके ही दर्शन एवं सत्सङ्गादिकी स्मृति बनी रहती थी। परन्तु उनदिनों आपका कोई निश्चित निवास स्थान नहीं था, अतः कहीं जाकर दर्शन करना तो असम्भव ही था। इतने हीमें बाबाके एक भक्तसे यह शुभ समाचार मिला कि बाबा विचरते हुए अनूपशहर आ गये हैं और सेठ रामशङ्करके बागमें ठहरे हुए हैं। यह सुनकर दास गङ्गाजी को पार कर आपके दर्शनार्थ अनूपशहर पहुँचा। वहाँ जाकर देखा कि बाबा अधिकारिभेदसे कर्म, उपासना और ज्ञान-वैराग्य आदि सभी साधनोंका उपदेश कर रहे हैं तथा साथ ही सबको प्रसाद भी बाँट रहे हैं। उन दिनोंमें बाबाकी यह अद्भुत सिद्धि तो अधिकांश भक्तोंने देखी थी कि जिन पात्रसे बाबा प्रसाद बाँटते थे वह आपके संकल्प करनेपर, कितने ही लोगोंको प्रसाद बाँटा जाय, खाली नहीं होता था। यह चमत्कार सेठ रामशङ्करजी आदि अनेकों भक्तोंने प्रत्यक्ष देखा था। भगवती श्री अन्नपूर्णा निर्जन वनमें भी बाबाके भोजन-भण्डारको पूर्ण रखती थीं।

बाबामें ऐसे ही अगणित गुण थे, उन सबका वर्णन करना असम्भव ही है। यों तो आप प्राणिमात्रसे प्रेम करते थे, परन्तु अपने आश्रित भक्तजनोंको तो अपने प्रेमामृतसे आप्लावित ही कर देते थे। उनके भजन, अशन, आसन, वसन, शयन इत्यादि सभी आवश्यकताओंका इतना ध्यान रखते थे कि कोई परम सुहृद तथा माता-पिता भी उसका अनुकरण नहीं कर सकते। साथ ही विशेषता यह थी कि प्रत्येक प्रेमी यही अनुभव करता था कि बाबाका सबसे अधिक प्रेम मुझपर ही है। आत्माका नाश करनेवाले एवं नरक-नगरके द्वारभूत क्रोधपर तो आपका ऐसा आधिपत्य था कि वह भयके कारण यावज्जीवन कभी आपके सम्मुख ही नहीं आया। बाबाको किसी भी व्यक्तिने कभी अपराधोपर भी क्रोध करते नहीं देखा।

पूज्य बाबा एक उच्चकोटिके सर्वसमर्थ योगी थे। वे एक ऐसा विलक्षण कुम्भक करते थे, जिसकी विधि खोजनेपर किसी शास्त्रमें भी नहीं मिलती थी। इस कुम्भकको करने पर बहुत समयतक बाबाके प्राणोंकी गति सर्वथा रुक जाती थी। उस समय उनके नेत्र अर्धोन्मीलित रहते थे तथा वह अत्यन्त दीप्तिमान् और समाधिस्थ हो जाते थे। रामघाट में बाबू रामसहायजीने कई बार कलकत्ती (नरौरा) के डाक्टरों से भी आपकी परीक्षा करायी थी। दासको तो उन्होंने स्वयं ही दो बार अपनी उस स्थिति का दर्शन कराया था।

बाबाका कार्य संकल्पमात्रसे सिद्ध हो जाता था। उसके लिए उन्हें याञ्चा, मन्त्रणा अथवा परामर्शकी आवश्यकता नहीं होती थी। वे कहा करते थे, 'न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः।' उनकी आत्मनिष्ठा इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि उनके सत्संगमें सम्मिलित होनेवालोंकी भी

देहभावना उतनी देरके लिए निवृत्त हो जाती थी। वे इस श्लोकार्धको प्राय: सुनाया करते थे—'आकाशकोशतनवोऽतनवो महान्तस्तस्मिन् पदे विगतचित्तलवा भवन्ति।' ‡ श्रीबाबा सर्वदेवमय थे, उनमें सभी देवताओंका वास था। इस सिद्धिका भक्तजनोंको तब प्रत्यक्ष हुआ जब अनूपशहरमें श्री लक्ष्मणवल्लभजीकी पत्नी ने श्री राघवेन्द्रके रूपमें आपका दर्शन किया और वे प्रेतबाधासे मुक्त हो गयीं। साथ ही आपका दर्शन पाकर वह प्रेत भी मुक्त हो गया—'सर्वदेवमयो गुरु:' 'नास्ति तत्त्वं गुरो: समम्।'

पूज्य बाबा केवल प्रेमवश दासके देह और गेहको पवित्र करनेके लिए अपनी पुनीत भक्तमण्डलीके सहित घरपर पधारे थे। दो-तीन बार तो रात्रिको भी विश्राम किया था। यह सब आपकी लीला ही थी। वास्तवमें तो हमारे गुरुदेव श्री उड़ियाबाबाजी महाराज समस्त सद्गुण एवं अनेकानेक सिद्धियोंके मूर्त्तिमान् विग्रह थे। अपने भक्तों के लिये तो वे प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष ही थे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अन्तमें पूज्यपाद श्री गुरुदेवके पादपद्मोंमें श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए यह लेख समाप्त करता हूँ—

यस्य प्रसादलेशेन सुबोधोऽपि परङ्गत:।
तमेव सद्गुरुं वन्दे श्रीपूर्णानन्दविग्रहम्॥
पूर्णानन्द प्रसादेन सुबोध: पूर्णतां गत:।
अतस्तमेव वृणुते सर्वदेवमयो हि स:॥

---

‡ आकाशमण्डल ही जिनका देह है ऐसे देहातीत महापुरुष उस परमपद में स्थित हो चित्तरूप अणुसे रहित हो जाते हैं।

श्रीमान् ठाकुर श्रीकञ्चनसिंहजी साहब, गोरहा (एटा)

अपने जीवनकालमें मैंने जितने महात्माओंके दर्शन किये हैं उनमें सबसे अधिक मेरी श्रद्धा बाबामें ही हुई। मुझे अनेक बार उन्हें भिक्षा करानेका अवसर मिला। परन्तु मैंने कभी उन्हें स्वादके साथ भोजन करते नहीं देखा। भोजन करनेमें उनके स्वादपर उनकी दृष्टि जाती ही नहीं थी। इसी प्रकार अन्य सब विषयोंसे भी उनकी विलक्षण असङ्गता देखनेमें आती थी।

सन् १९४७ ई० में मैं एक मोटरदुर्घटनामें ग्रस्त होगया था। उस समय मुझे एक मिनटके लिए मूर्च्छा होगयी थी। अपने मनमें कोई संकल्प न होनेपर भी उस समय मुझे बाबाके दर्शन होरहे थे; यद्यपि आप उस समय वृन्दावनमें थे। उस दुर्घटनासे जो मेरी प्राण-रक्षा हुई उसे मैं बाबाका ही प्रसाद मानता हूँ।

श्रीमती ठकुरानी साहिबा, गोराहा [एटा]

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन मुझे अमरसामें हुआ था। उसी समय मेरे हृदयमें उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा होगयी। उसके पश्चात् एकबार सम्भल जाते हुए आप अकस्मात् नरौली पहुँचे और वहाँ मेरे ही बागमें विश्राम किया। मैंभी उन दिनों वहीं थी। आप एक दिन ठहरे और मुझे मंत्र देकर भजनकी विधि बतायी। वहाँसे सम्भल जानेका विचार आपने त्याग दिया, मानो मेरे ही लिये आपने वहाँ आनेकी कृपाकी थी।

अपनी कुलमर्यादाके अनुसार मैं हर जगह उनके दर्शनार्थ नहीं जा सकती थी। अतः आपने मुझे आदेश दिया कि जहाँ उपयुक्त स्थान और व्यवस्था देखेंगे वहाँके विषयमें तुम्हें सूचना दे देंगे, तभी आना। इस नियमका आप अन्ततक निर्वाह करते रहे। उनके दर्शन और स्मरणसे जो अनिर्वचनीय सुख एवं शान्ति मिलती थी वह अवर्णनीय है। व्यवहारमें अनेकों चमत्कार भी हुये। उनमेंसे दो-तीनका यहाँ उल्लेख करती हूँ।

(१)

नरौलीमें मुसलमानोंका उर्सका मेला लगनेवाला था। वहाँके प्रधान हिन्दू रईस भी सहमत थे, परन्तु जनता दुखी थी, क्योंकि उस मेलेमें गोवध होता था। लोगोंने मेरे पास समाचार भेजे और मैंने श्रीमहाराजीसे प्रार्थना की। आप बोले, "तुम प्रयत्न करा, मेला नहीं लगेगा।" बस, एक प्रार्थनापत्र दिला दिया गया और मेला स्थगित होगया।

(२)

मेरे पति आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। एक दिन श्रीमहाराजजीके समक्ष चर्चा चली कि यह एक राजकीय सम्मान है। आप बोले, यह सम्मान तो तुच्छ है, सम्मान तो उपाधिका ही माना जाता है।" श्रीमहाराजजीने जिस समय रामघाटमें यह बात कही, उसी समय घरपर तत्कालीन कलक्टर ल्यूस साहबकी सूचना आयी कि साहबने कुँवर साहबको बुलाया है। किन्तु कुँवर साहब तो रामघाटमें थे। वहाँसे एक मास पश्चात् लौटनेपर कलक्टर साहब मिले। तब उन्होंने बतलाया कि मैंने आपके लिये 'रायबहादुर' उपाधि की शिफारिश की है। इस प्रकार श्रीमहाराजजीके संकल्पमात्रसे अनायास ही कुँवर साहबको 'रायबहादुर' की उपाधि प्राप्त होगयी, जो दूसरोंको बहुत प्रयत्न करनेपर मिलती थी।

(३)

एकबार प्रान्तीय विधान सभाका चुनाव होनेवाला था। उसमें खड़े होनेके लिये तत्कालीन कलक्टरने कुँवर साहबसे बहुत आग्रह किया। परन्तु जब श्रीमहाराजजीसे पूछा तो उन्होंने मना कर दिया। हमने कहा कि कलक्टर साहब बहुत आग्रह कर रहे हैं। तब आप बोले, "सब ठीक होजायगा।" कुछ दिनों पश्चात् जब आप घरपर लौटे तो उक्त कलक्टर साहब स्थानान्तरित हो चुके थे। उनके स्थान-पर जो दूसरे कलक्टर आये उन्होंने इस विषयमें कोई चर्चा ही नहीं की। हम चुनावके झंझटसे बच गये।

(४)

हमें कष्ट और आपत्तियोंसे कभी संघर्ष नहीं करना पड़ता था। श्रीमहाराजजी स्वयं ही उनका निवारण करते रहते थे। एकबार

मेरे यहाँ सोरोंनिवासी पं० दशरथ शास्त्री एक अनुष्ठान कर रहे थे। अकस्मात् उनका लड़का बहुत बीमार होगया। उसे त्रिदोष हुआ और उसकी स्थिति मरणासन्न होगयी। ऐसी अवस्था देखकर मैंने नाहरसिंहको श्रीमहाराजजीके पास भेजा। बस, जिस समय आपको इस विघ्नकी सूचना दी गयी, उसी समयसे उस बालककी दशा सुधरने लगी और धीरे-धीरे वह पूर्णतया स्वस्थ होगया।

ठाकुर श्रीनाहरसिंहजी बी० ए०, गोरहा (एटा)

प्रथम दर्शन

मैं जोबनेर (राजस्थान) के हाईस्कूलकी नवीं कक्षामें पढ़ रहा था। उनदिनों मैं कुछ आर्यसमाजी विचारोंका था। हमारे हेड-मास्टर पं० श्रीभूदेव शर्मा कभी-कभी श्रीमहाराजजीके दर्शनोंको जाया करते थे। एकबार उनके मुखसेही मैंने श्रीमहाराजजीका नाम और उनकी कुछ चर्चा सुनी। यद्यपि उस समय मेरी प्रवृत्ति महात्माओंके पास जानेकी नहीं थी, तथापि आपकी चर्चा सुनकर मेरे मनमें ऐसा भाव हुआ कि मैं आपका दर्शन अवश्य करूँगा। संयोग-वश उसके दूसरे ही वर्ष श्रीमहाराजजी कासगंज पधारे। उनके साथ मेरे सहपाठी पं० चिन्तामणि भी थे। उन्होंने एक दिन श्रीमहाराजजीसे निवेदन किया कि यहाँसे थोड़ी दूरपर मेरे एक मित्र नाहर-सिंह रहते हैं। तब बाबा बोले, "उसे मेरे पास ले आ।" बस, पं० चिन्तामणिजी आये और मुझे कासगंज ले गये। वहाँ श्रीज्वाला-प्रसादजीके घरपर ही सबसे पहले मैंने श्रीमहाराजजीके दर्शन किये। उस समय आप शुद्ध खादीके वस्त्र पहनते थे और मुझे भीं खादीसे प्रेम था। वहाँसे जब विश्राम-स्थलपर लौटे तो आपने मुझसे पूछा, "तू आर्यसमाजी है या सनातन धर्मी ?" मैंने उत्तर दिया, "मैं कुछ आर्यसमाजी हूँ और कुछ सनातनधर्मी भी हूँ।" यह विचित्र उत्तर सुनकर बाबा हँस पड़े और बोले, "यह क्या, कुछ आर्यसमाजी और कुछ सनातनधर्मी ? एक ओर रहना चाहिये। बस, प्रथम दर्शनमें श्रीमहाराजजीसे मेरी इतनी ही बात हुई।

उसके पश्चात् मैं घर चला आया। दो वर्ष पश्चात् अध्ययन-कालमें ही मैंने पं० रामचन्द्र शुक्लकी 'तुलसीदास' नामकी पुस्तक पढ़ी। कुछतो उसका प्रभाव पड़ा और कुछ श्रीमहाराजजीकी ही ऐसी आन्तरिक प्रेरणा हुई कि मैं शुद्ध सनातनधर्मी बन गया। इसके पश्चात् जब बाबा पुनः कासगंज पधारे और मैं उनके दर्शनार्थ गया तब उन्होंने मुझसे फिर यही प्रश्न किया—"अब तू आर्यसमाजी है या सनातनधर्मी ? मैंने स्पष्ट उत्तर दिया, "अब मैं सनातनधर्मी हूँ।"

अद्भुत क्षमा

इसके कुछ काल पश्चात् श्रीमहाराजजी नरौली (चंदौसीके पास) पधारे। मैं उस समय वहीं था। भक्तजनोंका विचार आपको बागवाली कोठरीमें ही ठहरानेका था। परन्तु जब आप वहाँ पहुँचे तो कोठीके प्रधान चौकीदारने आपको वहाँ ठहरने नहीं दिया। अतः आप बागके समीपही एक मेंडपर बैठ गये। मुझे जब इस बातकी सूचना मिली तो मैं तुरन्त घोड़ेपर चढ़कर पहुँचा। मेरे मनमें बड़ा संकोच और भय था कि न जाने अब स्वामीजी कोठीमें ठहरेंगे या नहीं ? परन्तु जब मैं पहुँचा तो मुझे देखते ही आप बोले, "अरे तू यहाँ कहाँ ?" फिर मेरे आन्तरिक भावके अनुसार आप स्वयंही कहने लगे—"कोठीकी सफाई होगयी या नहीं ?" मैंने कहा, "होगयी।" आप बोले, "देख, नौकरसे कुछ कहना मत।" आपकी इस क्षमावृत्तिका मेरे चित्तपर बड़ा प्रभाव पड़ा। बस, कोठीमें आपका आसन लगवा दिया गया। फिर ठकुरानी साहिबाने भी आपके दर्शन किये। यहीं आपने मुझे रामनामका उपदेश किया और जप करनेकी आज्ञा दी। इसके सिवा दासबोध और भक्तमाल पढ़नेका भी आदेश दिया।

कार्यका निर्णय

एकबार श्रीमहाराजजी बाँधपर थे। तब मैंने पूछा कि मुझे कोई नौकरी करनी चाहिये या उसका संकल्प हृदयसे निकाल देना चाहिये ? आप बोले, "भैया ! और सब काम तो तुम आगे भी कर लोगे, धन भी कमा लोगे, परन्तु सत्संगका ऐसा सुन्दर अवसर फिर नहीं मिलेगा।" तबसे मैंने नौकरीका संकल्प सर्वथा त्याग दिया।

ठाकुर साहब* कभी-कभी श्रीमहाराजजीसे कहा करते थे कि रियासतका प्रबन्ध ठीक नहीं है। मेरे पिताजीकी मुझे आज्ञा थी कि तुम अन्यत्र कहीं भी नौकरी करना, परन्तु ठाकुर साहबके यहाँ नौकरी मत करना। इधर ठाकुर साहब भी सोचते थे कि ये बी० ए० पास हैं, इन्हें कोई अच्छी गवर्नमैण्ट-सर्विस करनी चाहिये, इन बातों-का श्रीमहाराजजीने इस प्रकार फैसला कर दिया। वे ठाकुर साहब-से बोले, "अब तुम सारा काम नाहरसिंहके ऊपर छोड़ दो।" और मुझसे कहा कि तुम इसे मेरा काम समझकर सब प्रबन्ध करो। तबसे श्रीमहाराजजीकी आज्ञासे मैं उन्हींका कार्य समझकर रियासत-का प्रबन्ध करने लगा। हाँ, मेरे मनमें एक बात अवश्य थी कि मुझे कभी कचहरी न जाना पड़े और न कभी बयान देने पड़ें। सो श्रीमहाराजजीकी कृपासे आजतक मुझे कभी कोर्टमें नहीं जाना पड़ा।

रोगमें सहायता

एकबार ठाकुर साहबके साथ मैं मोहनपुरसे श्रीमहाराजजीके दर्शन करके लौट रहा था। रातके नौ-दस बजेका समय था। मार्गमें

*गोरहाके रईस रायबहादुर ठाकुर कञ्चनसिंहजी। इनका नाहरसिंहजीसे कोई समीपका सम्बन्ध है।

मुझे हैजा होगया। पेटमें भयानक दर्द था, क़य और दस्त दोनों चल रहे थे। व्याकुलताके कारण मैं नहरके किनारे लोटा-लोटा फिरता था। ठाकुर साहब और ठकुरानीजी बड़े दुःखी हो रहे थे। सोचते थे अब मोहनपुर श्रीस्वामीजीके पासही लौट चलें। किन्तु श्रीमहाराजजीकी कृपासे मैं उस समय भी अपनेको शरीरसे अलग अनुसन्धान कर रहा था। मैंने कहा, "नहीं, मुझे ऐसे स्वामीजीसे क्या मतलब जो मोहनपुरमें हैं और यहाँ नहीं हैं।" उसी समय ठकुरानीजीके हृदयमें ऐसी प्रेरणा हुई कि इनकी नाभिपर हींगका फोहा रखना चाहिये। उन्होंने वैसा ही किया और मैं अच्छा हो गया।

लीलासंवरणके पश्चात् भी श्रीमहाराजजीने मुझे दोबार स्वप्नमें दर्शन दिया है और आज्ञा दी है कि तुम अपनेको शरीरसे अलग देखो।

भक्तवत्सलता

श्रीस्वामीजी अपनी सेवासे उतने प्रसन्न नहीं होते थे जितने अपने भक्तोंकी सेवा करनेसे। एकबार श्रीस्वामीजीने मुझे एक ऐसे भक्तकी सेवा सौंपी जिनमें मेरी बिलकुल श्रद्धा नहीं थी। तथापि मैंने यथाशक्ति आदरपूर्वक आपकी आज्ञाका पालन किया। इससे प्रसन्न होकर आप बोले, "मैं इसकी सेवासे प्रसन्न हूँ।" एकबार जब आपको पता चला कि रसोईमें उत्तम और सामान्य दो प्रकारका भोजन बनता है तभीसे आप रसोईका प्रबन्ध देखने लगे और स्वयं अपने हाथसे परोसकर भक्तोंको खिलाने लगे।

श्रीमहाराजजी बड़े ही भक्तवत्सल थे। अपने भक्तोंकी श्रद्धा और रुचिका वे इतना अधिक ध्यान रखते थे कि हम उसका अनु-

मान भी नहीं कर सकते। वे अपने भक्तोंको दुःखी नहीं देख सकते थे। मेरा स्वभाव था कि मैं यदि किसी बड़े नगर या प्रदर्शिनी आदिमें जाता तो यह अवश्य देखता था कि यहाँ श्रीस्वामीजीके योग्य कोई अच्छी वस्तु है या नहीं ? एकबार सोरोंके मार्गशीर्ष मेलेमें गया। वहाँ और कुछ तो पसन्द आया नहीं, एक चाकू खरीदा। परन्तु उसका बेंटा सींगका था। वह चाकू मैंने श्रीमहाराजजीको भेंट किया। रात्रिमें बहिनजीने देखा और घृणाके भावसे बोलीं, "सींगका चाकू लाया है !" इसपर स्वामीजीने उन्हें फटकारा कि तुमने तो सींग ही देखा, उसका हृदय तो देखा नहीं कि कितनी श्रद्धासे लाया है ?

इसी प्रकार पञ्जाबयात्रामें जब खन्नामें यह निर्णय हुआ कि आगेकी यात्रामें केवल २५—३० व्यक्ति ही जासकेंगे और श्रीमहाराजजीके भक्तोंको लौटानेका निश्चय हुआ तो उस समय आपका हृदय भर आया था, क्योंकि भक्तजन इसप्रकार अधूरी यात्रासे आपको छोड़कर लौटना नहीं चाहते थे। मेरा हृदय भी उस समय आपके वियोगका दुःख अनुभव करता था, इसलिये मुझसे तो आपने स्पष्ट कह दिया था कि तू अपने खर्चे से हमारे साथ चल।

वृन्दावनमें ठाकुरसाहबके यहाँ चोरी होगयी थी। उसमें प्रायः एक लाखकी सम्पत्ति जाती रही थी। उस समय जब मैंने श्रीमहाराजजीको सूचना दी और आप घटनास्थलपर पहुँचे तो देखते ही अचेत होगये थे। उस चोरीका ठाकुरसाहब, ठकुरानीजी या मुझे भी उतना दुःख नहीं हुआ था जितना कि आपको। इन घटनाओंसे निश्चय होता है कि आपमें भक्तवत्सलता बहुत अधिक थी।

उपसंहार

श्रीमहाराजजीमें कार्यकुशलता भी अद्भुत थी। परन्तु वे थे

सर्वथा असङ्ग। वे साग बहुत अच्छा बनाना जानते थे, परन्तु स्वयं खानेमें उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं थी। एकबार मैंने उनका बनाया हुआ आलू-गोभीका साग खाया था। वैसा स्वादिष्ट साग मैंने आजतक कभी नहीं खाया। उनके यहाँ आर्थिक संकोचका अवसर भी कभी नहीं देखा गया। परन्तु वे कभी किसीसे रुपयेकी इच्छा नहीं रखते थे, आर्थिक सेवा बहुत आग्रह करनेपर ही स्वीकार करते थे। उनके यहाँ खर्चा बहुत होता था, परन्तु वह कहाँसे आता था—इस बातको वे ही जानते थे, और किसीको भी पता नहीं था।

श्रीमहाराजजीके सम्बन्धमें अपने अनुभवोंको तो मैं उनके सामने ही प्रकट करना अच्छा समझता हूँ, क्योंकि तब तो लोग उन्हें कसौटीपर कस सकते थे। अब उन बातोंको प्रकट करना तो स्वयं ही अपनी ख्याति करना होगा। अतः अब इस विषयमें अधिक निवेदन करनेकी मैं आवश्यकता नहीं समझता।
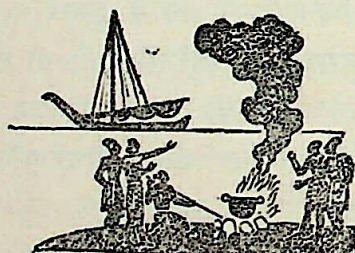
पं० श्रीरामानन्दजी, दिल्ली

पूज्य श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजको श्रीमन्महाप्रभुजीका* साक्षात्कार हो चुका था—ऐसा मेरा विश्वास है। एक दिनकी बात है, मैं बाबाके साथ श्रीयमुनाजीसे आरहा था। मैंने पूछा, "महाराजजी ! श्रीमन्महाप्रभुजीका स्वरूप कैसा है ?" बाबा बोले, अरे ! उनका स्वरूप तो दयामय है। उनके स्वरूपमें दयाके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। ऐसा करुणामय ठाकुर मैंने कोई नहीं देखा।" इतना कहकर श्रीस्वामीजीने मेरी ओर देखा। उस समय सचमुचही उन दयालुकी दयासे श्रीमन्महाप्रभुजीका दयामय स्वरूप ज्योंका त्यों मेरे हृदयमें आगया। हृदयमें मुझे उनका दर्शन हुआ। तब मैंने जाना कि बाबा जिसपर दया करें, उसे महाप्रभुजीके दर्शन करा सकते हैं।

श्रीमहाराजजीको अन्नपूर्णाकी भी सिद्धि थी। वे जिस पदार्थको दृष्टिसे देख लेते थे वह अमृतस्वरूप होजाता था। उनमें अनेकों सद्‌गुण थे, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।
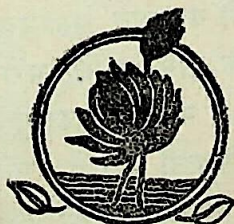
* श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी।

पं० श्रीज्योतिप्रसादजी, दिल्ली

पूज्यपाद श्रीउड़ियावाबाजी इस युगके एक महान् पुरुष थे। वे सिद्ध महात्मा थे। उनमें वाक्सिद्धि थी। श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन मुझे श्रीहरिबाबाजीके बाँधपर हुआ था। उनके दर्शनमात्रसे मुझे कुछ बेहोशी-सी होने लगी थी। मैं उनके श्रीचरणोंपर गिर पड़ा। उन्होंने मुझे उठाया, मेरी पीठपर हाथ फेरा और मुझे प्रसाद दिया। उस प्रसादको पानेसे शरीरमें रोमाञ्च होआया था। बाबाने स्वयं ही मेरा नाम लेकर कहा, "तुम दिल्लीसे आये हो ?" मानो वे मेरे चिरपरिचित हों, भलेही मुझे यह मालूम नहीं था। इतनी कृपा किसीभी जीवको अपनानेके लिये पर्याप्त थी। उसी दिनसे मेरा मन बाबाके श्रीचरणोंमें लग गया। जबकभी मैं मन-ही-मन उनका ध्यान करता वे स्वप्नमें अवश्य दर्शन देते।

एकबार बाँधपर दिल्लीवालोंकी ओरसे आपसे दिल्ली पधारनेके लिये प्रार्थना की गयी। आपने और कुछ न कहकर सीधे कह दिया, "जब स्वराज होजायगा, अँग्रेज भारतसे चले जायँगे, तब दिल्ली आऊँगा।" यह बात भारतको स्वराज मिलनेके पाँच-सात वर्ष पूर्वकी है। उस समय सबको यह बात असम्भव-सी जान पड़ी थी। बाबाने एक-दो व्यक्तियोंके सामने नहीं, भरी सभामें यह बात कही थी। सब लोग सुनकर दंग रह गये। परन्तु बाबा भविष्यको जानते थे। उनकी बात सच्ची निकली और वे तभी आये जब भारतको स्वराज मिलगया। उनके साथ माँ श्रीआनन्दमयी, श्रीहरिबाबाजी और स्वामी अखण्डानन्दजी आदि भी थे।

एकबार गीताजयन्तीके अवसरपर बाबा दिल्ली पधारे थे। बहुतसे भक्तोंकी इच्छा थी कि बाबाको छत्र-चँवर लगाकर जय-जयकार करते हुए सवारी निकाली जाय। परन्तु बाबाने यह आडम्बर पसन्द नहीं किया। श्रीगीताजीकी सवारी निकाली गयी और बाबा सबके साथ पैदल चले। उस समय सहस्रों नर-नारियोंने उनका दर्शन एवं पूजन किया। रास्ते भर प्रसाद बँटता रहा। उनके हाथसे थोड़ा प्रसाद भी बहुत होजाता था। कहते हैं, उन्हें अन्नपूर्णा सिद्ध थी। एकबार उनसे एक महात्माने पूछा था, "महाराज! आपतो महापुरुष हैं, परमहंस हैं, यह प्रसाद बाँटनेका झंझट क्यों करते हैं?" आपने मुस्कराकर कहा, "मुझे आदत पड़ गयी है।"

एकबार गवर्नमैन्टकी ओरसे मुझपर मुकदमा चलाया गया। यद्यपि उसमें मेरी ओरसे कोई ग़लती नहीं हुई थी। परन्तु लोगोंका अनुमान था कि उस मुकदमेसे मेरा बचना कठिन है। किसीने वृन्दावनमें बाबासे इस मुकदमेकी चर्चा की। मैं उस समय वहाँ उपस्थित नहीं था। पर बाबाने कहा, "इसमें पण्डितजीकी कोई ग़लती नहीं है, वे छूट जायँगे।" बाबाके वचन सत्य हुए और हाईकोर्टसे मेरे अनुकूल निर्णय हुआ।
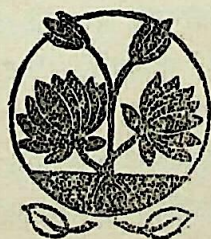
श्रीविपिनचन्द्र मिश्र एडवोकेट, दिल्ली

प्रथम परिचय

जाति, कुल, संस्कार और संगके कारण पौगण्डावस्थासे ही मेरे आध्यात्मिक संस्कार थे। कम खाता, भजन करता तथा गीता और कल्याण पढ़ा करता था। 'कल्याण' में छपे पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबा-जीके उपदेशोंका चित्तपर ठोस प्रभाव पड़ता था और उनके दर्शनोंकी लालसा होती थी। सन् १६३१ के दिसम्बर मासकी बात है, पं० श्रीलालजीने मुझे सूचना दी कि बाबा दिल्ली पधारे हैं, दर्शन करने चलो। मैंने कहा, "पहले आप पूछ लीजिये कि बाबा मुझे दर्शन देंगे या नहीं?" उन्होंने पूछा तो बाबाने कहा, "अरे वह बालक तो संस्कारी है, उसे बुला लाओ।" मुझे बड़ी उत्सुकता हुई और मैं मध्याह्नके दो बजे श्रीयमुनातटपर कुदसियाघाट पहुँचा। थोड़ी देरमें ही एक पतली-सी चादर ओढ़े, चरण धूलिसे सने हुए, दो-तीन भक्तोंसे घिरे मस्तीसे चलते हुए बाबा दृष्टिगोचर हुए। उनके दर्शन करके आदर और श्रद्धासे स्वाभाविक ही मस्तक झुक गया। फिर वे मुझे एकान्तमें ले गये और बातचीत की। मुझसे बोले, "क्या करता है?" मैंने कहा, "मैं कुछ नहीं जानता, आप ही बतलाइये मैं क्या करता हूँ और आगे क्या करूँ?" वे बोले, "बेटा! सब आपही ठीक हो जायगा। चिन्ता मत कर।" फिर मेरा इष्ट और मन्त्र निश्चित् किया, श्रीमद्भागवत एकादशस्कन्धके चौदहवें अध्यायके अनुसार ध्यान करनेकी प्रणाली बतायी, जो साधकको भक्तिसे ज्ञानकी ओर ले जाती है और उपनिषद् पढ़नेकी आज्ञा दी। इसके सिवा 'शरीर

मैं नहीं, मेरा है' यह समझाया और कहा कि यदि तुम अभी साधु बनकर भिक्षान्न खाओगे तो तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी। इसपर मैंने तर्क किया कि मुझे तो माँगकर ही खाना पड़ता है, चाहे माँ-बापसे माँगूँ, चाहे सास-ससुरसे, क्योंकि उसके बदलेमें मैं उनकी कोई सेवा तो करता नहीं हूँ। तब वे बोले, "बेटा ! भजन करना ही सबसे बड़ा कार्य है। जो भजन करता है, उसे रोटी प्राप्त करनेका सहज अधिकार है। फिर भी तुम्हारे लिये जगह-जगहसे माँगनेकी अपेक्षा माँ-बापसे माँग लेना अधिक अच्छा है।

यह बाबासे मेरा प्रथम मिलन था। इसमें ही मेरी कई शंकाएँ सुलझ गयीं और मेरे कई विचार परिमार्जित होगये। उस समय जैसी मेरी बाल-बुद्धि थी, उसके अनुसार वे मुझे जटिल समस्याएँ भी बड़ी सरल रीतिसे समझा देते थे। उनके सत्संगसे मुझे बहुत लाभ हुआ।

कुछ समस्याओंके समाधान

एकबार मैंने पूछा कि योगशास्त्रमें वर्णित चक्र क्या है ? इसका रहस्य समझाइये। बाबा बोले, "बेटा ! चक्र नसोंके जोड़ हैं, उनमें चक्रोंकी भावना करली जाती है।"

ऐसे ही दूसरीबार पूछा, "ब्रह्मचर्यकी महिमा कहने और सुननेमें बहुत आती है। परन्तु अनुभव तो ऐसा है कि इसके खण्डन द्वारा प्रत्यक्ष सुख मिलता है और उसके वेगमें पढ़ी-सुनी बात बह जाती है। इसपर बाबाने कहा, "बेटा ! इस शरीरमें एक प्रकारकी गर्मी होती है। उसके निकल जानेसे सुखका अनुभव होता है। यदि चित्तका मन्थन न होने दिया जाय और किसी प्रकार कुछ महीने ब्रह्मचर्य धारण कर लिया जाय तो उसके आनन्दका अनुभव ब्रह्मचर्य-खण्डनके

सुखसे कहीं बढ़कर होगा और उससे ब्रह्मचर्यकी महिमा भी ठीक-ठीक हृदयंगम हो जायगी।"

एकबार मैंने बाबासे प्रार्थनाकी कि आपके दर्शनोंके लिये बहुत बार आना मेरे लिये सम्भव नहीं है और मनमें अनेकों शंकाएँ उठती ही रहती हैं। ऐसी अवस्थामें मैं क्या करूँ ? इसपर बाबा बोले, "बेटा ! ध्यान कर लिया कर।" तबसे जब कभी मेरे मनमें कोई शंका उठती तो मैं उनका ध्यान कर लेता और ध्यानसे उठनेके पश्चात् उस शंकाका समाधान हुआ पाता तथा एक विलक्षण शान्ति और आनन्दका अनुभव होता, जिसे मैं बाबाका प्रसाद समझकर गद्गद् हो जाता। फिरतो मैंने अपने ध्यानकी प्रणालीही ऐसी बना ली कि सबसे पहले बाबाका ध्यान करता कि वे अचल गम्भीर मुद्रा में ध्यानस्थ हुए बैठे हैं और अपने हृदयमें मेरे इष्टदेवका ध्यान कर रहे हैं। इसके पश्चात् अपने इष्टदेवका ध्यान करता। इस प्रक्रिया-से मुझे अत्यन्त लाभ हुआ, क्योंकि हमारे गुरुदेव जो ध्यान करते हैं वह पूर्ण होगा। उसके अन्दर मेरे हृदयकी दुर्बलताओं और विक्षेपों-के लिये स्थान नहीं हो सकता। इसके सिवा गुरुदेवका तो मुझे साक्षात् दर्शन होता था, अतः उनका ध्यान भी गहरा होता था। और जब वे मेरे इष्टदेवका ध्यान करते हैं—ऐसा चिन्तन किया जाता तो इष्टदेवका ध्यान भी गहरा हो जाता था। आगे चलकर बाबाने मेरी इस ध्यानप्रणालीका समर्थन किया और इसे मेरे लिये श्रेष्ठ बतलाया।

बाबा क्या थे ?

बाबा क्या थे—यह हम क्या कह सकते हैं ? बाबा ज्ञेय नहीं थे, ज्ञान थे। इसलिये प्रत्येक द्रष्टाकी दृष्टिके अनुसार प्रतिभासित होते थे। वस्तुतः वे चलते-फिरते स्वयंप्रकाश ब्रह्म थे। उनमें सभी

गुण और सभी भावोंका आरोप किया जा सकता था। भिन्न-भिन्न व्यक्ति उनसे भिन्न-भिन्न भाव और सम्बन्ध जोड़ते थे और वे महा-पुरुष उन सभीकी पुष्टि कर देते थे तथा जीवनपर्यन्त निभाते रहते थे। वे सत्तासामान्यमें व्यवहार करते थे और सभी क्रिया एवं भावोंको बिना किसी आग्रहके प्रकाशित करते थे। सभामें श्रेष्ठ आसनपर बैठते थे, पूजाभी स्वीकार करते थे और दूसरे ही क्षण सेवा-कार्य करते भी देखे जाते थे। कभी अत्यन्त शान्त, गम्भीर और श्रेष्ठतम् भूमिकामें समाधिस्थ प्रतीत होते थे और कभी दूसरोंकी नकल करके मनोरञ्जन भी करते थे। कभी शौच होने जाते और वापिस न लौट कर बिना कुछ सामान साथ लिये अन्यत्र चले जाते। पीछे भक्तजन जहाँ-तहाँ ढूँढ़ते फिरते। कभी रोटी बाँटते रहते और छोटे-बड़े सभी व्यक्तियोंके ठहरने और खानेका प्रबन्ध करते तथा एक-एकको खातिरदारीमें लगे रहते थे। कामिनी-काञ्चनसे सदा दूर रहते, परन्तु किसी भाग्यशालिनीसे पदपंकजकी सेवा भी करा लेते और किसीसे कहते कि अबके तुमने इतना रुपया पैदा किया पर हमारे भेंट कुछ नहीं किया। वे किसी भी व्यक्ति या परिस्थितिका आवाहन नहीं करते थे, परन्तु आये हुए व्यक्तियोंको घरवालोंके समान प्रेमसे रोकते और उनके चित्तपर अपने स्नेहकी गहरी छाप लगा देते थे। वे प्रत्येक परिस्थितिका बड़ी मस्ती और वीरतासे सामना करते थे।

बाबा विरुद्ध धर्माश्रय थे, जो ईश्वरका ही गुण है। यह उनके प्रत्येक वचन और कार्यसे प्रगट होता था। दो भक्तों द्वारा लाये हुए चाय और मौसमीके रसको वे तुरन्त पी जाते थे। यह कभी नहीं कहते कि यह हमको अनुकूल या प्रतिकूल होगा। यदि कोई चोरी करता हुआ पकड़ा जाता तो पकड़ने वालेसे कहते, "तुम बड़े होशि-

यार हो, सेवामें ऐसी ही सावधानी रखनी चाहिये ।" और जब चोर सामने लाया जाता तो कहते, "यह हमारा बेटा है, इससे कुछ मत कहना ।" फिर उसे प्रसाद और रुपया दिलवा देते ।

बाबाकी दृष्टिमें कोई बात छोटी या बड़ी, अनुकूल या प्रतिकूल नहीं थी । उन्हें किसी बातका आग्रह नहीं था । केवल भक्तवत्सलता-से ही उनका दिनभरका व्यापार होता था । उनकी दृष्टि अत्यन्त पैनी थी । परन्तु वे दया और उदारतासे लोगोंके अवगुणोंकी उपेक्षा कर देते थे । उपदेश सर्वदा प्रश्नकर्त्ताकी भूमिकासे ऊँचे उठकर देते थे । शास्त्र, अनुभव और तर्कसम्मत उत्तर विलक्षण रीतिसे देना उनका स्वभाव था । कोई ब्रह्मज्ञानकी बात विशेष करता तो उसे अभ्यासकी शिक्षा देते और कोई अभ्यासमें बहुत लगा रहता तो उसे मस्तीका सिद्धान्त सुनाते । कहते कि यदि कोई एकबार भी लाटसाहबसे हाथ मिला लेता है तो उसे जीवनभर तथा उसके पुत्र-पौत्रोंको भी उसका अहंकार और गौरव बना रहता है । तुम लोग कैसे हो कि आज प्रातःकाल ही भगवान्के नाम और रूपके दर्शन करके आये हो और अभीएक घंटे में ही पिटी-सी सूरत हो गयी । एक दिन-रात भी उसकी मस्ती नहीं रही ।

वे सन्तानोत्पत्तिके लिये श्रीशङ्करजीकी पूजा और सोमवारका व्रत बतलाया करते थे । अपने प्रेमियोंके पूजाके आसनपर बैठकर उनके इष्ट और अपने फोटोको अपने ही हाथसे भोग लगा देते थे । ऐसा कोई व्यक्ति न होगा जो एकबार उनके सम्पर्कमें आया हो और उसके हृदयपर उनके उपदेश एवं प्रेमकी कुछ भी छाप न पड़ी हो । श्रीमहाराजजी हमारे मनकी बात बिना कहे ही जान गये हैं और उसके अनुसार उन्होंने पहले हीसे कार्य कर दिया है—इस प्रकारके

चमत्कार जिसे अनुभव न हुए हों ऐसा शायद ही कोई बाबाका परिचित निकले ।

उपसंहार

एकबार श्रीमहाराजजीने अपने देह-त्यागकी बात व्यक्तकी और उससे मैं दुःखी हुआ तो उन्होंने कहा, "बेटा ! मैं तो नित्य हूँ और नित्य तुम्हारे पास हूँ । यह शरीर तो न कभी नित्य था और न है । तुम्हारे अन्तःकरण में मेरा जो शरीर है उससे कभी तुम्हारा वियोग नहीं होगा ।

श्रीमहाराजजीका वन्दनीय विग्रह आज हमारे दृष्टिगोचर नहीं है; परन्तु अब वह बाहरकी अपेक्षा अन्तरम होगया है और अब वे हमारे अधिक निकट हैं । उनसे निरावरण मिलनका देश-कालावाधित संयोग हम सबको प्राप्त है । ऐसे श्रीमहाराजजी, जो प्रसन्नता और कृपाकी मूर्ति थे, हमें दया करके यह आशीर्वाद दें कि हम उनकी कृपाका अनुभव करनेके योग्य हो सकें और अपना परम पुरुषार्थ प्राप्त करें ।

पं० श्रीशङ्करदेवजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली

प्रथम दर्शन

श्रीमहाराजजीकी ख्याति सर्वत्र फैली हुई थी। मैंने भी सुन रखाथा कि श्रीउड़ियाबाबाजी एक उच्चकोटिके महात्मा हैं। सन् १९२७ की बात है। मैं उस समय अपने गाँव भटवारामें ही रहता था। मैंने सुना कि श्रीउड़ियाबाबाजी खुरजा पधारे हैं। भटवाराके रईस सेठ बाबूलालजी बोले, "चलें, बाबाके दर्शन कर आवें और उनसे गाँवमें आनेके लिये प्रार्थना भी कर आवें।" ऐसा विचारकर हम-लोग खुरजा पहुँचे। उस समय श्रीमहाराजजी सूरजमल जटियाके बागमें ठहरे हुए थे। सारे शहरमें उनकी उपस्थितिकी एक लहर-सी फैली हुई थी। सैकड़ों मनुष्योंकी भीड़ उनके पास लगी हुई थी। महाराजजी सभीको मुक्तहस्तसे प्रसाद वितरणकर रहे थे। उनका दर्शन करके चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। बाबूलालजीने गाँवमें आनेके लिये प्रार्थनाकी और श्रीमहाराजजीने अपनी स्वीकृति दे दी। उसके चार दिनोंबाद आप भटवारा पहुँच गये। उस समय आपके पास एक चादरा, एक कटिवस्त्र और एक तूँबा ही था।

रात्रिमें आप सेठ बाबूलालजीके गंगामन्दिरमें शयन कर रहे थे, मैं चरणसेवा कर रहा था। उसी समय मेरे मनमें संकल्प उठा कि श्रीमहाराजजी तो एक खज़ाना हैं। मैं अपनी अनिश्चित् वृत्तिके कारण चिन्तित था ही। अतः सोचा कि इस विषयमें कुछ पूछना चाहिये। परन्तु पूछनेका साहस नहीं होता था। इतनेमें श्रीमहाराजजी बोल उठे, "अरे पण्डित ! तू कुछ भजन आदि करता है या नहीं ?" मैंने

कहा, 'महाराजजी ! कभी-कभी भगवतीका पाठ कर लेता हूँ।" आप कहने लगे, "कभी-कभी क्यों ? भगवान्‌का नाम 'नियमो यमः' है, अतः नियमसे भजन करना चाहिये। इसके सिवा तुम 'विद्या समस्ता तव देवि भेदाः' आदि श्लोकोंसे दारिद्रय-भयहारिणी श्रीदुर्गाका स्तवन भी किया करो।" तबसे मैं नित्यप्रति दुर्गासप्तशतीका पाठ करने लगा। वह पाठ कई वर्षोंतक चालू रहा। मेरे मनमें आया कि मैं श्रीमहाराजजीसे भगवतीकी दीक्षा लूँ। इसी संकल्पसे मैं रामघाट गया और उनसे दीक्षाके लिये प्रार्थना की। आप बोले, "भैया ! मैंने तो सब त्याग दिया है। अब मुझे दीक्षा देनेका अधिकार नहीं है। यदि कोई अच्छा पण्डित मिलेगा तो बताऊँगा।" फिर बोले, "तुम दीक्षा ही समझो और निरन्तर पाठ किये जाओ।"

स्त्रीकी बीमारी

एकबार मेरी सहधर्मिणी अत्यन्त रोगग्रस्त हो गयी। मैं कर्णवास श्रीमहाराजजीके पास पहुँचा। आप बोले, "कहो, क्या बात है ?" मैंने स्त्रीकी बीमारीका समाचार सुनाया। आपने बताया—"भगवतीके नामका एक घट स्थापित करो और नित्यप्रति उसका दर्शन कर लिया करो। जब स्त्री अच्छी हो जाय तब भगवतीके सत्ताईस पाठ करा देना।" मैंने लौटकर जैसे ही यह प्रयोग किया कि स्त्री अच्छी हो गयी। कुछ दिनों बाद वह दिल्ली लौट आयी और फिर बीमार पड़ गयी। मैंने रात्रिमें स्वप्न देखा और उसने भी प्रातःकाल कहा कि मुझे खुरजा जाकर भगवतीका दर्शन करना चाहिये। उसने जैसे ही वहाँ पहुँचकर घटके दर्शन किये, वह पुनः स्वस्थताका अनुभव करने लगी। उसके पश्चात् मैंने श्रीमहाराजजीकी आज्ञानुसार पं० रामवल्लभजीके द्वारा खुरजामें भगवतीके सत्ताईस

पाठोंका अनुष्ठान कराया।

पुत्रीका पाणिग्रहणसंस्कार

सन् १९४५ ई० की बात है, मेरी लड़की विवाहके योग्य हो गयी थी। मैं आगरेके सुप्रसिद्ध वैद्य पं० रामधनजीके पुत्रके साथ उसका सम्बन्ध निश्चय करके वृन्दावन श्रीमहाराजजीके पास आया। उन्हें लड़कीके सम्बन्धकी बात सुनाते हुए मैंने कहा, "महाराजजी! इतने बड़े घरसे सम्बन्ध स्थिर हुआ है, कैसे होगा?" आप बोले, "घबरानेकी कोई बात नहीं, तुम सम्बन्ध करलो।" इसके पश्चात् सम्बन्ध तथा विवाहकी तिथि निश्चित् करके मैं पुनः श्रीमहाराजजीके पास गया और उन्हें बतलाया कि चैत्र शु० पूर्णिमाका विवाह निश्चित् हुआ है, आप किस तिथिको विवाहमें पधारेंगे? इसपर आप हँसकर बोले, "मैं भी आजाऊँगा। तुम भोजन-भण्डारमें घीका दीपक जला देना और नित्यप्रति एक पाठ अन्नपूर्णाका करा देना।" फिर मुझे टिकट देकर विदा कर दिया।

मैंने विवाहका आयोजन दिल्लीकी एक धर्मशालामें किया। नवरात्रिको ही मैं उस धर्मशालामें पहुँच गया और वहाँसे लड़कीकी लग्नपत्रिका भेजो। श्रीमहाराजजीकी आज्ञानुसार एक कमरेमें भगवतीकी स्थापना करके पाठ आरम्भ करा दिया। नित्यप्रति अन्न-पूर्णाका एक पाठ करा देता था। उसका परिणाम यह हुआ कि चारों ओरसे आशातीत न्योतेके रुपये आने लगे। मेरे रुपये जिनके पास बाकी थे और जिनसे रुपया मिलनेमें भी सन्देह था, वे लोग भी स्वयं आकर रुपये देने लगे। मैं तो समझता था कि लड़कीके विवाहमें खर्च-ही-खर्च करना पड़ता है। परन्तु इस समय तो रुपयोंकी वर्षा-सी होने लगी। जब विवाह समाप्त हुआ तो देखा कि जितने

रुपये मैं विवाहके लिये लेकर आया था, उससे सवाये मेरे पास हैं। सभी बराती पूर्णतया सन्तुष्ट रहे। समधी पं० रामधनजीने मुझसे कहा, "पण्डितजी! जो स्वाद मन्दिरके भगवत्प्रसादीय पेड़ेके एक कणमें आता है वही आपके सम्पूर्ण पत्तलमें आया।" बराती, घराती और महात्माजनोंको भोजन करा चुकनेके बाद भी घी, आटा, चीनी और शाक आदि सामान इतना बचा कि जो भी देखता वही आश्चर्य करता था। वह सब श्रीमहाराजजीके विवाहमें पधारनेका प्रत्यक्ष प्रमाण था।

मेरी बीमारी

मुझे एकबार भगन्दरकी बीमारी हो गयी थी। मैं चार वर्ष इस रोगसे पीड़ित रहा। वेदना और घबराहटके कारण मेरी आँखोंसे नींद उड़ गयी थी। मैं अहर्निश मछलीकी भाँति तड़पा करता था। ऐसी अवस्थामें मैं श्रीमहाराजजीकी शरणमें आया और उन्हें अपना सारा हाल सुनाया। आप बोले, "घबरानेकी कोई बात नहीं है। 'भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते।' भगवान् सब ठीक करते हैं। तुम दुर्गासप्तशतीके चतुर्थ अध्यायका पाठ किया करो।" मैंने ऐसा ही किया और श्रीमहाराजजीकी कृपासे इस कठिन रोगसे मुक्त हो गया। घरवाले तो मेरे जीवनसे भी निराश हो बैठे थे।

मैं सन् १९२७ ई० में श्रीमहाराजजीकी शरणमें आया था। तबसे जबतक उनका शरीर इस धराधाममें रहा, मैं ऐसे रहता था जैसे एक अबोध शिशु अपनी माँके अञ्चलमें पहुँचकर निश्चिन्त हो जाता है। जब कभी मैं किसी सांसारिक व्यथासे पोडित होता श्रीमहाराजजीके पास पहुँचकर निश्चिन्त हो जाता था। अब भी जब विकट अवसरोंपर मेरे सामने अन्धकार छा जाता है तब श्रीमहाराजजी कृपा करके प्रकाश दिखाते हैं।

श्रीॐप्रकाश गौड़, दिल्ली

प्रथम दर्शन

पूज्य श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन मुझे सात-आठ वर्षकी अवस्थामें हुआ था। और फिर समय-समयपर उनसे मिलना होताही रहा। मेरे परिवारमें पहलेसे ही महात्माओंके प्रति श्रद्धा-भक्तिका भाव रहा है। मेरे पिताजी रामघाटमें दरोगा थे और सपरिवार वहीं रहा करते थे। वहींपर एक बंगालिन माताजी भी रहती थीं। उनकी आध्यात्मिक स्थिति बहुत ऊँची थी। वे परमहंस श्रीरामकृष्णदेवकी शिष्या थीं। उनके पास हम लोग भी कभी-कभी भिक्षा ले जाया करते थे। एक दिन उन्होंने मेरी बुआजीसे कहा कि यहाँ श्रीउड़ियाबाबा नामके बड़े ऊँचे महात्मा आये हुए हैं, उनके दर्शन करो। उन्होंने हमें बाबाका थोड़ा-सा परिचय भी दिया। तदनुसार हम सबने जाकर उनके दर्शन किये।

उन दिनों श्रीमहाराजजीके पास स्त्रियाँ नहीं जाती थीं। वे हर समय मिलते भी नहीं थे। उनके मन, वाणी और शरीर संयत थे। सर्वदा बड़ी गम्भीर मुद्रामें रहते थे। सत्संगके समय शिष्टाचारका पालन होता था। हम लोग बच्चे ही थे, फिर भी तिनका तोड़ना, धरती कुरेदना मना कर देते थे। उनके भीतर जो प्रेमका स्रोत बहता था उससे हम लोग प्रभावित होगये। हमें उनके पास बैठे रहने में बड़ा आनन्द आता था। वे जिस तरह हमें बुलाते और आग्रहपूर्वक प्रसाद देते, वे सारी बातें अब याद आरही हैं। वहाँ हमारे रहते हुए दो-तीनबार महाराजजी आये। कभी-कभी उन्हें भिक्षा करानेका

भी सौभाग्य प्राप्त हुआ । महाराजजी कहते थे कि दारोगाकी भिक्षा तो सबसे पहले मैंने तुम्हारे यहाँ की है ।

कुछ काल पश्चात् पिताजी वहाँसे स्थानान्तरित होगये । उनके साथ हम लोग भी जिला हमीरपुर चले गये । वहाँ मुझे और हमारे सारे परिवारको श्रीमहाराजजीकी याद आती रही । श्रीमहाराजजी-में यह विशेषता थी कि जो एक बार उनसे मिल लेता था वह उनके प्रेममय व्यवहारके कारण उन्हें अपना सनेही समझने लगता था ।

सम्पर्क बढ़ा

इसके पश्चात् हमें पं शोभारामजी मिले । ये महाराजजीके अनन्य भक्त थे । उनका मिलन हम श्रीमहाराजजीकी कृपा ही मानते हैं । जिस समय श्रीशोभारामजी पिलानीमें पढ़ते थे उनके यहाँ एक महात्मा आये । यद्यपि तबतक महात्माओंमें इनकी विशेष श्रद्धा नहीं थी, तथापि न जाने क्यों उन महात्माजीका इनपर बड़ा प्रभाव पड़ा और ये उनकी सेवा करने लगे । जब महात्माजी भिक्षा करके लेट गये तो शोभारामजी प्रेमसे उनके चरण दबाने लगे । थोड़ी देरमें जब इन्हें तन्द्रा-सी आने लगी तो एकाएक महाराजजी चौंक पड़े और बोले, "मैं कलकत्तेसे आ रहा हूँ और शामतक बंबई पहुँचना है ।" यह सुनकर शोभारामजी बिगड़ उठे और बोले, "कमजोर तो ऐसा है कि एक धक्का दूँ तो चार लुढ़कैयें खाय और बात ऐसी बनाता है ।" तब महात्माजीने वहीं कैमरेसे एक चित्र खींचा और कहा, "यह पुरुष तेरा गुरु होगा । कार्य करता चल ।" फिर शोभरामजी-के सामने ही वह चित्र लुप्त हो गया । वह फोटो श्रीमहाराजजीसे मिलता था । शोभारामजीकी अवस्था भजनमें ऊँची थी । हम लोगों पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा और हम भी भजन करने लगे । सन्

१९३५ में शोभारामजीका पत्र आनेपर ही हमने उत्सवमें जाकर श्रीमहाराजजी, श्रीहरिबाबाजी, स्वामी श्रीशिवानन्दजी और श्रीराम-देवजी अवधूत आदि महापुरुषोंके दर्शन किये।

इस प्रकार श्रीमहाराजजीसे हमारा सम्पर्क बढ़ता गया। वे प्रायः उत्सवोंमें पत्र डालकर हमको बुलवा लेते थे। रामायण आदि भक्ति-ग्रन्थोंमें जैसी भावुकताका वर्णन है श्रीमहाराजजीकी कृपासे मुझे उसका स्वप्नमें अनुभव होने लगा। उससे मेरा हृदय उन्मत्त होकर उनके पास भागता था। मैं उनके चरणोंपर गिरकर यह समझता था कि अपने सर्वस्वको पा रहा हूँ। परन्तु महाराजजी चपत मारकर मेरी भावुकताको हटाकर कहते, "जरा ध्यान करते चलो।" मैं कहता, "आप स्वप्नमें मुझे जितने अच्छे लगते हो उतने प्रत्यक्ष होनेपर नहीं। आपकी प्रेममयता और भक्तवत्सलताका नग्न स्वरूप तो स्वप्नमें ही देखनेको मिलता है।" मेरी कठिनाइयोंको वे स्वप्नमें ही सुलझाते थे। उनकी कृपासे जागृतमें भी मुझे कुछ ऐसे तत्त्वोंका अनुभव हुआ जिन्हें साधनसे प्राप्त करना तो मेरे लिये असम्भव ही था। जैसे कभी तो ऐसा होता कि श्रीराधा-कृष्णकी छवि आँखोंसे ओझल ही नहीं होती थी और कानोंसे उनकी एकान्त प्रेमवार्ता भी सुनायी देती थी। इसका परिणाम यह होता कि हृदयमें आत्म-समर्पण करनेकी भावना जागृत होती और आनन्द हिलोरें लेने लगता। कभी स्वप्नमें जप होता रहता और आनन्दका भी अनुभव होता। कभी नेत्रोंसे अश्रुधारा बहती और हृदय द्रवी-भूत हो जाता।

उपदेश

श्रीमहाराजजीसे मुझे अनेकों उपदेश मिले। उनमेंसे कुछका

यहाँ उल्लेख किया जाता है—

विद्यार्थी जीवनमें जब मैंने उनसे प्रश्न किया कि मेरा क्या कर्त्तव्य है ? तब उन्होंने कहा था—"तुम्हें विद्याध्ययनके लिये सदैव सचेत रहना चाहिये। इस समय यही तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है। इसके लिये तुम्हें ब्रह्मचर्यका पालनकरना नितान्त आवश्यक है।" ब्रह्मचर्य-पालनके लिये उन्होंने मुझे कई नियम बताये; जैसे—स्त्री तथा स्त्री-संगियोंके संगका त्याग, सात्त्विक भोजन, मनको सदैव सत्कार्योंमें लगाये रखना इत्यादि। वे बोले, "यदि मनको सदैव सत्कर्मोंमें न लगाये रखा जाय तो वह बुरी-बुरी बातोंकी उधेड़-बुनमें लग जाता है। इससे परिणाममें अनर्थ होता है। साथ ही तुम्हें जप, ध्यान और स्वाध्यायमें भी लगे रहना चाहिये। इसकी तो विद्यार्थी जीवनमें ही नहीं, सम्पूर्ण जीवनमें ही बड़ी आवश्यकता है।" इन तीनोंकी व्याख्या आपने इस प्रकार की—

१. जप—अपने इष्टदेवके गुरुप्रदत्त नाम या मन्त्रको जपना ही 'जप' कहलाता है।

२. ध्यान—अपने इष्टदेवके रूपको सर्वदा मानस नेत्रोंसे निहारते रहना, जो कि सौन्दर्यकी राशि है, 'ध्यान' कहलाता है।

३. स्वाध्याय—अपने इष्टदेवकी लीलाओं और उनके उपदेशोंका जिन ग्रन्थोंमें वर्णन है, उन्हें पढ़ना और मनन करना ही 'स्वाध्याय' है।

इन तीनों साधनोंको करते रहनेसे भगवान्की प्राप्ति हो जाती है। और वेही समस्त प्राणियोंके चरम लक्ष्य हैं।

जब मैंने उनसे कुछ और उपदेश करनेकी प्रार्थना की तो बोले, "मैं विद्यार्थियोंको इतना ही बतलाता हूँ। उनके लिये यही पर्याप्त है।" परन्तु आगे चलकर तो मैंने अनुभव किया कि इतना उपदेश

तो सदाके लिये ही पर्याप्त है।

इसके पश्चात् जब मैं कालेजमें गया और श्रीमहाराजजीकी आज्ञानुसार जप-ध्यानादि करने लगा तो सहपाठियोंमें मेरी गिनती सीधे अर्थात् उनके अभिप्रायानुसार भोंदू या मूर्ख व्यक्तियोंमें होने लगी। मैं उन सबके कटाक्षका पात्र बन गया। मैं समय-समयपर श्रीमहाराजजीके दर्शन करने तो आता ही था। उनसे इस बातकी चर्चाकी तो वे मुझे सान्त्वना देते हुए बोले, "तू आगे चलकर जानेगा कि तुझमें और दूसरे विद्यार्थियोंमें क्या अन्तर है। मनुष्यको पथप्रदर्शक मिलनेमें पहले बहुत कठिनाई होती है। परन्तु मिल जानेपर यदि वह उनकी आज्ञानुसार कार्य करे तो जल्दी उसे सफलताके दर्शन होने लगते हैं।" उनके इस कथनसे मेरा चित्त स्वस्थ हो गया।

एक दिन मैंने श्रीमहाराजजीके सामने निवेदन किया कि मित्र-मण्डलीके साथ रहने और उनसे बातें करनेसे मनमें उद्वेग होता है तथा विवेक भी नष्ट होता जान पड़ता है। तब आपने बड़े प्रेमसे कहा, "तू चिन्ता मत कर। इधर-उधरका ध्यान छोड़कर कार्य करता चल। और सब बातें मैं स्वयं देख रहा हूँ। अज्ञानकी उत्पत्ति स्त्री, बालक, पागल और अज्ञानियोंसे ही होती है; अतः इनसे तुझे सदा दूर रहना चाहिये।"

स्वामीजीकी प्रेममयताकी बातें मैं उनके भक्तोंसे सुनता था। परन्तु ज्यों-ज्यों उनसे मेरा सम्पर्क बढ़ा त्यों-त्यों वे बातें अनुभवमें आने लगीं। वे अपने अनुभूत सिद्धांतको संक्षिप्त वाक्योंमें समझा देते थे। अधिक तर्क-वितर्कमें नहीं पड़ते थे। उनकी आज्ञाके अनुसार आचरण करनेपर साधकको उसकी वास्तविकताका स्वयं पता लग जाता था। साधनकालमें यदि हृदयमें शंकाएँ उठतीं तो वे साथके-

साथ ही उन्हें निवृत्त कर देते थे। कभी-कभी वे ऐसा कहकर सान्त्वना दिया करते थे—"मैंने जो कुछ बतलाया है, उसे करता चल। मैं तुझे भटकने नहीं दूँगा। गुरुकी प्राप्ति आधी भगवत्प्राप्ति है। वह तो तुझे है ही, अतः अब तू जितना करेगा उतना ही तेरा रास्ता कम होगा।"

उनकी गुणगरिमा

श्रीमहाराजजीमें अनन्त गुण थे। मेरे हृदयपर सबसे अधिक छाप इस बातकी पड़ी कि वे प्रेममय थे। उनके इस गुणका प्रभाव सभीपर पड़ता था, चाहे वह नवागत हो अथवा बहुत दिनोंसे आता हो। वे जिस किसीसे एक बार मिले वह उन्हें सदा याद करता रहा। इसे हमारे साथी श्रीस्वामीजीकी मोहिनी सिद्धि कहा करते थे। वे दूसरेका कष्ट नहीं देख सकते थे। उनके मुखसे कठोर शब्द तो क्या, कठोर दृष्टि भी किसीने नहीं देखी। उनका स्वभाव सरल और नम्र था। इससे उनकी महत्ताको देखते हुए आश्चर्य होता था। कभी-कभी मैं सोचता था—श्रीमहाराजजी स्वयं कृतार्थ होते हुए भी इतना कार्य क्यों किया करते हैं? इसके उत्तरमें उनका यह कथन याद आता था—'शीघ्रता करो, अब अधिक नहीं रहना है।' इससे अब अनुभव होता है कि वे दीनवत्सल हमारे लिये ही रात-दिन एक करके कार्यमें लगे रहते थे। हमें उनका कितना सहारा था। हमारे हितके लिये हमारे अवगुणोंको सहन करते हुए वे कितने सचेष्ट रहते थे—यह याद करके हृदय विह्वल हो जाता है।

श्रीबारूमलजी, दिल्ली

(१)

दिल्लीनिवासी श्रीआत्मारामजी खेमका ऋषिकेशमें श्रीमहाराज-जीका दर्शन कर चुके थे। लोगोंके मुखसे भी मैंने उनकी बहुत प्रशंसा सुन रखी थी। अतः एकबार श्रीआत्मारामजीके साथ कर्णवास जा कर मैंने उनके दर्शन किये। उस समय सिद्धासनसे स्थिर दृष्टि बैठे हुए श्रीमहाराजजी मूर्तिमान् वैराग्य ही जान पड़ते थे। उस यात्रामें सबसे पहले आपके मुखसे सत्संगकी बात सुननेको मिली वह यह थी—'(१) ध्यानरहित जप, (१) ध्यानसहित जप, (३) जपसहित ध्यान (४) जपरहित ध्यान—ये साधनके चार सोपान हैं।' इस पर श्रीआत्मारामजीने पूछा—"महाराजजी ? जपरहित ध्यान ?" आप बोले, "हाँ, ध्यानकी एक ऐसी स्थिति भी होती है जिसमें जप छूट जाता है और मन एकदम ध्यानमें डूब जाता है।"

उस समय यद्यपि मुझे केवल दो ही दिनोंके सत्संगका सौभाग्य प्राप्त हुआ था तथापि उतनेसे ही मेरे हृदयपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दिल्ली लौटनेपर मनमें उपरामता आ गयी और भगवत्भजनमें रुचि हो गयी।

श्रीमहाराजजीमें अनेकों महान् गुण थे। मैंने उनमें एक विशेष गुण यह देखा कि भक्तोंपर उनका प्यार माता-पितासे भी बढ़कर था। उनके पास कोई व्यक्ति कितना भी जलते हुए हृदयसे आता, उसे आते ही शान्ति मिलती थी। उनमें करुणा बहुत थी। जिसपर कृपादृष्टि करते थे उसे खींचकर भगवद्भिमुख कर देते थे। आपका

मुख्य उपदेश था—(१) अखण्ड भगवत्स्मृति, (२) सहनशक्ति, (३) निरिच्छा और प्रभु जैसे रखें उसीमें प्रसन्न रहना।

(२)

एक बार बाबा खुरजामें सेठ सूरजमलके बागमें ठहरे हुए थे। एकदिन कीर्तन करते-करते मैं रोने लगा। आप बोले, "जा, सो जा।" मैं जाकर सो गया। स्वप्नमें देखता हूँ कि एक बौने साधु लेटे हुए हैं और उनके हृदयकी गतिके साथ अखण्ड जप चल रहा है। मैंने 'महाराजजी ! महाराजजी !' ऐसा दो-तीन बार सम्बोधन किया। परन्तु वे कुछ भी न बोले। निरन्तर जपमें ही लगे रहे। दूसरे दिन बारह बजे जब मैंने श्रीमहाराजजीका दर्शन किया तो उनके हृदयकी गतिको भी वैसे ही चलते देखा इससे मुझे अखण्ड नामजपकी प्रेरणा मिली।

(३)

सन् १९३२ ई० के लगभग बाबा दिल्ली पधारे। उनके सत्संग और उपदेशसे मेरे हृदयमें वैराग्य हुआ और मुझे घर-बार छोड़कर वृन्दावनमें रहते हुए भजन करनेकी इच्छा हुई। मैं अपनी स्त्रीसे 'माँ' कहकर महाराजजीके पास चला आया और घर जाना छोड़ दिया। कई दिनों बाद मेरी स्त्री श्रीमहाराजजीके पास गयी और उनकी चादरका पल्ला पकड़कर बोली, "महात्मा लोग किसी का घर उजाड़ते हैं या बसाते हैं ?" महाराजजीकी समझमें उसकी बात न आयी। उन्होंने औरोंसे पूछा कि वह क्या कह रही है ? तब लोगोंने मेरे 'माँ' कहने और घर छोड़कर वहीं रहनेकी बात बताई। महाराजजीने मुझे बुलाया और कहा, "मेरी आज्ञा है कि तुम तीन वर्षतक स्त्री-पुरुष भावसे ही घर में रहो।" मैंने कहा, "महाराजजी !

मैं तो इससे माँ कह चुका हूँ।" आप बोले, "इस पापका भागी मैं हूँ, मेरी बात मानो।"

अब मुझे घर जाना पड़ा। इसका और तो जो कुछ परिणाम हुआ-सो-हुआ, परन्तु लोगोंको मेरे वैराग्यपर बड़ा मजा आया। पीछे कई वर्षोंतक मेरी हँसी होती रही। महाराजजी भी पन्द्रह वर्षों तक कभी-कभी याद दिलाते रहते थे। अब कितने तीन वर्ष बीत गये? मैं तोजहाँ-का-तहाँ ही हूँ। अन्तमें लीला संवरण करनेके पन्द्रह दिन पूर्व वृन्दावनमें कुटीकी छतपर श्रीमहाराजजीने कहा था, "बेटा! विश्वास कर, मैं तुझे अपना ही मानता हूँ। मैं जो कहता हूँ वही करना, तुम साधु मत बनना, साधु स्वभाव बनना। यदि तुम कहो कि मेरे परिकरमें तो कई साधु हो गये हैं, तो बेटा मैं इनसे प्रसन्न नहीं हूँ ये व्यर्थ समय बहुत खोते हैं। भजन तो कोई शूरमा ही करता है। तुम कह देना कि बाबाका यह ऐलान है कि साधु नहीं बनना, साधु स्वभाव बनना।"

ऐसी श्रीमहाराजजीकी अद्भुत कृपा थी। उनके अलौकिक गुणोंका कहाँ तक वर्णन किया जाय?

श्रीपरमानन्दजी दीक्षित, दिल्ली

प्रथम दर्शन और कृपा

पूज्यपाद श्रीमहाराजजी सन् १६३१ ई० के शरत्कालमें दिल्ली पधारे थे। उससे पूर्व दिल्लीके संकीर्तनमहामण्डलेश्वर पूज्य पं० ज्योतिप्रसादजीकी कृपासे मुझे अलीगढ़के उत्सवमें उनके दर्शन हो चुके थे। उस समय मेरी आयु प्राय: पन्द्रह सालकी थी। उसके पश्चात् जब आप दिल्ली पधारे और प्राय: दो मास यमुनातट कुदसिया घाटपर ठहरे तब तो दिल्लीकी जनतामें एक अपूर्व उत्साह और आध्यात्मिकी जागृत हो उठी थी। अनेकों नर-नारी तथा बालक और वृद्ध उनके दिव्य गुणोंसे प्रभावित हुए तथा अपनी-अपनी भावना और अधिकारके अनुसार उन्हें अपने लौकिक और पारमार्थिक अभीष्टोंकी सिद्धि हुई।

उन दिनों दशरथनन्दन, शिवचरण और दीनानाथ आदि अपने साथियोंके सहित मैं भी रात्रिके आठ बजे श्रीमहाराजजीके समक्ष कीर्तनादिमें सम्मिलित होता था। एक दिन कीर्तनके अन्तमें श्रीमहाराजजीने शिवचरणसे मेरे विषयमें पूछा। शिवचरणने कहा, "महाराजजी! यह ब्राह्मणका लड़का है, परमानन्द नाम है, बिजलीका काम सीखता है। बेचारा हमारे साथ चला आता है।" इतना सुनकर श्रीमहाराजजी मेरी ओर टकटकी बाँधकर देखने लगे। वे डेढ़-दो मिनट तक देखते रहे। इससे मुझे बड़ संकोच-सा हुआ। किन्तु उनकी दृष्टि हटते ही मेरे शरीरमें रोमाञ्च होने लगा और मैं उस स्थानपर बैठा न रह सका। वहाँसे उठकर बराबरकी कोठरीमें

जा बैठा। उस समय मुझे कुछ ऐसा आवेश-सा हुआ कि आनन्दातिरेकसे मेरी आँखोंसे जल बहने लगा और मैं हिलक-हिलक कर रोने लगा।

कीर्तनके पश्चात् पदगायन होता था और उसके पश्चात् श्रीमहाराजजी बेसनके लड्डू बाँटते थे, जिन्हें नित्यप्रति श्रीआत्मारामजी खेमका और बिहारीलालजी पोद्दार अपने घरसे बनवाकर लाते थे। उस समय मुझे वहाँ न देखकर श्रीमहाराजजीने पूछा, "भैया! परमानन्द कहाँ है?" इस समय जिस कोठरीमें मैं बैठा था, उसमेंसे उठकर श्रीमुनिलालजी महाराजजीके पास पहुँचे। उन्होंने कहा, "एक लड़का तो कोठरीमें बैठा रो रहा है।" तब न जाने कौन मुझे पकड़कर श्रीमहाराजजी के पास ले गया। उन्होंने मुझे पकड़कर अपने कम्बलके भीतर अपनी गोदमें डाल लिया और मेरे शरीरपर प्यारसे हाथ फेरने लगे। उस समय मुझे जैसा आनन्द अनुभव हो रहा था वह अनिर्वचनीय है, जिह्वा उसका वर्णन नहीं कर सकती।

बस, तभीसे मेरी अवस्था कुछ पागलोंकी-सी हो गयी। अब मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। इसके ८–१० दिन पूर्व कुछ लड़कोंके कुसंगवश मैं दुर्गुणोंमें प्रवृत्त होने लगा था। जिस समय श्रीमहाराजजीने मेरे शरीरपर अपने कर-कमलोंसे स्पर्श किया, मुझे ठीक ऐसा जान पड़ता था मानो मैं शीतल जलमें डूब रहा हूँ, कोई मुझे पकड़कर भीतरकी ओर खींच रहा है। यही मुझपर पहलीबार कृपाकी दृष्टि हुई।

दिल्लीमें श्रीमहाराजजी

जब सन् १९३१ में श्रीमहाराजजी दिल्लीमें पधारे थे तो यहाँ एक हलचल-सी पड़ गयी थी। आपके दर्शन और सत्संगके लिये

आबालवृद्ध सभीमें बड़ा अपूर्व उत्साह देखनेमें आता था। स्वयं श्रीमहाराजजी भी कहा करते थे कि दिल्लीकी जनता, क्या स्त्री क्या पुरुष और क्या बालक, सभी सत्संगी हैं। अत: नीचे मैं उस समयकी आपकी दिल्लीयात्राका संक्षिप्त विवरण लिखता हूँ—

दिनचर्या—प्रात:काल साढ़े तीन बजेके लगभग आप अपने निवासस्थान किशोरीलालके घाटसे कुछ भक्तोंके सहित यमुनाकिनारे उत्तरकी ओर प्राय: एक मील नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके लिये जाते थे। वहीं सेठ आत्मारामजी खेमका, गुलराजजी, भगवानदासजी और दुलीचन्दजी आदि कई सत्संगी चार बजेके लगभग पहुँच जाते थे। उस स्थानपर यमुनाकी रेतीमें प्राय: सात बजेतक सत्संग होता था। श्रीमहाराजजी जिज्ञासुओंकी अनेकों गुत्थियाँ बड़ी सरलतासे बातकी बातमें सुलझा देते थे। उस समय आप साक्षात् शंकराचार्य अथवा शुकदेवजी ही जान पड़ते थे। अभ्यासपर सर्वदा ही आपका जोर रहता था। आपका कथन था कि केवल विचारसे भी कुछ न बनेगा और विचार न होनेपर भी केवल साधनमें लगे रहनेसे कालान्तरमें लाभकी सम्भावना है।

साढ़े सात बजे आप आसनपर लौट आते थे। यहाँ सैकड़ों नर-नारी और बालक पूजाके लिये आपकी प्रतीक्षा करते रहते थे। लोग बड़े भक्तिभावसे आपका पूजन करते और उदारतापूर्वक वह सब स्वीकार करते। उस समय आप साक्षात् नारायणस्वरूप श्री-गिरिराज गोबर्धन ही जान पड़ते थे। आपके आगे पत्र, पुष्प, फल, मेवा और मिष्ठान्नका ढेर लग जाता था। वह सब प्रसाद उसी समय वितरण कर दिया जाता था। जिसको जो वस्तु प्रिय होती वही वस्तु उसका नाम लेकर, बुलाकर प्रेमपूर्वक देते थे। लोग उनके

करकमलोंसे प्रसाद पाकर अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझते थे।

दस बजेके लगभग आप नगरमें भिक्षाके लिये पधारते थे। भिक्षा तो आपके आसनपर ही यथेष्ट आ सकती थी। किन्तु आप करुणा करके लोगोंके घर पधारते और एक-एक दिनमें पन्द्रह-बीस घरोंमें भिक्षा करनेके लिये जाते। उस समय आपमें अद्भुत वात्सल्य रसकी अनुभूति होती थी। आपकी भिक्षाचर्यासे सम्बधित एक घटनाका उल्लेख करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। एकदिन सेठ बिहारीलालजी पोद्दारके मुनीम भक्त रामशरणदासने आपको निमन्त्रित किया। निश्चित समयपर आप नंगे-सिर नंगे पैर घुटनोंतक धूलिधूसरित हुए उनके मकानपर पहुँचे। साथमें कुछ भक्तजन भी थे। वह भक्त उस मकानमें किरायेदार था। उसमें मकान-मालिक तथा और भी कई किरायेदार रहते थे। जब आप दरवाजेपर पहुँचे तो चौकीदारने आपको भीतर न घुसने दिया और बोला, "यहाँ दिनभर कंगले आते रहते हैं, मैं तुमको भीतर नहीं जाने दूँगा।" आप दरवाजेपर खड़े हो गये। रामशरणदासने चौकीदारको समझाने और आपको भीतर ले जानेका भरसक प्रयत्न किया, किन्तु उसने एक न मानी। इससे उसे बहुत दुःख हुआ। तब महाराजजीने उसे समझाया कि तू क्यों दुःखी होता है, यह इसका मकान है, इसमें मुझे ले जानेका क्यों आग्रह करता हैं। तू मुझे भिक्षा ही तो कराना चाहता है, सो ला, यहीं ले आ। मैं तेरी भिक्षा यहीं कर लूँगा। कहना न होगा कि उस भक्तने फिर दूसरे स्थानपर ले जाकर आपको भिक्षा कराई।

इस प्रकार पन्द्रह-बीस घरोंमें भिक्षा करनेके लिये कई मीलोंका चक्कर काटकर ठीक तीन बजे आसनपर पहुँचनेके लिये आप जल्दी-

जल्दी कदम बढ़ाते। उस समय मार्गमें कोई और भक्त मिल जाता और उसी समय अपने घर ले जानेका अनुरोध करता तो उससे आप कहते, "भैया! तीन बजे कुटियापर पहुँचना है, वहाँ बहुत आये बैठे होंगे। फिर भी यदि वह इस कठिनतापर ध्यान न देकर गिड़गिड़ाने लगते तो तुरन्त ही उसके साथ चल देते। फिर उसे सन्तुष्ट कर विलम्ब हो जानेके कारण ठीक समयपर पहुँचनेके लिये भागने लगते। आगे कोई और भक्त मिल जाता। परन्तु आपको भागते देखकर उसे रोकनेका साहस न होता और वह भी पीछे-पीछे भागने लगता। एक-दो फर्लांग भागनेके पश्चात् जब आप पीछे घूमकर देखते तो अपने पीछे दौड़ते हुए उस भक्तको देखकर आप पूछते, "क्यों भैया! तुम कैसे भाग रहे हो?" वह कहता, "कुछ नहीं, महाराजजी, आप कहाँ भाग रहे हैं मेरा घर भी इधर ही है।" तब आप उससे कहते, "भैया! ठीक तीन बजे कुटियापर पहुँचना है। हमको भिक्षामें देरी हो गयी।" फिर चलते जाते और कहते जाते, "भैया! किसीके पास घड़ी है, कितना बजा है? ओहो! बहुत देरी हो गयी।" इस प्रकार पन्द्रह-बीस कदम बढ़नेपर फिर मुड़कर देखते कि वह भक्त सुस्त-सा खड़ा हुआ दीनतासे आपकी ओर देख रहा है। तब खड़े होकर संकेतसे उसे बुलाते। वह बड़े वेगसे दौड़कर आपके पास आता। श्रीमहाराजजी उससे फिर पूछते, "भैया! तुम्हारा घर कहाँपर है?" वह कहता, "महाराज! यहीं पास ही है।" तब उससे बड़े स्नेहसे और प्रेमसे कहते, "भैया! हम कुदसियाघाटपर ठहरे हुए हैं, वहाँ आ जाना और हरिको अपने घरका पता लिखा देना।" वह कहता, "महाराजजी, मैं तो हरिको नहीं जानता।" तब आप कहते, "अच्छा, तू मेरे पास कल दस बजे

आ जाना, कल तेरे घर चलेंगे ।" इस प्रकार उसे सन्तुष्ट कर आप फिर भागने लगते और ठीक तीन बजकर कुछ मिनटोंपर वहाँ पहुँच जाते । उसी समय आप अपनी ऊँची चौकीपर विराज जाते और बिना किसी प्रकारका विश्राम किये लोगोंके प्रश्नोंका उत्तर देने लगते । इस प्रकार पराधीनकी-सी लीला करते हुए आप दूसरोंके सुखमें ही सुखका अनुभव करते थे ।

मध्याह्नोत्तर तीन बजेसे समागत दर्शनार्थियोंके साथ आपका प्रश्नोत्तरका क्रम चलता । आपके सत्संगमें सनातनी ही नहीं आर्य-समाजी, सिक्ख, पारसी, जैन, ईसाई सभी सम्प्रदायोंके लोग आते थे । आपका सभीके साथ समानताका व्यवहार होता था; सभी आपके समाधानसे सन्तुष्ट होकर जाते थे । कभी-कभी तो बिना पूछे ही जिज्ञासुको आपसे अपनी शंकाका समाधान मिल जाता था । मुझे तो इस समय आप साक्षात् भगवती श्रुतिके समान करुणामय, अन्त-र्यामीकी तरह सर्वज्ञ और स्वयं परब्रह्मकी तरह सच्चिदानन्दस्वरूप जान पड़ते थे । इन दिनों दिल्लीके बड़े-से-बड़े विद्वान भी आपका सत्संग करके अपनेको कृतार्थ समझते थे । महामहोपाध्याय पं० हर-नारायण शास्त्री, व्याख्यान-वाचस्पति पं० दीनदयाल शर्मा, व्याकर-णाचार्य पं० मुखराम शास्त्री तथा आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० रामचन्द्रजी देहलवी आपके पास प्रायः आते रहते थे । पं० श्रीमुख-रामजीपर तो आपका ऐसा प्रभाव पडा कि प्रायः नित्य ही आपके सत्संगमें आते रहे । इन्हीं दिनों उन्हें पुत्ररत्नकी भी प्राप्ति हुई । इससे पूर्व आपके कन्याएँ ही थीं । अतः उसके जन्मोत्सवके उपलक्ष-में आपने परिकर-सहित श्रीमहाराजजीको अपनी पाठशालामें आमं-त्रित किया और वेद-मन्त्रोंके द्वारा आपकी पूजा की । उसदिन

सबका भोजन भी वहीं हुआ।

रात्रिका समय श्रीमहाराजजीके खेल-मेल और बालभावका होता था। इस समय बालकोंकी ही प्रधानता होती थी। उनके साथ खूब बाल-क्रीड़ा होती रहती थी। खूब हंसते-हँसाते और प्रसाद लुटाते थे। लड़के भी निःसंकोच हो जाते थे तथा प्रेमसे उछल-उछल कर जोर-जोरसे गाते, कीर्तन करते और आनन्दमें विभोर हो जाते थे। कीर्तनके पश्चात् जब प्रसाद बाँटा जाता था तब दशरथनन्दन, शिवचरण, दीनानाथ, और रघुवीर आदि सभी बालक बड़े उत्साहसे 'दाता एक राम भिखारी सारी दुनियाँ' यह रटवाते थे। उस समय प्रसाद बाँटा नहीं, लुटाया जाता था। उस लूटमें बूढ़े भी बालक बन जाते थे। इस प्रकार वह सख्य-रसकी अद्भुत लीला देखने ही योग्य होती थी।

एक दिनकी बात है। श्रीमहाराजजी अपने भक्त-परिकर सहित श्रीअतुलकृष्ण गुप्त नामक एक बंगाली बाबूके यहाँ गये थे। ये सैक्रिटेरियटमें लैजिसलेटिव डिपार्टमेण्टमें आफिस-सुपरिटेण्डेण्ट थे। श्रीमहाराजजीके दिल्ली पधारनेके समय ही दर्शन हुए थे। परन्तु प्रथम दर्शनमें आपके प्रति इनकी अनन्य निष्ठा हो गई थी। जिसदिन ये मिले उसके एक दिन पहले आपके पास इनके दफ्तरका एक बाबू आया था। उसका परिचय मिलनेपर आपने उससे कहा था कि उस दफ्तरमें तो भैया हमारे एक बंगाली बाबू हैं। उसने पूछा, "महाराज! उनका क्या नाम है? मैं उन्हें आपका समाचार दे दूँगा।" तब आपने उसे ऐसा कहकर बात टाल दी कि वह आप ही आ जायेंगे। लो प्रसाद लो, जल्दी जाओ, तुम्हें दूर जाना है। दूसरे दिन ये स्वयं ही घाटपर पहुँच गये। इनके गुरुदेव स्वामी शिवानन्द-

जीने पहले ही कह रखा था कि तुम्हें यमुना तटपर एक महात्मा मिलेंगे। उनका दर्शन करनेपर तुम्हें किसी महात्मासे मिलनेकी इच्छा नहीं रहेगी। अतः छुट्टीके दिन ये सर्वदा यमुना तटपर घूमनेके लिये जाया करते थे। प्रथम दर्शनमें ही इन्हें श्रीमहाराजीके प्रति अपूर्व आकर्षणका अनुभव हुआ और आपने भी मिलते ही इनसे कहा, "अच्छा, बाबूजी तुम आगये।" इस प्रकार यह 'प्रीति पुरातन लखै न कोई' वाली बात हुई। ये प्रायः नित्य ही श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ आते थे; आये बिना रह ही नहीं सकते थे।

हाँ, तो एक दिन श्रीमहाराजजी परिकर-सहित इनके यहाँ भिक्षा के लिये गये। इनकी कोठी नई दिल्लीमें घाटसे प्रायः पाँच मील दूर थी। इसलिये पहले दिन सायंकालमें लोगोंसे कह दिया कि कल मुझे बंगाली बाबूके यहाँ जाना है, वहाँ न जाने कितना समय लग जाय, अतः कल कोई आना मत। वहाँसे आप सूर्यास्तके पश्चात् लौटे। उस दिन सेठ आत्माराम और बिहारीलालजी भी नहीं आये। अतः नित्य जो बेसनके लड्डुओंका प्रसाद आता था, आज नहीं आया। हम बालक लोग तो नित्य नियमके अनुसार पहुँच ही गये। प्रायः डेढ़ घंटे कीर्तन होता रहा। आप उस दिन नेत्र बन्द किये सिद्धासनसे बैठे रहे, कुछ बोले नहीं। दशरथनन्दनने पदगान किया। तब भी आप चुपचाप नेत्र बन्द किये ही बैठे रहे। आपको इस प्रकार चुपचाप देखकर सब बालक रोने लगे और देर तक रोते रहे। तब आप बोले, "क्यों रे! क्या बात है? बेटा! रोते क्यों हो? आज तो आत्माराम भी नहीं आये। आज तुम्हें प्रसाद कहाँसे दें। अच्छा, लो, यह एक सेव रखा है, इसीमेंसे सब ले लो।" वह सेव किसी एकके ही हाथ पड़ गया। फिर आपने पीछे हाथ डालकर

एक सेव और निकाला। तब तो हम हम सभी कहने लगे, 'महाराजजी ! मुझे भी, मुझे भी।" बस, आप पीछेसे निकाल-निकालकर सबको देने लगे दशरथनन्दन और दीनानाथने अपने हाथसे पीछे टटोलकर देखा तो उनके हाथ कुछ न लगा। किन्तु आपने सभीको एक-एक सेव दिया।

प्रभाव और गुण

श्रीमहाराजजी जब दिल्ली पधारे तो यहांकी ज़नता आपके दर्शनोंसे ऐसी प्रभावित हुई कि साधकोंकी तो बात ही क्या साधारण संसारी लोग भी यदि आपके पास जाते थे तो वे आपसे परमार्थ-सम्बन्धी प्रश्न ही करते थे। स्वार्थियोंको भी अपने स्वार्थके विषयमें कोई प्रश्न करनेका साहस नहीं होता था। माताएँ पूछतीं, "महाराजजी ! महामन्त्रका जप किस प्रकार करना चाहिए ? उसकी कितनी मालाएँ की जायँ ?" कोई पूछती, "बाबा ! माला चन्दनकी रखनी चाहिए या तुलसीकी ?" कोई प्रश्न करती, "महाराजजी ! नित्य-नियमसे किस पुस्तकका पाठ करना चाहिए ?" कोई कहती, "बाबा ! स्त्रियोंका प्रधान धर्म क्या है ?" इत्यादि। इसी प्रकार दस-दस, बारह-बारह वर्षके बालक और बालिकाएँ भी आपसे माला एवं रामायणकी पोथी माँगते थे।

दयाकी तो आप मूर्ति ही थे। सभीपर आपकी समान दयादृष्टि थी, तथापि मैंने तो यह विशेषता देखी कि जो दीन-हीन-कंगाल आपके पास जाते थे उनसे आप धनी-मानी व्यक्तियोंकी अपेक्षा अधिक प्यारसे बोलते थे। ऐसे ही व्यक्तियोंमें एक मैं भी था। मैं अत्यन्त निर्धन, निरक्षर और भजनविहीन बालक था, किसी भी प्रकार उनकी कृपाका अधिकारी नहीं था। किन्तु कितनी थी इस अयोग्य-पर उनकी करुणा। रात्रिके चार घंटे छोड़कर और हर समय

आपके पास सभी प्रकारके व्यक्तियोंकी भीड़ लगी रहती थी। रात्रि-में आठ बजे सेठ आत्मारामजी खेमका और बिहारीलालजी पोद्दार आकर आपके चरणोंमें बैठते और प्रेमसे चरण दबाते रहते थे। दोनों ही सज्जन बड़े ऊंचे सत्संगी, वयोवृद्ध और धनसम्पन्न थे। तथापि जब आप मुझे देखते तो अपने पास बुला लेते और इन दोनों से चरण छुड़ाकर बड़े प्रेमसे यह कहते हुए कि 'आत्माराम भैया ! नेक पीछे हो जाना' मुझे अपने चरणोंमें बिठाकर ऊपरसे अपना कम्बल उढ़ा लेते। उन दिनों शीत अधिक थी, मेरे पास गरीबीके कारण कोई विशेष वस्त्र भी नहीं रहता था। परन्तु जब आपके चरणोंमें बैठ जाता तो मुझे बिलकुल ठंड नहीं लगती थी। मैं बालक था, इसलिये उस समय मुझे इन बातोंका महत्व समझनेकी योग्यता नहीं थी। बस, आपके चरणोंमें मुझे एक विलक्षण आनन्द ही आनन्दका अनुभव होता था।

अद्भुत न्याय

एक दिन आप सवेरे दस बजेके लगभग भिक्षाके लिये चलने लगे तो एक स्त्री और बालकने आकर आपका आँचल पकड़ लिया। स्त्री बोली, "साधु तो पति देकर जाते हैं, आप कैसे साधु हैं जो मेरे पतिको यहाँ रख छोड़ा है।" यह सुनकर सब दंग रह गये। जाँच-पड़ताल की तो मालूम हुआ कि बारूमल नामका एक भक्त क्षणिक वैराग्यमें अपनी स्त्रीसे 'माँ' कहकर चला आया है और कुछ दिनोंसे यहीं रहता है। यह स्त्री उसीकी धर्मपत्नी है। तब आपने बारूमलको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम घरपर जाओ और हमारी आज्ञासे तीन वर्ष तक पति-पत्नी भावसे रहो। जब तुम्हारा लड़का काम-काज करनेके योग्य हो जाय तब देखा जायगा। बारू-मल बोला, "महाराजजी ! अब तो मैं इसे माँ कह चुका हूँ, अब

मैं इसे पत्नी रूपमें कैसे ग्रहण करूँ ?" तब आप बोले, " तू बड़ा बावला है। अरे ! यह माँ इस बालककी है और तू इसे अपनी माँ बनाता है। इसका अधिकार छीनता है। जा, इसे लेकर घर जा, इसीमें तेरा भला है, नहीं तो तुझे बहुत दण्ड भुगतना पड़ेगा। और इसे पत्नी रूपसे स्वीकार करनेमें तुझे किसी प्रकारकी पापकी आशंका हो तो उसकी जिम्मेवारी हम लेते हैं, तू निश्चिन्त रह।" आपकी यह आज्ञा सुनकर और आपके अरुण नेत्र देखकर बारूमल भयभीत होगया और 'जो आज्ञा' कह अपने घर चला गया। इस प्रकार मन्द वैराग्यके कारण उसके उजड़ते हुए घरको आपने पुनः बसा दिया। वह बारूमल आज भी घरमें ही है।

छायसामें

दिल्लीसे श्रीमहाराजजी दक्षिणकी ओर गये थे। शीतकाल था और पाला पड़ रहा था। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते चार दिनके पश्चात् मुझे यमुना तटपर छायसा नामक ग्राममें आपके दर्शन हुए। वहाँ एक भागवती पण्डित थे। उनसे एकान्तमें श्रीमद्भागवत श्रवण करनेके लिये ही आप यहाँ आये थे। मैं बिना वस्त्रादि लिये ही आपके पास पहुँच गया था। वहाँ पाँच दिन ठहरनेके पश्चात् मुझसे आपने दिल्ली लौट जानेके लिये कहा। मैं अपने चाचाजीसे बहुत डरता था, क्योंकि उनका मुझपर कड़ा नियन्त्रण रहता था। इस समय मैं उनसे बिना कुछ कहे ही चला आया था। मैंने श्रीमहाराजजीसे अपनी कठिनाई कही तो वे बोले, "बेटा ! तू जा, तुझे कोई कुछ न कहेगा।" मैं आपकी आज्ञा पाकर घर लौटा तो यह देखकर दंग रह गया कि चाचाजीने मुझसे कुछ भी नहीं पूछा और न कुछ कहा ही। इससे श्रीमहाराजजीके प्रति मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गई।

यात्रा-प्रसंग

अब मैं समय-समयपर पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ जाने लगा। उन सब प्रसंगोंको देना तो स्थानाभावके कारण सम्भव नहीं है। तथापि एक-दो प्रसंग यहाँ देकर इस लेखको समाप्त करता हूँ-

सन् १९३७ के जुलाई मासमें मैं साइकिलपर दिल्लीसे आगरा पहुँचा। किन्तु श्रीमहाराजजी उन दिनों आगरेके समीपवर्ती गाँवों में थे। मैं पता लगाकर वहीं आपसे मिला। उन दिनों पूज्य ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी भी गोरखपुरके छः मासके अखण्ड संकीर्तनकी पूर्णाहुति कर आपके साथ ही घूम रहे थे तथा करह (ग्वालियर) के सुप्रसिद्ध संत बाबा रामदासजी रामायणी भी आपके साथ ही थे। आप सब काँकर रोड और विश्रामपुर आदि गाँवों में होकर आगरे पधारे। यहाँ दो दिन ठहरकर श्रीमहाराजजी सब लोगोंको विदा करने लगे। उनमें कुछ लोग ऐसे भी थे जो साथ ही रहना चाहते थे। उन्हें आपने डाँटना प्रारम्भ किया और कहा कि मैं किसीको अपने साथ नहीं ले चलूँगा।

आपकी यह लीला देखकर मैं भयभीत-सा हो गया और इस भयसे कि कहीं मुझे भी जानेको न कहने लगें आपके सामने न पड़ा। बस, सबको विदा कर केवल तीन-चार मूर्त्तियोंको साथ ले आपने हाथरस की ओर प्रस्थान किया। कुछ आगे बढ़नेपर आगरेके एक-दो भक्त आपके लिये साग-पूड़ी बनवा कर ले आये। इस समय आपने मेरे विषयमें पूछा। मैं विदाईके भयसे अपनी साइकिलद्वारा आपसे कुछ दूर रहकर चल रहा था। तब किसीने कहा कि महाराजजी! वह कुछ दूर पेड़के नीचे बैठा है। आपने मुझे बुलानेकी आज्ञा दी तो मैं सम्मुख उपस्थित हुआ और आपने मुझे भोजन कराया।

इस स्थानपर आपने दो घंटा विश्राम किया। फिर कुछ दूर चलनेके पश्चात् मुझसे बोले, "परमा ! तू भी जा।" मैं साइकिल-पर चढ़कर आपके आगे-आगे दौड़ने लगा। तब आप बोले, "कहाँ जाता है ?" मैंने कहा, "आपकी आज्ञानुसार दिल्ली जा रहा हूँ।" महाराजजीने कहा, "तो इधर कहाँ जाता है ?" मैं बोला, "महाराजजी ! दोनों ओरसे मुझे तो दिल्ली बराबर ही जान पड़ती है। मथुरा होता हुआ आया था, अलीगढ़ होता हुआ चला जाऊँगा। दोनों ओरका मार्ग देख लूँगा।" तब श्रीमहाराजजीने मेरे गालपर एक हल्की-सी चपत लगायी और बोले, "देखो तो, हो कैसा रहा है जैसे इसकी नानी मर गयी हो।" आपकी वह प्यार-भरी चपत खाकर तो मैं निर्भय हो गया और आपके साथ ही चलने लगा।

आगरेसे प्रायः ग्यारह मीलपर एक गाँव था। वहाँ का एक व्यक्ति, जो आगरेमें अध्यापक था, सायंकालमें अपनी साइकिलपर गाँव लौट रहा था। श्रीमहाराजजी को देखकर उसने अत्यन्त विनम्र-भाव से प्रार्थना की, "भगवन् ! यह सामनेका गाँव आपका ही है। अब तो संध्याका समय हो गया है, अतः यहीं पधारें।" गाँव बहुत छोटा और निर्धन लोगोंका ही जान पड़ता था। किन्तु वह मास्टर श्रीमहाराजजी के मना करनेपर भी प्रार्थना करता ही रहा। अतः आपको उस गाँवमें जाना ही पड़ा। इस समय आपके साथ जहाँतक मुझे स्मरण है बाबू रामसहाय, पल्टूबावा, श्रीरामदासजी, खुरजेवाला कंछीमल और मैं ये पाँच व्यक्ति थे।

गाँवमें ठहरने के पश्चात् श्रीमहाराजजीने उस मास्टरसे कहा, "देखो भैया ! रोटी-वोटी कुछ मत लाना।" मास्टरने कहा, "महाराजजी ! थोड़ा-थोड़ा भोजन तो कर ही लें।" ये मास्टर

बहुत धनहीन जान पड़ते थे। तथापि इनके बहुत प्रार्थना करनेपर आप बोले, "अच्छा, दस-बारह घरोंसे एक-एक रोटी ले आना।" इसके कुछ काल पश्चात् बहुत मात्रामें दूध, रोटी आदि सामान आ गया। भोजन के पश्चात् सबने अपने-अपने आसनपर विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल चार बजे प्रस्थान किया और सड़कपर आये जो यहाँसे दो-तीन फर्लाङ्गकी दूरीपर थी। वहाँ पहुँचनेपर आपने सबकी ओर देखा तो मुझे न देखकर बोले, "परमा कहाँ है ?" तुरन्त ही कंछी उस स्थानपर भागा हुआ आया जहाँ विश्राम किया था और मुझे सोया देखकर उसने जगाकर कहा, "श्रीमहाराजजी सड़कपर खड़े हुए हैं, जल्दी चलो।" ऐसा कहकर वह श्रीमहाराजजी के पास भाग गया और मैं साइकिलपर चढ़कर आपके समक्ष उपस्थित हुआ।

श्रीमहाराजजी मेरी प्रतीक्षामें सड़कपर बैठे हुए थे। मेरे पहुँचते ही सब लोग चल दिये। श्रीरामदास बाबा के पास महाराजजीका बस्ता था। उसमें आपका चश्मा, डायरी, घड़ी और श्रीमद्भागवत आदि कई चीजें रहती थीं। चलते समय श्रीरामदासजी उसे यहीं भूल गये। प्रायः चार मील निकल जाने पर श्रीमहाराजजीने नित्य कृत्यसे निवृत्त हो अपना बस्ता माँगा। तब रामदासजी बोले, "प्रभो ! वह तो मेरे पास नहीं है।" अब बस्तेके विषयमें तरह-तरह की शंकाएँ होने लगीं। अन्तमें निश्चय हुआ कि ग्रामसे चलते समय तो बस्ता था, ये सड़कपर भूल आये हैं। श्रीमहाराजजी बोले, "जाने दो, कोई बात नहीं।" किन्तु और सबको बस्ते के लिए विशेष चिन्ता हुई, क्योंकि उसमें श्रीमहाराजजीकी बहुत आवश्यक चीजें थीं। आप तो सर्वथा निश्चिन्त थे। इससे स्पष्ट होता है कि

किसी भी वस्तुमें आपको ममता नहीं थी, अथवा सभीको अपनी समझते थे। अतः आपकी दृष्टिमें खोने या पानेमें कोई अन्तर नहीं था।

तब बाबू रामसहायजीने बहुत अनुरोध किया कि मुझे परमानन्दकी साइकिल दिला दीजिये, मैं जाकर बस्ता खोज लाऊँगा। श्रीमहाराजजीने साइकिल दिला दी। बस्ता उस स्थानपर तो नहीं मिला। उससे तीन-चार मील और आगे जानेपर एक बैलगाड़ीवाले के पास मिला। उसे दो रुपये देकर बाबूजी बस्ता ले आये। श्रीमहाराजजीकी मुखमुद्रा तो जैसी बस्ता खोनेपर थी वैसी ही पानेपर भी रही।

इसके अगले दिन श्रीमहाराजजीका हाथरसमें पदार्पण हुआ। यहाँ आप चार-पाँच दिन विराजे। इसके पश्चात् सायंकालमें आपने कर्णवासके लिये प्रस्थान किया। यहाँसे पाँच-छः मील चलकर आप सड़कके किनारे ठहर गये और बोले—"सब लोग दूर-दूर अपने आसन लगा लो, पहले भजन करो और फिर सो जाओ।" मैंने एक ओर श्रीमहाराजजीका आसन लगा दिया। आप उसपर बिराज गये और मैं श्रीचरणोंको पकड़कर पास बैठ गया। आपने मुझसे दो-तीन बार कहा, "सोता क्यों नहीं है? बेटा, सो जा।" मैं भी कहता रहा, "आप भी सोइये रातको बारह बजे के लगभग मैंने जबरदस्ती आपको पकड़कर लिटा दिया और स्वयं पास ही बैठा रहा। महाराजजीके समीप बैठनेपर मुझे निद्रा नहीं आती थी। अतः उन्हींके अंगोंपर हाथ फेरता रहा। आप अचेत-से लेटे हुए थे। जब मेरा हाथ आपकी कमरकी ओर गया तो मेरे हाथमें एक चींटा आया। इसे मैंने दूर फेंक दिया। दूसरी बार फिर एक चींटा मेरे हाथमें

आया। उसे भी मैंने आसनसे दूर फेंक दिया। तीसरी बार एक चींटा महाराजजीकी कमरसे चिपटा हुआ मिला। उसे चुटकीसे खींचकर दूर फेंक दिया। मैंने देखा वह श्रीमहाराजजीको काट रहा था, किन्तु आपको मानो इसका कुछ पता ही नहीं था। तब मैंने धीरे से आपके कानमें कहा, "महाराजजी! महाराजजी!" आप तुरन्त बोले, "हाँ, बेटा! तू सोता क्यों नहीं है?" मैंने कहा, "यहाँसे उठ जाइये।" किन्तु आपने मेरी कुछ नहीं सुनी और फिर अचेत हो गये। मैंने दूसरी बार कानमें वही बात कही तब भी आपने वही उत्तर दिया। थोड़ी देरमें मैं फिर बोला, "महाराजजी! आप यहाँसे उठ जाइये, मैं दूसरी जगह आसन लगा देता हूँ।" तब आप मुझे डाँटते हुए बोले, "तू हट जा यहाँ से।" इसके पश्चात् थोड़ी देर मैं शान्त रहा और अधिक चींटे न काटे इस विचारसे आपके सिरके नीचे अपना हाथ लगा दिया। तब आप बोले, "तू तो बेटा! बहुत तंग करता है, सोता क्यों नहीं? यहीं पर सो जा।" मैंने कहा, "महाराजजी! यहाँ चींटे हैं, वे आपको काटते हैं। आप यहाँसे उठकर दूसरी जगह लेटिये। मैं इस जगह आपका आसन नहीं रहने दूँगा।" इस प्रकार रात्रिके साढ़े तीन बज गये। जब श्रीमहाराजजीने मेरी ऐसी हठ देखी तो बोले, "बेटा, तू नहीं जानता। साधुका आसन जिस जगह लग जाता है, वहाँसे फिर नहीं हटता और यदि उठजाता है तो फिर वहाँसे चल देते हैं।"

इतना कहकर श्रीमहाराजजी आवाज लगाने लगे, "अरे रामदास, पल्टू! उठते नहीं हो। ब्राह्ममुहूर्त्त का समय है।" फिर धीरे-धीरे कहने लगे, "तुम लोग तो भैया कैसे हो? घर छोड़ा, साधु हुए और अब ब्राह्ममुहूर्त्तमें सो रहे हो! उठकर भजन-ध्यान करना चाहिये।"

श्रीमहाराजजी यह कह ही रहे थे कि सबलोग उठकर उनके पास आगये। इसके कुछ देर पश्चात् वहाँसे चल दिये। दोपहर के लगभग सड़कके किनारे एक कुएपर स्नान किया। रामदासजी श्रीमहाराजजीका शरीर मल रहे थे। उस समय उन्होंने देखा कि शरीरपर जहाँ-तहाँ लाल-लाल निशान पड़े हुए हैं। यह देखकर वे रुँधे हुए कण्ठसे कहने लगे, "प्रभु! आपके यह क्या हुआ?" महाराजजी बोले, "क्या पता? गेरो, पानी गेरो।" मैं कुएके किनारे खड़ा यह सब लीला देख रहा था और श्रीमहाराजजीकी ओर संकेतकरके हँस भी रहा था। मुझे देखकर श्रीमहाराजजी मुस्कराये। तब मैंने रामदासजीसे कहा, "पूछो, इनसे क्या हुआ है? आपको यह मालूम नहीं है। यह रात्रिकी लीला है।" रामदासजीने कहा, "प्रभु! यह परमा क्या कहता है?" आप बोले, "यह बावला है।" मैंने कहा, "रातभर तो चींटोंने काटा है, मुझे बावला बता रहे हैं। ये उसीके तो चकत्ते पड़ गये हैं।"

स्नानके पश्चात् आप आसनपर विराज गये। गाँवके लोगोंको पता चला तो वे भिक्षा लेकर आगये। सबने प्रसाद पाया और कुछ विश्राम करके चल दिये। श्रीमहाराजजीको गुरुपूर्णिमापर कर्णवास-पहुँचना था, अतः चलते ही गये। रातको बारह-एक बजेके लगभग कर्णवासके बगीचेमें पहुँच गये। यहाँ सैकड़ों भक्त प्रतीक्षा कररहे थे। दूसरे दिन बड़े उत्साहसे महाराजजीकी पूजा हुई। उसके पश्चात् मैं दिल्ली चला आया।

उदारता और वात्सल्य

वैसे तो श्रीमहाराजजीकी सभी जीवोंपर समान कृपा थी तथापि व्यावहारिक दृष्टिसे ब्राह्मण और विद्यार्थियोंसे आप विशेष स्नेह रखते थे। गंगा किनारे ब्राह्मणों और विद्यार्थियोंको तथा वृन्दावनमें

रासस्वरूपोंको आप प्रायः भोजन-वस्त्रादि देते रहते थे। आपका भोजन करानेका ढङ्ग अलौकिक था। उसमें मातासे भी अधिक स्नेह और वात्सल्य रहता था। माता तो अपने बालकोंसे मोह रखती है, परन्तु आप तो भगवत्स्वरूप समझकर भोजनादि कराते थे। एक बार आपसे किसीने प्रश्न किया कि आप कौन हैं? तो बोले, "मैं चराचरका सेवक हूँ।" चराचरका सेवक तो केवल ईश्वर ही हो सकता है। भक्तोंको भोजन कराते समय आपभी ऐसे प्रतीत होते थे मानो साक्षात् जगज्जननी माँ अन्नपूर्णा प्रकट होकर अपने बालकोंको भोजन करा रही है। भोजन कराते समय आप बहुमूल्य और मिष्टान्न आदि स्वादिष्ठ पदार्थ ही अधिक मात्रामें परोसते थे। विशेषता यह थी कि खानेवालोंमें जिसकी जैसी रुचि होती उसे वैसी ही वस्तु अधिक मिलती थी।

श्रीमहाराजजीके पास अनूपशहरका एक चौबा बहुत आया करता था। इसकी अवस्था कुछ ढल चुकी थी। मुझे इसके विषयमें ऐसा मालूम हुआ कि इसने सुल्फा और गाँजाके व्यसनमें पड़कर अपनी सब सम्पत्ति बर्बाद करदी थी। अब ये फाकेमस्त थे और बहुत कंगाली तथा मस्तीका जीवन व्यतीत करते थे। एक बार मैंने कर्णवासमें देखा कि श्रीमहाराजजीके पास कोई भक्त एक कटोरदान भरकर अनारके दाने लाये। उस समय आपके पास जो लोग खड़े हुए थे, उन्हें आप उन दानोंका प्रसाद बाँटने लगे। कुछ देरमें चौबेजी भी वहाँ आगये। बाबाने उनसे यह पूछते हुए कि तुम क्या लोगे, वह कटोरदान खोला। चौबेजी अपना कुर्त्ता फैलाकर बड़े वेगसे महाराजजीकी ओर बढ़े। आपने भी वह सारा कटोरदान उसके कुर्त्तेमें लौट दिया। उसमें एक सेरके लगभग दाने थे। इतना प्रसाद

पाकर चौबा कुछ दूरीपर जाकर प्रसन्नतासे नाचने-कूदने लगा। वहाँ कुछ आदमियोंसे वह कह रहा था, "मैंने बाबाके पास कटोरदान बन्द रखा देखा तो सोचा कि इसमें कुछ बढ़िया माल होगा और बाबा मुझे यह सब दे देंगे तो मेरी खूब तृप्ति होगी। अहाहा! बाबा कैसे अन्तर्यामी हैं।" चौबेके ये शब्द मैंने अपने कानोंसे सुने थे। इससे स्पष्ट होता है कि महाराजजी खिलाने-पिलाने में अत्यन्त उदार और वाञ्छाकल्पतरु थे।

इसी प्रकार सुखवीर नामका एक १२-१३ वर्षका लड़का कर्णवासमें अधिकतर आपके पास रहता था। यह भी अनूहशहरका ही रहनेवाला था तथा बहुत ही उद्दण्ड और पागल-सा था। यह कुत्तों-को पकड़ लाता और उनसे बच्चोंको डराता था। यह भी सुननेमें आया कि एक बार यह सर्प पकड़ लाया था और उसे श्रीमहाराज-जीके ऊपर छोड़ दिया। इस प्रकार यद्यपि वह अनेक प्रकारके उप-द्रव करता था, तो भी आप उसे खाने-पीनेको खूब देते थे। एक बार लोगोंने शिकायतकी कि यह उपद्रव बहुत करता है, इसे यहाँ रखना ठीक नहीं। उसी समय कुछ लोग अनूपशहर जानेवाले थे। आपने आज्ञा दी कि इसे बाँधकर ले जाओ। उन्होंने ऐसा ही किया और सायंकाल अनूपशहर पहुँचकर छोड़ दिया। कर्णवाससे अनूपशहर प्रायः आठ मील है। परन्तु यह दूसरे दिन सबेरे ही फिर कर्णवास पहुँच गया। श्रीमहाराजजी गंगास्नान करके लौट रहे थे। उन्हें देखकर वह खूब रोया और बोला, "महाराजजी! मैं तो आपका ही हूँ।" यह केवल कौपीन बाँधे रहता था तथा स्नान न करनेके कारण इसके शरीरपर मैलके पपड़े जमे रहते थे। उस समय तो बहुत-सी फुनसियाँ भी निकली हुई थीं। तथापि यह कुछ भी न

देखकर आपने उसे छातीसे लगा लिया। यह देखकर मैं चकित रह गया कि जिसे म्लेच्छ समझकर लोग घृणा करते हैं उसे श्रीमहाराजजी हृदयसे लगा रहे हैं। ऐसी थी आपकी उदारता।

एक बार श्रीमहाराजजी बुलन्दशहर पधारे और नालेके किनारे कन्नीमलके बगीचेमें ठहरे। आपके पधारनेसे बुलन्दशहरमें ऐसी हलचल मची कि सैकड़ोंनर-नारियोंकी भीड़ आपके पास लगी रहती थी। उसी समय बुलन्दशहर में एक अन्य सुप्रसिद्ध संत भी आये हुए थे। बाबाका इतना प्रभाव उन्हें सहन न हुआ और उनके हृदय में कुछ ईर्षाका भाव उत्पन्न हुआ। जब महाराजजी बुलन्दशहरसे अनूपशहर चले गये तो ये महात्मा एक अन्य तर्ककुशल संतको साथ ले आपसे शास्त्रार्थ करनेके संकल्पसे अनूपशहर पहुँचे। जब उन्होंने आपके सामने अपना विचार प्रकट किया तो बोले—

'सुने न काहूकी कही, कहे न अपनी बात।
नारायन वा रूपमें, मगन रहे दिन रात॥'

बस, इतना कहकर आप मौन हो गये। इन दो शब्दोंसे ही उनका शास्त्रार्थ समाप्त हो गया, क्योंकि वाद-विवाद करना तो संतका लक्षण नहीं है। यह सुनकर वे महात्मा चुपचाप अपने स्थानको लौट आये।

प्रेमपरवशता

१८ फरवरी सन् १९४७ की बात है। नाहरसिंहजी मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ वृन्दावन ले गये। इधर बहुत दिनोंसे मैं आपके पास नहीं गया था। कारण यह था कि मैं उनसे यह प्रार्थना किया करता था कि कुछ दिन मुझे आप अकेला ही अपनी यात्रामें साथ रखें। ऐसा अवसर मुझे दिया नहीं गया। इसलिये मैं उनके

पास नहीं गया। इस बार कुँवर नाहरसिंहजी मुझे जबरदस्ती ले गये। आश्रममें पहुँचनेपर भी मैं सामने न गया। कुँवर साहबने ही श्रीमहाराजजीको मेरे आनेकी सूचना दी। तत्काल आज्ञा हुई कि उसे पकड़कर हमारे पास लाओ। नाहरसिंहजी मेरा हाथ पकड़कर खींचते हुए ले गये। श्रीमहाराजजीने चौकीसे उठकर दोनों हाथोंसे मुझे पकड़ लिया और करुणाभरी दृष्टि डालकर कोमल स्वरमें कहा, "नाहरसिंह! परमा हमसे रूँठा है।" उनके ऐसे शब्द सुनकर मेरे नेत्रोंमें कुछ अश्रु आ गये। फिर आपने धीरेसे मेरे कानमें कहा, "बेटा! अब बाँधपर चलेंगे और तुझे अकेलेको ही ले चलूँगा।" यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

इसके दस दिन पश्चात् २८ फरवरीको रातके साढ़े बारह बजे-के लगभग हाथमें कमण्डलु लेकर आप कुटियासे चल दिये। मैं भी आपके पीछे हो लिया। एक-दो व्यक्ति और भी साथ चलने लगे, किन्तु उन्हें आपने डाँटकर रोक दिया। बस, आगे आप और पीछे मैं तथा नाहरसिंहजी चले। प्रायः दो फर्लांग जाकर आप बैठ गये। मैं नाहरसिंहको आपके पास छोड़कर कुटियासे अपनी साइकिल ले आया। दो-ढाई घंटे आप वहीं बैठे रहे। साढ़े तीन बजेके लगभग वहाँसे चले और यमुना तटपर आकर नौकाकी प्रतीक्षा करने लगे। कुछ प्रकाश होनेपर नौका आयी तब नाहरसिंहको विदा करके यमुना पार की। अब बस, मैं ही आपके साथ था।

आज दोपहरमें रायासे दो मील इधर हाथरसकी सड़कपर एक मन्दिरमें विश्राम किया। वहाँ बुलन्दशहरवाले मास्टर मुंशीलाल आगये। विश्रामके पश्चात् आप वहाँसे अलीगढ़की सड़कपर चले। दूसरे दिन प्रातःकाल बेसवाँके निकट पं० किशोरीलाल और प्रताप.

सिंह मिल गये। यहाँसे सब लोग साथ-साथ अलीगढ़ होते हुए बाँध-पर पहुँचे। मैं केवल एक दिन ही आपके साथ अकेला रह सका। आपके साथ अकेले रहनेकी मेरी वासना अतृप्त ही रही।

प्रायः एक मास आपका निवास बाँधपर ही रहा। यहाँ आप बहुत अस्वस्थ प्रतीत होते थे। लोग आपको बहुमूत्रका रोग बताते थे, साथही कुछ ज्वर भी रहता था। गवाँके ला० बाबूलाल आपकी चिकित्सा करते थे। आपके खान-पानपर बड़ा कड़ा नियन्त्रण था। परवलके रेशेके साथ केवल हल्का फुल्का दिया जाता था। यह सब होते हुए भी परिश्रम आप पूर्ववत् ही करते रहे। कोई भी भक्त आता तो उसके ठहरने और भोजनादिकी व्यवस्था आप स्वयं ही करते। कोई जाता तो उसे लौंग-इलायचीका टिकट देकर विदा भी करते। यह सब करते हुए पूज्य श्रीहरिबाबाजीके सत्संगमें भी ठीक समयपर सम्मिलित हो जाते।

१० अप्रेलको प्रातःकाल साढ़े तीन बजे कुछ भक्तोंके साथ आपने वृन्दावनके लिये प्रस्थान किया। अनूपशहर भेरिया और कर्णवास आदि स्थानोंपर होते हुए आप अतरौलीके पास उत्तमगढ़ी पहुँचे। यहाँ आपके भक्त भवानीसिंह और किशनसिंह दारोगा रहते थे। सायं-कालमें उनके घर पधारे। उन्होंने आपको ऊँचे आसनपर बिठाकर पूजन किया। आरतीमें प्रायः पाव छटाँक कपूर था। वह अग्निकी तरह प्रज्वलित हो रहा था। श्रीमहाराजजी नेत्र बन्द किये सिद्धासन से विराजमान थे और ये दोनों भाई भी प्रेमविभोर हो नेत्र बन्द किये गद्गद् कण्ठसे स्तुति बोलते हुए आरती कर रहे थे। इन्हें यह चेत भी नहीं रहा कि थाल श्रीमहाराजजीके मुखसे कुछ दूरीपर रखना चाहिये। कपूरकी ज्योति आपके मुखारविन्दको स्पर्श करने ही वाली

थी कि मैंने दरोगाजीको पकड़कर पीछे खींच लिया। महाराजजीका मुख जलनेसे बाल-बाल बचा, किन्तु आप ज्यों-के-त्यों शान्त भावसे विराजे रहे, मानो शरीरसे आपका कोई सम्बन्ध ही नहीं था। प्रेमियोंकी प्रसन्नताके लिये आप इस प्रकारकी अटपटी क्रियाएँ भी सहन कर लेते थे।

इसके पश्चात् अतरौली और हरदुआगंज होते हुए २१ अप्रैलको आप अलीगढ़ पहुँचे। आपको वृन्दावन पहुँचनेकी जल्दी थी, अतः अलीगढ़में केवल एक रात ही ठहरना चाहते थे। किन्तु अलीगढ़के भक्त आपको घेरे हुए थे और उनका अनुरोध था कि कल तो यहीं ठहरें। रातको ग्यारह बजे आपने समझा-बुझाकर सबको विदा कर दिया। उस रात गर्मी बहुत अधिक थी। आप पन्नालालके बगीचेमें चबूतरेपर विराजमान थे। मैं पंखेसे हवा कर रहा था। और भी कुछ भक्त आपके पास आने लगे। परन्तु आपने सबको रोक दिया। सबके चले जानेपर मैंने आपको लिटा दिया और स्वयं पंखा झलता रहा। रातको पौनेदो बजे आप उठकर बैठ गये और मुझे साथ लेकर चल दिये। मैंने अपनी साइकिल ले ली। प्रायः एक फलांग चलनेपर अलीगढ़से इगलास जानेवाली सड़क आ गयी। मैंने श्रीमहाराजजीसे साइकिलपर बैठनेका अनुरोध किया। मेरे प्रेमपरवश प्रभु साइकिलके कैरियरपर बैठ गये। मुझे अपनेपर भरोसा था कि मैं आपको साइ-किलपर बिठाकर ले जाऊँगा। मैं साइकिलपर चढ़ा और पैर भी चलाये, परन्तु पहिया वहीं रेतमें धस गया। बहुत प्रयत्न करनेपर भी न चला सका। श्रीमहाराजजी साइकिलके बराबर रोड़ियोंके ढेरपर गिर गये। मैंने तुरन्त साइकिल छोड़कर आपको उठाया और आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थनाकी कि महाराजजी ऐसी कृपा कीजिये

जिससे मैं आपको साइकिलपर बैठाकर चला सकूँ। आप बोले, "अच्छा, बेटा! अबकी बार बिठाकर चला।" मैंने आपको बिठाया और साइकिल चलानी आरम्भ करदी। इस बार मुझे कुछ भी कठिनता न हुई। ऐसा लगा मानो साइकिलपर कोई वजन ही नहीं है। इस प्रकार श्रीमहाराजजीकी कृपासे मैं उन्हें नौ मीलके लगभग ले गया।

वहाँसे मैं ही आपके साथ रहा। इस प्रकार प्रेमपरवश सरकार ने मेरी ऐसी अटपटी इच्छा भी पूर्ण की।

उनके चरित्र तो अनेकों हैं। कहाँ तक लिखें। बस, इन कतिपय प्रसंगोंको देकर ही लेखनीको विश्राम देता हूँ।
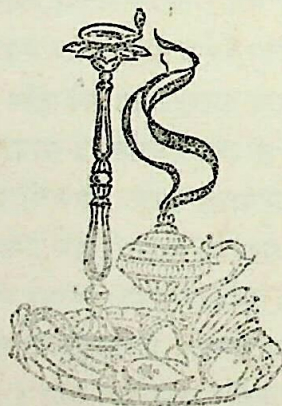
श्रीशिवचरणलालजी शर्मा, दिल्ली

प्रथम दर्शन

यों तो मैं बहुत दिनोंसे श्रीमहाराजजीकी महिमा सुना करता था, परन्तु उनका प्रथम दर्शन मैंने पं० ज्योतिप्रसादजीकी कृपासे अलीगढ़के उत्सवमें किया। उस समय विशेष भीड-भाड़ होनेके कारण दुर्भाग्यवश वहाँ उनके चरणस्पर्श या विशेष सम्पर्क स्थापित करनेका अवसर नहीं मिला। उसके कुछ महीने पश्चात् सौभाग्यवश अपना कृपा-प्रसाद लुटानेके लिये आप दिल्ली पधारे और कुदसियाघाटपर विराजे। उस समय एक महीना तक हमें श्रीमहाराजजीके दर्शन, सेवा, सत्संग और लीलाओंके रसास्वादनका जो अद्भुत आनन्द मिला वह अवर्णनीय है। हम सारे दिन आपके साथ ही रहते थे। रात्रिको दस बजे घर लौटते थे।

उन्हीं दिनोंकी बात है, एक दिन हम लोग मिलकर मीराबाईका एक पद गा रहे थे। उस समय अकस्मात् महाराजजी समाधिस्थ हो गये। हम सब बहुत घबड़ाये। हमने वैसी अवस्था कभी देखी नहीं थी। अनूहशहरवाले भक्त प्यारेलालजी आपके तलवे मसलने लगे। इससे प्राय: एक घंटेमें आपको चेत हुआ। उस एक मासमें आपने दिल्लीवालों पर जो कृपाकी वृष्टिकी उससे हममें से कई लोगोंकी जीवनधाराएँ बदल गयीं। ऐसा जान पड़ता था मानो आपके रूपमें स्वयं भगवान् ही हमें अपनी ओर उन्मुख करनेके लिये पधारे हों। बस, एक रात चुपचाप आप उठकर छायसे चले गये। तबसे हम समय-समयपर विभिन्न स्थानोंमें आपके दर्शनार्थ जाते रहे।

अन्तर्यामिता

एक बार गुरुपूर्णिमाके अवसरपर मैं रामघाट आपके पास गया। उस पुण्यभूमिमें आपकी परम पावनी सन्निधिमें रहते हुए भी एक दिन मेरे मनमें कामविकार उत्पन्न होगया। इससे मैं बहुत घबड़ाया और मैंने इस पापका प्रायश्चित करनेके लिये तीन दिनका उपवास करनेका निश्चय किया। ठीक भोजनके समय मैं गंगा तटपर चला गया। वहाँसे लौटनेपर जब आपने भोजनके लिये कहा तो कह दिया, "आज मेरी तबियत खराब है, मैं भोजन नहीं करूँगा।' दूसरे भी दिन ऐसाही कोई बहाना बना दिया। तीसरे दिन आप स्वयं ही मुझसे कहने लगे, "बेटा! जो मानसिक पाप बन गया है उसकी चिन्ता मत कर। वह सब समाप्त हो गया। अब मैं आज्ञा देता हूँ तू प्रसाद पा ले।" यह आपकी अन्तर्यामिताका मैंने प्रत्यक्ष चमत्कार देखा। तब आपके अभयदानसे मैंने भोजन कर लिया।

साधनसंकेत

एक बार मैंने प्रार्थना की, "श्रीमहाराजजी! मुझे संन्यास लेनेकी आज्ञा दे दीजिये।" आप बोले जब पाँच सौ रुपये जोड़कर मेरे पास लायेगा तब देखूँगा।" मैंने पाँच सौके स्थानपर बारहसौ रुपये जोड़े तब आज्ञा माँगी। उस समय आप बोले, "जब पाँच हजार रुपये जोड़ लेगा तब बताऊँगा।" मैंने हठ करके पूछा कि आप इस प्रकार बहकाते क्यों हैं? तब कहा, "समय बड़ा विपरीत है। तेरे लिये तो पाँच हजार रुपये कहीं जमा करके भोजनसे निश्चिन्त होकर भजन करना ही अच्छा है।" मैं चुप होगया।

आपका दर्शन होनेसे पूर्व मैं कई बार वृन्दावन गया था। परन्तु वहाँ कोई आनन्द नहीं मिला। एक दिन कर्णवासमें मैंने आपसे

यह बात कही तो आप बोले, "वृन्दावनमें जाकर यमुनाजीका स्नान, श्रीबाँकेबिहारीजीका दर्शन, गिरिराजकी परिक्रमा और रासलीलाका दर्शन करनेसे आनन्द मिल सकता है, अन्यथा नहीं।"

एक बार कर्णवासमें मैंने आपसे पूछा, "आप सवारीपर क्यों नहीं बैठते ?" आप बोले, "अरे ! इसमें आशा-निराशाका सुख-दुःख होता है। यह बन्धनका कारण है, स्वतन्त्रताका बाधक है; इसलिये नहीं बैठता।"

अपना अनुभव

श्रीमहाराजजीके विषयमें ऐसा तो कई बार अनुभव हुआ कि मैं जब कभी दुःखी होकर दिल्लीसे आपके पास जाता तो ज्यों ही आपका दर्शन करता और आप 'बेटा' कहकर पुकारते कि मेरा सारा दुःख दूर हो जाता, मैं सर्वथा निश्चिन्त हो जाता। पुत्रको जैसे माता-पिताका सहारा होता है, उन्हें पाकर वह निश्चिन्त हो जाता है उसी प्रकार वे मेरे माता-पिता और सर्वस्व थे। उनके 'बेटा' सम्बोधनमें ही न जाने कितना प्रेमका जादू भरा था कि उससे सारी चिन्ताएँ दूर होकर मन सुखी हो जाता था। इस प्रकार सोलह-सत्रह वर्ष तक आपके सम्पर्कका दुर्लभ सुख प्राप्त हुआ। इससे दिल्ली-में प्रेमियों की एक गोष्ठी-सी पैदा हो गयी। उसमें सभीके हृदयोंपर आपने एक ऐसी छाप लगा दी, जो इस जीवनमें कभी भूली नहीं जा सकती।

अपनी लौकिक लीलाके अन्तिम वर्षमें आप बसन्तपञ्चमीके अवसरपर श्रीहरिबाबाजी और माँ श्रीआनन्दमयीजीके साथ पंजाब जाते हुए दिल्ली पधारे थे। तब दिल्लीवालोंकी प्रार्थनासे लौटते समय भी आप दर्शन देते हुए वृन्दावन गये थे। उस समय

आपका स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ था। अतः हम लोग वृन्दावन भी गये। वहाँसे बुधवारको आपकी आज्ञा लेकर दिल्ली लौट आये। वह बुधवारका दिन ऐसा अबुध-विछोहा निकला कि उसने फिर आपकी मधुर मुस्कानके दर्शन नहीं होने दिये। वे हमें अनाथ करके चले गये।

उनके देहावसानके चार दिन पश्चात् मैंने स्वप्नमें देखा कि श्री-महाराजजी श्वेत वस्त्र धारण किये एक ब्रह्मचारीके साथ खड़े हैं। मैंने पूछा, "महाराजजी! आपका शरीर तो शान्त हो गया था, यह मैं क्या देख रहा हूँ?" वे बोले, "बेटा! मैं कहाँ गया हूँ? मैं तो तेरे सामने खड़ा हूँ।" मैं चरण स्पर्श करनेके लिये बढ़ा। किन्तु स्पर्श कर भी न पाया कि वे अन्तर्धान हो गये। मैं मन मसोसकर रह गया।

प्रायः दो वर्ष पूर्वकी बात है। मुझे नौकरीसे अलग किये जाने-की सम्भावना थी। इस आशंकासे मैं बहुत दुःखी था और घवड़ा रहा था। मेरा धैर्य छूटा जाता था। मैं सत्य कहता हूँ उन्हीं दिनों स्वप्नमें श्रीमहाराजजीके दर्शन हुए। वे बोले, "तू बावला है, तेरी चिन्ता तो मुझे है।" फिर भी मेरा हृदय शान्त न हुआ। आखिर एकदिन मुझे डिसमिस किये जानेका हुक्म मिल गया। मैं बहुत रोया और रात्रिको रोते-रोते ही सो गया। स्वप्नमें बाबा बोले, "बेटा! तू घरमें क्यों पड़ा है, सुन्दरकाण्डका पाठ करके सीधा नौकरीपर चला जा।" दूसरे दिन प्रातःकाल ही दफ्तरसे एक आदमी आया और बोला कि तुम्हें ड्यूटीपर बुलाया है। बस, मैं पूर्ववत् अपने कामपर जाने लगा। यह कृपा उन्होंने किस प्रकारकी—इसे जानना मेरी शक्तिके बाहर है, इसे तो वे ही जानें।

यह तो उनकी लौकिक कृपाकी बात है। परमार्थपथमें भी उनकी ऐसी कृपा थी कि मैं वर्णन नहीं कर सकता। उन्हींकी कृपासे इस ओर मेरी प्रवृत्ति हुई और प्रभुमें विश्वास हुआ। उनसे नेत्र मिलाते ही मेरी सारी शंकाएँ निवृत्त हो जाती थीं। एक बार उन्होंने मुझे आज्ञा दी थी कि रामायणमें सुन्दरकाण्ड सुन्दर है। जो इसका पाठ करता है उसकी रक्षा हनुमानजीको करनी पड़ती है। बस, उसी दिनसे मैंने सुन्दरकाण्डका पाठ आरम्भ कर दिया, जो अब तक चालू है।

श्रीमहाराजजीमें अनन्त गुण थे। उनका किसीसे भी राग या द्वेष नहीं था। उन्हें कभी क्रोध करते नहीं देखा। वे सर्वथा सत्य और मधुर भाषण करते थे तथा सभीको प्रसन्न रखते थे। स्वयं तो वे प्रसन्नताकी मूर्ति ही थे। उनकी आज्ञाका अनुसरण करनेसे भगवत्पथमें प्रत्यक्ष सहायता मिलती दिखायी देती थी।

इस प्रकार उन्होंने सर्वदा हमारी लौकिक और परमार्थिक जीवनमें सहायता की और आज भी हमें अपने सिरपर उनका वह वरद हस्त दिखायी देता है।
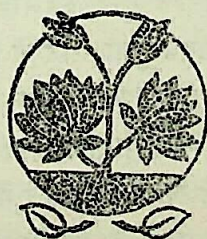
श्रीगौरीशङ्करजी खन्ना, दिल्ली

प्रथम दर्शन

सन् १६३१ में श्रीमहाराजजी दिल्लीके कुदसिया घाटपर पधारे थे। उस समय शहरकी श्रद्धालु जनता नित्यप्रति उनके दर्शन और सत्संगके लिये जाती थी। एक दिन पं० ज्योतिप्रसादजी मुझसे बोले, "उड़ियाबाबा नामके एक प्रसिद्ध महात्मा आये हैं, वे सवारीपर नहीं बैठते । तुम भी उनके दर्शन करो।" उनकी आज्ञानुसार मैं गया और श्रीमहाराजजीको प्रणाम करके बैठ गया। उस समय मेरे मनमें यह भाव था कि जो संत होते हैं वे भगवान्के समान ही समदर्शी होते हैं। मैंने देखा कि महाराजजीके पास जो धनी-मानी लोग आते थे वे तो स्वयं ही यथायोग्य स्थानपर बैठ जाते थे, पर गरीब आदमी आगे आनेमें सकुचाते थे। एक गरीब आदमी आया। वह समीप आनेमें डरता था। उससे श्रीमहाराजजी बोले, "भैया ! इधर आकर बैठ जाओ।" इस प्रकार उन्होंने उसका भय और संकोच दूर कर दिया। प्रथम दिन ही श्रीमहाराजजीका ऐसा स्वभाव देखकर मेरे मनमें उनके प्रति श्रद्धाका भाव उदय हुआ और मैं नित्यप्रति नियमानुसार उनके सत्संगमें जाने लगा। एक दिन मैंने सुना कि घाटसे एक मील दूर जंगलमें सूर्योदयसे पूर्व श्रीमहाराजजीका सत्संग होता है, उसमें पर्याप्त संख्यामें व्यापारी-वर्ग जाता है। तब मैं भी उस प्रातःकालीन सत्संगमें जाने लगा। इससे पहले मैं महात्माओंसे विशेष संसर्ग नहीं रखता था।

भयसे त्राण

उन दिनों मुसलमान गुण्डे कहीं किसीको अकेला-दुकेला देखकर रुपये-पैसे छीन लिया करते थे। ऐसी घटनाएँ प्रायः सुननेमें आती थीं। कहीं किसी रास्तेके आस-पास कोई गुण्डा रोने-कराहने अथवा चीखने-चिल्लानेका ढोंग करता। यदि उसे बचाने या देखनेके उद्देश्य-से कोई पहुँच जाता तो दो-तीन गुण्डे मिलकर उसके पास जो कुछ होता उसे छीन लेते। इस कारण मैं अँधेरेमें अकेला जाते हुए डरता था। जाड़ेकी ऋतु थी। कड़ाकेकी सर्दी पड़ रही थी। एक दिनकी बात है मैं साढ़े चार बजे उठकर चल पड़ा। काशमीरी दरवाजेको पार करते ही किसीके कराहनेकी आवाज सुनायी दी। मैं डरा। यदि पीछे मुड़कर जाता हूँ तो स्वयं लुटनेका डर था, और यदि दौड़कर आगे जाता हूँ तो मुझे डरा जानकर गुण्डे दौड़कर न पकड़ लें—यह डर था। तथापि मैं तेज चालसे चलने लगा। हृदय भयभीत था। मैं मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा कि महाराज! मैं भयभीत हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। सच्चे संत तो भगवान्‌के समान ही अन्तर्यामी होते हैं।

बस, एक मोड़पर पहुँचते ही श्रीमहाराजजी हाथमें कमण्डलु लिये मेरे पास आ पहुँचे। उस समय उनके पास कोई दूसरा नहीं था। उन्हें देखते ही मैंने साष्टाँग प्रणाम किया और वे बोले, "अरे बेटा! यदि तुझे इतना भय लगता है तो तू इतना सबेरे क्यों आता है?" अब मेरा भय दूर हो गया। मेरा हृदय कृतज्ञतासे भर गया और मैं श्रीमहाराजजीके साथ ही सत्संग-स्थलपर पहुँच गया।। इसके आठ दिन बाद फिर ऐसी ही घटना हुई। उस समय श्रीमहाराजजी झाड़ीसे निकल आये और मुझसे बोले, "भैया! मैंने तुझसे कहा

था न, कि इतना सबेरे क्यों आता है ? प्रकाश होनेपर आया कर।"

इन दो घटनाओंसे मुझे यह निश्चय हो गया कि श्रीमहाराजजी उच्चकोटिके महात्मा हैं और अन्तर्यामी हैं। वे मेरे भयभीत हृदयकी पुकारको तुरन्त सुन लेते या जान लेते और ठीक मौकेपर पहुँच जाते थे। इससे मेरा हृदय उनकी ओर आकर्षित हुआ और उनमें मेरी श्रद्धा हो गयी।

मन्त्रोपदेश और दोषनिरसन

एक दिन मैंने श्रीमहाराजजीसे अपने लिये उपदेश देनेकी प्रार्थना की। तब उन्होंने मुझे ध्यानकी विधि और जपनेके लिये मन्त्र बता-कर कहा—

'कपट गांठ मनमें नहीं, सबसों सरल सुभाव।
नारायन ता भगतकी, लगी किनारे नाव ।।'

श्रीमहाराजजीकी कृपा और सत्संगतिसे मेरे जीवनमें बहुत कुछ परिवर्तन हुआ। मेरे दोषोंका सुधार हुआ और भजनमें मेरी प्रवृत्ति हुई। उन सब बातोंका कैसे वर्णन किया जाय। मुझे सिगरेट पीनेकी बुरी आदत पड़ गयी थी। पन्द्रह-बीस सिगरेट रोज फूँक देता था। जब मैंने सुना कि श्रीमहाराजजी तम्बाकू-बीड़ी आदि पीनेवालोंसे घृणा करते हैं तो मेरे मनमें यह भाव आया कि जब तक तुम सिग-रेट पीना नहीं छोड़ोगे तबतक वे तुमपर प्रसन्न नहीं होंगे। अतः मैंने सदाके लिये सिगरेट पीना छोड़ दिया। एक दिन स्वप्नमें पीने चला, परन्तु प्रतिज्ञा याद आ गयी और सिगरेट फेंक दी।

स्वप्नद्वारा स्वास्थ्यदान

(१)

सन् १९३६ में मैं सख्त बीमार पड़ा। इन्फ्लुएंजा हो गया। बुखार बहुत तेज था और सब जोड़ोंमें दर्द होता था। उपवास करनेके कारण शरीर अत्यन्त दुर्बल होगया था। इस बीमारीमें मैं एक महीने तक पड़ा रहा। एक दिन मैं चार बजे चारपाईपर पड़ा था। उस समय जरा नेत्र झपके और कुछ तन्द्रा-सी आ गयी। उस अवस्थामें मैंने देखा कि श्रीधूमीमलजी वृन्दावनमें उस स्थानपर खड़े हैं जहाँ सड़कपरसे श्रीबाँकेबिहारीजीको गली गयी है। वहाँ श्रीमहाराजजी कुटीकी ओरसे भक्तों सहित आ रहे हैं। समीप आते ही श्रीधूमीमलजीने उनसे कहा, "महाराजजी! जल्दी प्रसाद दीजिये, गौरीशङ्करकी तबियत बहुत खराब है, वह बड़े कष्टमें हैं।" महाराजजी बोले, "अरे! मैं अभी प्रसाद लाता हूँ।" इतना कहकर वे श्रीबाँकेबिहारीजीके मन्दिरमें चले गये और लौटकर एक कचरीका टुकड़ा प्रसाद स्वरूप लाये। वह उन्होंने धूमीमलको दिया और उन्होंने मुझे देकर कहा, "यह प्रसाद श्रीमहाराजजीने दिया है, इसे अभी खालो।" मैंने तुरन्त खा लिया। इसके पश्चात् मेरी तन्द्रा टूट गयी। उसी समयसे मेरी अवस्थामें परिवर्तन होने लगा। मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा और दस-पाँच दिनमें मैं पूर्णतया स्वस्थ हो गया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्रीमहाराजजीकी कृपासे वह संकट टला।

(२)

सन् १९४९ के अक्टूबर मासमें तो मेरा नया जन्म ही हुआ समझिये। २६ अगस्तको पिताजीका देहान्त हुआ। उस समय मुझे ज्वर था। उसी हालतमें उनका क्रिया-कर्म तथा स्नानादि करनेके कारण मेरा

ज्वर बिगड़ गया। अँतड़ियोंमें गर्मी बैठ जानेसे रक्तातिसार होगया। बढ़ते-बढ़ते एक-डेढ़ महीनेमें यह हालत हुई कि बीस-पच्चीस खूनी दस्त नित्यप्रति होने लगे। चिकित्सासे कोई लाभ न हुआ। हालत दिन-पर-दिन बिगड़ती गयी। अब करवट बदलनेकी भी शक्ति न रही। रक्त-स्राव जारी हो गया। गुदाद्वारा स्वयं ही रक्त बहता रहता था। एक दिन सायंकालमें शौचकी हाजत हुई। जब मुझे उठाकर बैठाया गया तो शौचके स्थानपर खूनकी एक लुगदी निकली, जिसे प्राणान्त समयका मल टूटना भी कह सकते हैं। फिर सारा शरीर पसीनेमें डूब गया। बिस्तरपर लिटानेपर शरीर ठंडा पड़ने लगा। हाथ-पैर स्थिर पड़ गये उन्हें मैं इच्छानुसार हिला भी नहीं सकता था। निर्बलता अधिक बढ़ जानेके कारण नेत्र बन्द हो गये। इसी हालतमें मुझे श्रीमहाराजीके दर्शन हुए। उन्होंने अपने कटिवस्त्रसे मेरे सीनेपर एक झटका-सा दिया। इससे मैं चौकन्ना हो गया। इस समय मुझे ठीक-ठीक चेत था। श्रीमहाराजजी बोले, "अब मैं आ गया हूँ, तू कोई चिन्ता न कर, ठीक हो जायगा। मैं कहाँ......? अर्थात् कहाँ बैठूँ ?" इस वाक्यमें उन्होंने 'मैं कहाँ' इतना तो स्पष्ट कहा और 'बैठूँ' का संकेत किया, जिसे मैं समझ गया। मैंने हाथ और नेत्रोंके संकेतसे कहा, "आलेमें।" श्रीमहाराजजीके जिस चित्रपट स्वरूपकी मैं पूजा करता था वह आलेमें रखा था। मेरा अभिप्राय था वहीं विराजमान हो जाइये।

बस, उसी क्षण शरीरमें चेतना जाग्रत् हुई और वह सचेष्ट हो गया। केवल पन्द्रह मिनटमें ही शक्ति और स्फूर्त्ति मालूम हुई। दूसरे दिनसे डाक्टरी इलाज शुरू हुआ। उससे भी लाभ होने लगा। धीरे-धीरे प्रायः दो महीनेमें मैं ठीक हो गया। इस बीमारीसे

उठना मेरी दृष्टिमें तो मेरा नया जन्म ही है, जो एकमात्र श्रीमहाराजजीका ही प्रसाद था।

(३)

इसी प्रकार सन् १९५२ के शीतकालमें भी पन्द्रह दिनोंतक ऐसा हुआ कि सोकर उठनेके पश्चात् मेरे शरीरका ऊपरी भाग सुन्न पड़ जाता था। उससे कोई चेष्टा नहीं हो पाती थी। काफी देर तक इधर-उधर करवट बदलनेके पश्चात् उठनेकी शक्ति आती थी। मैं डरा कि इसी प्रकार यदि लकवा मार गया तो सारा जीवन ही बेकार हो जायगा। इस रोगकी निवृत्तिके लिये मैं अपनी ही औषधि ले रहा था। एक दिन स्वप्नमें श्रीमहाराजजीने दर्शन दिया और बोले कि जो औषधि तू ले रहा है उसके साथ मकरध्वज मिलाकर सेवन किया कर। प्रातःकाल उठकर मैंने वैसा ही प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। बस, तीन दिनके औषधिसेवनसे ही वह रोग जाता रहा।

इन घटनाओंसे श्रीमहाराजजीका औषधिसम्बन्धी ज्ञान, उनकी योगशक्ति और कृपालुता आदिका परिचय मिलता है। इनसे यह पता लगता है कि वे किस प्रकार अपने शरणागतोंकी रक्षा करते थे। हम दीनजनोंपर उनकी कितनी कृपा थी और अब भी है—इसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।

पं० श्रीदेशराजजी, मौजमपुर (एटा)

प्रथम दर्शन

श्री १००८ स्वामी श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज नवम्बर सन् १९१६ ई० में पूर्वकी ओरसे श्रीगंगाजीके किनारे विचरते ब्रह्मचारी श्रीमोतीरामजीका नाम सुनकर पधारे थे। ब्रह्मचारीजीकी गढ़ी रामपुर (एटा) में एक पाठशाला थी। बाबा गाँवके पूर्वकी ओर एक बागमें पीपल वृक्षके नीचे गाँवकी ओर पीठ और उत्तरकी ओर मुख किये खड़े दिखायी दिये। पतिराम नामका विद्यार्थी उस बागकी ओर गया था। उसने स्वामीजीको देखकर हम सब विद्यार्थियोंसे आकर कहा कि पीपलके नीचे कोई महात्मा खड़े हैं। हम सब श्री-ब्रह्मचारीजीकी आज्ञासे गये और स्वामीजीसे मन्दिरपर पधारनेके लिये प्रार्थना की। आप बोले, "मैंने तो सुना था कि जहाँ ब्रह्मचारीजी पढ़ाते हैं वह मन्दिर बस्तीसे बाहर है, परन्तु यह तो बस्तीमें है। मैं नहीं जाऊँगा।" उस समय स्वामीजी एकान्तप्रिय थे। बस्तीमें कभी नहीं ठहरते थे। हम लोगोंने कहा, "स्वामीजी ! मन्दिर तो बस्तीसे बाहर पश्चिमकी ओर है।"

तब आप मन्दिरपर आये। श्रीब्रह्मचारीजीने आपको आसन दिया। हम सब विद्यार्थीगण भी आपको चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। उस समय आपके पास एक तूँबी, एक गेरुआ चादर और लँगोटीके सिवा और कुछ नहीं था। आयु भी अधिक-से-अधिक

पच्चीस वर्षकी होगी ।* वहाँ कई महात्माओंका आपसमें विवाद चला कि इतनी छोटी आयुमें संन्यास नहीं लेना चाहिये । परन्तु आपने शास्त्रोंके अनेकों प्रमाण देकर उनका समाधान कर दिया । उस समय हम लोग सारस्वतचन्द्रिका पढ़ते थे । श्रीस्वामीजी वहाँ दो वर्षतक विराजे और हमें सारस्वतचन्द्रिका तथा अन्यान्य कई ग्रन्थ पढ़ाते रहे ।

आपकी दिनचर्या

आप रात्रिको बारह बजेतक पढ़ाते रहते थे । जब आप आज्ञा देते तब हम सो जाते और आप आसन लगाकर बैठ जाते । जब दो-तीन बजे हमारी आँख खुलतीं तो हम आपको बैठे पाते । तब हम आपको पकड़कर लिटा देते । आप कहते, "नहीं, नहीं रे !" फिर लेट जाते और थोड़ी ही देर बाद फिर बैठे दिखायी देते । हम लोग दिन-रातमें किसी भी समय लेटते नहीं देखते थे । सम्भवत: आसन-पर ही आप थोड़ा विश्राम कर लेते थे ।

गंगाजी वहाँसे ढाई-तीन मील दूर थीं । आप प्रातःकाल चार बजे वहाँसे चल देते थे और सूर्योदयतक स्नान करके लौट आते थे । उस समय पालेसे आपके हाथ-पैर नीले पड़ जाते थे । वहाँसे लौटते ही आप पुन: आसन लगाकर बैठ जाते थे । हम लोग जब आपको गोदमें उठाकर आगके पास बिठाते तो आप कहते, "नहीं, नहीं, धूपमें ठीक हो जायेंगे ।" इस प्रकार अग्निकी कोई अपेक्षा न रखकर आप हम लोगोंको पढ़ाने लगते थे ।

---

*पण्डितजीने अनुमानसे पच्चीस वर्षकी आयु लिखी है । परन्तु हमें श्रीमहाराजजी द्वारा ही उनका जो जीवनवृत्त विदित हुआ था उसके अनुसार उनकी आयु पैंतीस वर्षके लगभग थी । —सम्पादक

जब मैं रोटी बनाकर आपको परोसता तो आप हल्की-हल्की केवल दो रोटियाँ और थोड़ी-सी दाल ही परसवाते। पहले खाली रोटी खा लेते और दाल बच जाती तो कहते, "अरे देशराज! दाल तो रह गयी।" मैं कहता, "एक रोटी और ले लीजिये।" तब आप दाल पी जाते। जल पीनेकी आपको याद नहीं रहती थी। जब पढ़ाते-पढ़ाते कण्ठ सूखने लगता तब कहते, "अरे! कण्ठ सूख रहा है, क्या करूँ?" तब मैं जल लाकर आपकी तूँबीमें भर देता। आप जल पीकर हँसते और कहते, "इसीसे कण्ठ काम नहीं देता था।" ऐसा बहुत बार होता था।

मार्गमें जब आप श्लोक बोलते हुए चलते तो हम लोग समझते कि स्वामीजी धीरे-धीरे चल रहे हैं। परन्तु जब हम भागते-भागते थक जाते तब आपहीको पकड़कर खड़े हो जाते और पाँव सहलाने लगते थे। हम आपसे जौ और गेहूँके खेतोंकी पहचान कराते तो आप बड़े आश्चर्यसे कहते, "अरे! हमारे देशमें तो ये होते ही नहीं हैं, वहाँ तो केवल धान होता है।" हम लोग कहते, "स्वामीजी! अपने देशकी बोली सुनाओ।" तब आप हँसते-हँसते अपने देशकी बोली सुनाते और खूब हँसते-हँसाते। ऐसे ही खिलवाड़में समय बीत जाता था।

आपकी सिद्धियाँ

उस समय श्रीस्वामीजीमें हमें अनेकों सिद्धियाँ दिखायी देती थीं। जब हम लोगोंपर कोई दुःख आता तो हम स्वामीजीसे कहते। आप कहते, "तुमने मेरा नाम क्यों नहीं लिया?" जब हम ऐसे अवसरोंपर आपका नाम लेते तो न जाने कैसे वह दुःख दूर हो जाता था।

एक बार श्रीब्रह्मचारीजीने त्रिल्ववृक्षके नीचे बैठकर सवा लक्ष गायत्रीका अनुष्ठान किया। जब अनुष्ठानकी समाप्तिका समय समीप आया तो विचार करने लगे कि पैसा तो पास नहीं है, कैसे अनुष्ठान पूर्ण होगा? उसी समय आप हाथमें तूंबी लिये चादर ओढ़े आकर हमारे पास खड़े हो गये और कहने लगे, "आज गुरु-चेला क्या विचार कर रहे हो?" मैंने तुरन्त उठकर चरणस्पर्श किया और आसन दिया। ब्रह्मचारीजीने कहा, "महाराज! गायत्री-अनुष्ठान समाप्त होनेवाला है और सामग्री है नहीं।" आप बोले, "इतनी सामग्री इकट्ठी होगी कि तुम उसे समाप्त नहीं कर सकोगे।" ब्रह्मचारीजीने कहा, "महाराज! यज्ञके समय तो आप विराजेंगे ही। देखा जायगा कितनी सामग्री आती है।" आप बोले, "नहीं, उस समय मैं दूर चला जाऊँगा। यहाँ नहीं रहूँगा।"

न जाने उनकी क्या विचित्र महिमा थी, जब यज्ञका समय आया तो सात मन हवन-सामग्री और पचास मनसे अधिक भण्डारे-का सामान हो गया। यज्ञके बाद इतना सामान बचा कि सात दिन-तक समाप्त नहीं हुआ। ब्रह्मचारीजी कहते थे, "यह सब उड़िया बाबाजीका प्रभाव है।" उस समय आप कहीं दूर चले गये थे। न तो आप ही वहाँ थे और न किसी धनी-मानी सेठ-साहूकारसे ही कहा गया था। केवल आस-पासके गाँवोंसे ही इतना सामान इकट्ठा हो गया था।

इनके सिवा उनमें और अनेकों भी सिद्धियाँ देखी गयी थीं। उनका कहाँतक वर्णन किया जाय?

पं० श्रीदातारामजी, वृन्दावन

(१)

उन दिनों मेरी आयु कुल सात-आठ वर्षकी ही थी। मैं अपनी ननिहाल मौजमपुर (एटा) में रहता था। बाबा मेरे गाँवसे छः मील दूर शहबाजपुर में रहते थे। मेरे बड़े भाई श्रीदेशराजजी व्याकरण पढ़ने के लिये बाबाके पास जाया करते थे। उन दिनों वे विद्यार्थियोंको सारस्वतचन्द्रिका पढ़ा दिया करते थे। एक दिन भाई साहबके साथ मैं भी बाबाके पास गया। भाई साहबने उनकी भेंट के लिये बढ़िया बेर खरीद लिये थे। जिस समय हम पहुँचे बाबा व्याकरण पढ़ा रहे थे। भाई साहबने बेर सामने रखे। बाबाने पढ़ाना बन्द कर दिया और बेर बाँटने लगे। कदाचित् उन्होंने समझ लिया कि अब विद्यार्थियोंको व्याकरण पढ़नेकी अपेक्षा बेर खाना अधिक प्रिय होगा। वे बेर बाँटते समय हँसते जाते थे। उनके हँसमुख स्वभावने मेरे मनको आकर्षित कर लिया।

भाई साहबकी प्रार्थनासे बाबा कभी-कभी हमारे गाँवमें भी आते थे। जिन दिनों वे आते सारे गाँवमें सवेरे चार बजे चक्कियाँ बंद रहती थीं, क्योंकि उस समय बाबा ध्यान करते थे। दिन चढ़ जानेपर जब वे गंगास्नानके लिये चले जाते तब चक्कियाँ चलने लगती थीं। मेरे गाँवमें संस्कृत कोई नहीं जानता था। बाबाने भाई साहबसे कह कर वहाँ संस्कृतका प्रचार कराया।

इसके पश्चात् बहुत वर्षोंतक मुझे बाबाके दर्शन नहीं मिले। कारण यह था कि फिर बाबा मोहनपुर आदि अन्य स्थानोंमें रहने लगे और मैं पढ़नेके लिये काशी चला गया।

(२)

प्राय: बीस वर्ष बाद वृन्दावनकी दतियावाली कुञ्जमें मैंने बाबाका दर्शन किया। अब मेरी आयु तीस वर्षके लगभग हो गयी थी। इतने दीर्घकालमें मनुष्यकी आकृतिमें पर्याप्त अन्तर हो जाता है। परन्तु बाबाने मुझे देखते ही पहचान लिया और मेरे बिना बतलाये ही कहने लगे, "अब तो यह शास्त्री हो गया है।" उनकी यह बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ।

इसके बाद बाबाके वृन्दावनस्थ आश्रमपर शतचण्डीका पाठ हुआ। उसमें मैं भी सम्मिलित हुआ था। तबसे बाबाकी कृपासे मुझे श्रीवृन्दावनधाममें निवास करनेका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसके सिवा उनके कृपाप्रसादसे मुझे और भी अनेकों लाभ हुए हैं।

(३)

अन्तिम समयमें पूज्य बाबा कुटियामें बिराजमान थे। एक रात्रिको मैंने स्वप्न देखा—कुटियाका फाटक वृन्दावन शहरकी ओर है। फाटकपर मास्टर राधावल्लभ हैं। एकाएक शहरसे भीड़ घुस आयी है और उसने आश्रममें लूट-पाट मचा दी है। मैं सोचने लगा—अकेला राधावल्लभ क्या कर लेगा। इतनेमें कुछ आदमी आये और मेरा सामान भी लूट ले गये। थोड़ी देरमें आश्रम के एक भागमें मेरा सब सामान रखा मिल गया। उसी समय एक अपरिचित व्यक्ति आया और मुझे दो अँगुलियाँ दिखाकर बोला, "यहाँ दो मृत्यु होंगी।" इसके बाद स्वप्न भंग हो गया। इस स्वप्नका कुछ भी रहस्य मेरी समझमें नहीं आया। परन्तु इसके पन्द्रह-बीस दिन बाद ही पूज्य बाबाका देहान्त हुआ और उसी समय उस हत्यारेका भी।

पं० श्रीकृष्णगोपालजी, वृन्दावन

प्रथम दर्शन

सन् १९३५ ई० की बात है, पूज्य बाबा श्रीवृन्दावन पधारे थे और शाहजहाँपुरवालोंके बगीचेमें ठहरे थे। मैंने अभीतक आपके दर्शन किये नहीं थे। एक दिन आपने लोगोंसे कहा, "यहाँ एक कृष्णगोपाल पण्डित रहता है, उससे मिलना है।" भक्तोंने वहाँसे ले जाकर आपको लक्ष्मीरानी की कुञ्जमें ठहरा दिया। उसके दूसरे दिन आप अकेले शाहजहाँपुरवाले मन्दिरमें आये और मेरे सामने आकर खड़े हो गये। इस प्रकार यह अकारण अपने-आप आपने कृपा की।

मैं उस समय आँखें बन्द करके ध्यान कर रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई मेरा ध्यान खींच रहा है। मैंने आँखें खोल दीं और सामने ही साधुवेशमें दिव्य मूर्त्ति बाबाके दर्शन हुए। मैं तुरन्त खड़ा हो गया और बाबासे आसनपर विराजनेके लिये निवेदन किया। मेरी प्रार्थना स्वीकृत हुई; आप आसनपर विराज गये। अबतक मैंने आपका कभी दर्शन तो किया नहीं था, इसलिये मैं पहचान बिलकुल न सका। तथापि मैंने पूछा, "कहिये महाराज ! आपने कैसे कृपा की ?"

बाबा—मैं कृष्णगोपालसे मिलनेके लिये आया हूँ।

मैं—अभी थोड़ी देर में मैं उसे बुला दूँगा।

बाबा—अच्छा, बुलाओ।

मैं—आप थोड़ी देर विराजिये। मैं बुला दूँगा।

बाबाके दर्शन और बातचीतसे, न जाने क्यों, मुझे ऐसा सुख प्रतीत हो रहा था कि आपका वहाँसे जाना मुझे सुहाता नहीं था। इस प्रकार कुछ समय बीत गया। मैं बुलाता किसे? स्वयं ही सामने बैठा था। इतनेमें भगवद्दास आदि आपके कुछ भक्त आ गये और आपको प्रणाम करके बैठ गये। एक दरबार-सा लग गया।

बाबा फिर बोले, "मुझे जाना है, देर हो रही है, उसे बुला दो।" अब मुझे हँसी आ गयी। भगवद्दासजी ने हाथ जोड़कर पूछा, "महाराजजी ! किसे बुलवा रहे हैं ?" आपने कहा, "मैं इसे कृष्णगोपालको बुलाने के लिये कह रहा हूँ। यह बुलाता नहीं, देर हो रही है।" भगवद्दासजीने कहा, "महाराजजी ! कृष्णगोपाल तो ये ही हैं।" तब आप कहने लगे, "भैया ! तू ने मुझे खूब छकाया।" और मेरे सिर पर अपना हाथ रखा। फिर भगवद्दास-जीने ही मुझे आपका परिचय दिया कि ये श्रीउड़िया बाबजी महा-राज हैं।

अब मैंने बाबाके दोनों चरण पकड़ लिये। मुझे बड़ा सुख मिला। बाबा कहने लगे, "अरे ! तुम तो राधावल्लभीय हो, मैं संन्यासी हूँ। मेरे चरण क्यों छूते हो ?" मैंने उत्तर दिया, "महा-राज ! मेरा हितधर्म है। आपने मेरे ऊपर इतना बड़ा हित किया कि हितके नाते ही कृपापूर्वक स्वयं पधारकर दर्शन दिये। मैं तो अपने हितके नाते ही हितदेवके चरण पकड़े बैठा हूँ।" बाबा बोले, "मैं भी जिससे हित करता हूँ उसे छोड़ता नहीं हूँ।"

इसके बाद आपने कमण्डलु उठाया और चल दिये। साथ ही भक्तगण भी चले गये।

बाबाकी भिक्षा

दूसरे दिन प्रातःकाल ही मैं लक्ष्मीरानी कुञ्जमें पहुँचा। वहाँ

देखा कि बाबा समाधिस्थकी भाँति बैठे हैं और विभिन्न भावोंकी उपासना करनेवाले भक्तजन अपने-अपने भावानुसार बाबाकी पूजा कर रहे हैं। मेरे मनमें प्रेरणा हुई कि बाबासे भिक्षाके लिये प्रार्थना करूँ। परन्तु साहस न हुआ। दूसरे दिन फिर विचार हुआ और सोचा कि संत तो दयालु होते हैं, उनसे डरनेकी क्या बात है? मैं श्रीबाँकेविहारीजी के मन्दिरमें दर्शन करने गया तो देखा कि बाबा भी वहाँ दर्शनार्थ पधारे हैं। मैंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि बाबा! कल हमारे ठाकुरजी आपको प्रसाद पानेके लिये बुला रहे हैं। आपने बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन प्रायः दस बजे आप सत्तर-अस्सी भक्तोंके सहित आ विराजे। मैंने तो केवल दस-पन्द्रह मूर्त्तियोंके लिये सामग्री तैयार कराकर श्रीठाकुरजी-को भोग लगाया था। बाबाने आते ही कहा, "कितना सामान है? सब मेरे सामने ले आओ।" मैंने सब सामान लाकर सामने रख दिया। आप बोले, "तुम्हारी स्त्री कहाँ है? बच्चे कहाँ हैं?" सबके लिये और मिलने-जुलनेवालोंके लिये भी पत्तल परसवाकर अलग रख दीं। फिर सब भक्तोंको पत्तलें डलवायीं और स्वयं परोसने लगे। सबसे कह दिया, "भैया! खूब खाओ, कोई रह न जाय।" बस, उतनेही सामानमें आपने सबको डटकर प्रसाद पवा दिया।

मेरे लिये उपदेश

दूसरे वर्ष भी बाबा वृन्दावनमें पधारे थे। परन्तु मैं काशमीर और श्रीबद्रीनारायणजीकी यात्राको चला गया था। आपने मेरे छोटे भाईसे पत्र लिखवाया कि कहाँ भटकता है? तेरे इष्टदेव तो वृन्दावनमें हैं। वह पत्र मुझे श्रीबद्रीनारायण के मार्गमें मिला। अतः मैं शीघ्र ही दर्शन करके लौट आया।

बाबाने व्यक्तिगत रूपसे मुझसे कहा था कि तुम कभी अपने चित्तको मत गिराना तुम्हारा काम नहीं रुकेगा। किसीसे माँगना भी मत और नौकरी भी मत करना।

हिततत्त्वनिरूपण

एक दिनकी बात है, बाबा एकान्तमें बैठे हुए थे। कहने लगे कि मुझे हिततत्त्व बड़ा प्रिय है। देखो, तुम्हारे हितरसके आचार्य-जीका मन्तव्य कितना विशाल है? जिस परमतत्त्वका वेद, उपनिषद्, पुराण और सभी शास्त्र साक्षात् रूपसे वर्णन नहीं कर पाये और इसीसे वह तत्त्व सबके लिये अगोचर रहा, वेद भी जिसका 'रसो वै सः' कहकर केवल संकेत ही करते हैं, वही श्रुतिसंवेद्य परमतत्त्व इनके ठाकुर श्रीराधावल्लभलालजी हैं। यही हिततत्त्व नित्य, सत्य सच्चिदानन्दघन है और यही स्वरूप प्रेम, सौन्दर्य, माधुर्य, रस, सुख, आनन्द और भावकी परावधि है। उस हित या प्रेमके सम्बन्धसे ही सब अवतार हुआ करते हैं, जैसे कि अग्निसे चिनगारियाँ। वास्तवमें इसीसे हिततत्त्वको सबका मूल बताया है। रसस्वरूप श्रीराधावल्लभ-लालको सृष्टि, पालन और संहारकी व्यवस्थासे कोई प्रयोजन नहीं है। उन्हें तो इनकी स्मृति भी नहीं होती। वे तो अपने ही नित्य रसमें निमग्न रहते हैं। श्रीराधारस इन्हींका निजस्वरूप है। ये इस निजरसमें निमग्न हो निरन्तर आनन्दबिहार करते हैं। ये राधा-कृष्ण दो नहीं, एक ही हितरसके दो स्वरूप हैं। यही नहीं, इनका तो नित्य-विहार-परिकर ही एकमात्र हितरसस्वरूप है। इन (राधा-वल्लभीयों) के वाणी ग्रन्थोंमें प्रेमामृतरसका प्रवाह बहता है। इनके यहाँ अनेक रूपोंमें केवल प्रेमतत्त्व ही विद्यमान है। हित ही ब्रह्म है और प्रेम ही परमात्मा है। यह व्यापक प्रेम ही नित्य विहारके लिये

हरिवंशस्वरूप चार रूपोंमें अभिव्यक्त है—युगलस्वरूप, श्रीवृन्दावन और सखीपरिकर। इनके सिद्धान्तमें यावन्मात्र स्थावर-जंगम प्रेमकी ही स्थूल अभिव्यक्ति है। यहाँ प्रेम ही चराचररूप जड़ता-संचारी भावको प्राप्त हो गया है। कृष्णगोपाल ! तूने जो यह दोहा सुनाया था उसमें इस चराचरव्यापी प्रेमका अच्छा प्रदर्शन किया है—

'सबै चित्र हित मित्र के, जहँ लों धामी धाम ।
काहि तजों काकों भजों, नाम गिरा हित सार ।।'

इस दोहेमें बताया गया है कि जहाँ तक धामी और धाम हैं सब उस हित मित्रके ही चित्र हैं। इनका नित्य विहार प्रेमकेलिके सिवा और कुछ थोड़े ही है। नित्यविहार या निकुञ्जरस जो कुछ भी है इस हित-प्रेमरसका ही विलास है, क्योंकि प्रेमरस एक अनिर्वचनीय तत्त्व है। यह एक होकर भी अनेक है और सबसे परे भी है। लोग इसे जानना चाहते हैं, परन्तु जान नहीं पाते, क्यों कि इस रसने सभीके चित्तको हरण कर लिया है। देखो, भगवान् कृष्णने सर्वज्ञ होकर भी किस प्रकार लीला की। उस दिव्य प्रेमके परिचयमें कोई क्या कहेगा ?"

फिर बाबाके साथ यह प्रश्नोत्तर होने लगा—

प्रश्न—ब्रह्म तो अव्यक्त है। उस अव्यक्तको व्यक्त कैसे किया जाय ?

उत्तर—इसीलिये श्रुति अतर्क्य, अचिन्त्य, अवाङ्मानसगोचर आदि विशेषण देकर उस तत्त्वको लक्षित कराती है, उसका साक्षात् निरूपण नहीं करती।

प्रश्न—यह सब ठीक है। पर उसे जानना तो होगा ही, चाहे जैसे और चाहे जितने रूपमें भी वह जाना जाय, क्योंकि उसे जाने

बिना जीवको अपने स्वरूपका बोध भी तो नहीं हो सकता ।

उत्तर—इसीलिये तो शास्त्रों एवं शास्त्रियोंने उस एक ही अव्यक्त तत्त्वके अनेक नाम और रूप प्रकट किये हैं। उनमें मुख्य दो हैं—एक निर्गुण निराकार और दूसरा सगुण साकार । जो पहला है वास्तवमें वही दूसरा भी है। जो लोग इन दोनोंमें तारतम्यबुद्धि करते हैं वे अज्ञानी हैं। जो निर्गुण निराकार भगवान् हैं वे ही भक्तों और प्रेमियोंके लिये सर्वदा सगुणसाकार भी हैं। वे ही विष्णु होकर विश्वका पालन करते हैं, नारायण होकर निरीक्षण करते हैं, साकेत-वासी राम बनकर दास्यसुख प्रदान करते हैं और श्रीकृष्णरूपसे अनेकों लीलाएँ करते हैं । सम्पूर्ण रूपोंमें एक श्रीकृष्ण ही तो क्रीड़ा कर रहे हैं, जो निर्गुण सगुण और निर्गुण-सगुणसे परे भी हैं, सबके लिये अलक्ष्य हैं और जिनकी गति योगियोंके लिये भी अगम्य है। गीतामें अपनी विभूतियोंका वर्णन करते समय वे स्पष्ट कहते हैं कि इस सम्पूर्ण जगत्को मैंने अपने एक अंशमें धारण कर रखा है। उन्होंने यहाँ तक कह दिया है कि मेरे बिना ब्रह्मकी भी कोई सत्ता नहीं है—

'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥'

अर्थात् मैं कृष्ण ही अविनाशी परब्रह्म, नित्य धर्म और एक-रस आनन्दका भी एकमात्र आश्रय हूँ। श्रीमद्भागवत् भी कहती है—'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' अर्थात् भगवान्‌के अन्य अवतार तो परमात्माके अंश और कलामात्र ही हैं, परन्तु श्रीकृष्ण तो स्वयं परिपूर्णतम भगवान् हैं। ये आदिपुरुष और श्रीनारायणके भी कारण हैं। महाविष्णु और नारायण भी उनकी

कलामात्र हैं। अतः श्रीकृष्ण ही तत्त्वस्वरूप और सब अवतारोंके मूल हैं। श्रुति 'रसो वै सः' अर्थात् वह परमतत्त्व रसस्वरूप ही है—ऐसा कहकर इन्हींको लक्षित कराती है। श्रीवृन्दानमें यह रस ही मूर्तिमान् शृंगार कहा जाता है। रसोपासक साधकका ध्येयरूप वह शृंगार माधुर्यनिधान श्रीकृष्णविग्रह ही हैं। भगवत्तत्त्व वास्तवमें एक ही है, किन्तु लीला एवं क्रियाओंके अनुसार उसके नामरूपात्मक अनेक भेद हैं।

इस प्रकार पूज्य बाबाके साथ हिततत्त्वसम्बन्धी जो परम रसमयी गूढ़ वार्ता हुई वह रसिकजनोंके आस्वादनके लिये यहाँ उद्धृत कर दी है।

गोस्वामी श्रीहरिचरणजी पुजारी, वृन्दावन

आजसे प्रायः बीस वर्ष पूर्व मैंने अपने मित्र श्रीनाथके साथ पहली बार श्रीकृष्णाश्रममें महाराजजीके दर्शन किये थे। इस प्रथम दर्शनमें मेरे चित्तपर उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। मैं उस समय मथुराकी एक पाठशालामें पढ़ता था। दैवयोगसे इसके पश्चात् मुझे कई बार आश्रममें आने और आपके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने जितनी बार श्रीमहाराजजीके दर्शन किये उतना ही उत्तरोत्तर मैं उनकी ओर खिंचता गया। जिस दिन उन्होंने मेरा परिचय पूछा उस दिन तो ऐसा लगा मानो वे मेरे हो गये और मैं उनका हो गया।

अध्ययन समाप्त होनेपर मैं कुछ दिनों खाली रहा। फिर मेरे परिचित एक महात्माने कानपुरवाली माँजीके यहाँ मुझे श्रीठाकुरजीकी पूजापर नियुक्त करा दिया। उस समय माँजीका श्रीमहाराजजीसे विशेष सम्पर्क नहीं था। जब उनका सम्पर्क बढ़ा और श्रीमहाराजजीके चरणोंमें उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया तो मेरे लिये यह नियम हो गया कि मैं नित्यप्रति एक चाँदीके लोटेमें आपके लिये दूध ले जाया करूँ। यह सेवा प्राप्त होनेपर मेरे चित्तकी जो दशा हुई उसका वाणीद्वारा वर्णन करना सम्भव नहीं। मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो मुझे साक्षात् श्रीभगवान्‌की सेवा प्राप्त हो गयी और मेरा मानव-जीवन सफल हो गया। मैं श्रीमहाराजजीके आश्रमकी ओर जो एक-एक कदम उठाता था उससे मुझे बड़ा ही अपूर्व आनन्द अनुभव होता था। उसके परिणामस्वरूप मुझे किसी भी फलकी

इच्छा नहीं थी । वे मेरे इष्टदेवके तुल्य थे । उनकी सेवा प्राप्त हो जाना ही मेरे लिये सबसे बड़ा सौभाग्य था । अँधेरी रात हो अथवा वर्षा या ओले पड़ रहे हों, तथापि किसी भी प्रकारकी बाधा मेरे उत्साहको ढीला नहीं कर पाती थी । जब मैं जाता तो श्रीमहाराजजी बड़े प्रेमसे मुझे बिठाते, प्रसाद देते, घण्टों मुझसे बात करते रहते और मैं उनकी चरणसेवा करता । मैं अपने इस सौभाग्यपर इठलाता था और अपनेको श्रीमहाराजजीका पुत्र समझता था । उनका जैसा अद्भुत वात्सल्य था उसकी समानता कहीं ढूँढ़नेसे भी नहीं मिल सकती । उसमें स्वार्थकी गन्ध भी नहीं थी । केवल देना-ही-देना था, त्याग-ही-त्याग था । इस दूषित जगत्में ऐसा प्रेम कहाँ ? मैं जैसे ही आश्रम-में पैर रखता मुझे प्रतीत होता कि मैं जगत्से बाहर किसी दिव्य लोकमें आ गया हूँ, जहाँ पाप-तापका कहीं लेश भी नहीं है ।

वैष्णव सम्प्रदाय और गोस्वामियोंमें खान-पानका बहुत विचार होता है । पहले मैं भी श्रीमहाराजजीके दिये प्रसादको खानेमें सङ्कोच करता था । श्रीमहाराजजी मेरे पीछे माँजीसे कहते, "तेरा पुजारी बहुत अच्छा है ।" माँजी कहतीं, "सब थारो ही छै ।" एक दिन आपने कहा, "तेरा पुजारी मेरा प्रसाद नहीं खाता ।" जिस प्रकार माताका हृदय अपने बच्चेको कुछ खिलाये बिना ठंडा नहीं होता उसी प्रकार श्रीमहाराजजी भी जब तक अपने प्यारे बच्चोंको सुन्दर-सुन्दर प्रसाद खिलाकर तृप्त नहीं कर लेते थे तब तक उन्हें तृप्ति नहीं होती थी । माँजीने कहा, "महाराजजी ! यह गुसाईं है, इनमें खान-पानका बहुत विचार होता है ।" फिर मुझसे कहा, "अरे ! महाराजके प्रसादमें के हर्जो छै, यह तो बड़े भाग्यसे प्राप्त होवे छै ।" मेरी तो पहलेसे इच्छा थी ही, जरा-सा सहारा मिलते ही

महाराजजीके दिव्य करकमलोंद्वारा प्राप्त हुए प्रसादका आनन्द रोम-रोमसे लेने लगा। उससे केवल रसनाका परितोष और शरीरका पोषण ही नहीं होता था, प्रत्युत हृदय और मन भी किसी दिव्य एवं अलौकिक प्रदेशमें पहुँच जाते थे। सचमुच यह आत्माका पुष्टिकारक भोजन था।

एक दिन मैं दूध लेकर गया। उस दिन सुखरामजीने कहा, "श्रीमहाराजजीका स्वस्थ्य ठीक नहीं है, आज दूध रखकर चले जाओ।" मैं दूध रखकर चला आया। थोड़ी देर पश्चात् आपने सुखरामजीसे पूछा, "पुजारी दूध लेकर नहीं आया ?" सुखरामजी बोले, "महाराज ! वह दूध रखकर चला गया है।" आप सुखरामपर बहुत बिगड़े और कहा, "तूने जाने क्यों दिया ? मेरे पास क्यों नहीं भेजा ?" श्रीमहाराजजीका भाव था कि वह इतने परिश्रमसे दूध लेकर आया और यहाँसे बिना सम्मान-सत्कार पाये चला गया— यह ठीक नहीं। उनका प्रेम निभानेका स्वभाव कहाँ तक वर्णन करें ? जो दण्डवत्‌मात्र कर देता उसके हाथ मानो वे बिक जाते। परन्तु इतने प्रेमपरवश होनेपर भी थे सर्वथा स्वतन्त्र। मैं जो दूध लेकर जाता था उसे भी वे स्वयं कभी नहीं पीते थे। तुरन्त पल्टू बाबा अथवा किसी दूसरेको बुलाकर दे देते थे।

अपने महानिर्वाणके दो-तीन दिन पूर्व उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथमें पकड़ लिया। कैसी रेशमके समान कोमल उन हाथोंकी गदोली थी ? उस स्पर्शको मैं जीवनभर नहीं भूल सकता। वे मुझे नये बन रहे मन्दिरके कमरोंमें, गुफाओंमें और छतपर ले गये और बोले, "जानता है, यह तेरी माँजीका शंकरजीका मन्दिर है और यह बहूजीका श्रीराधाकृष्णका मन्दिर है।" मुझसे पूछा, "तुझे कोई कष्ट

तो नहीं है ? खूब प्रसन्न रहा कर।" मैंने कहा, "श्रीमहाराजजी ! दस आदमियोंके अधीन रहना पड़ता है, सबकी अलग-अलग प्रकृति है। मन्दिरकी प्रतिष्ठा होनेपर मुझे यहाँकी सेवाके लिये रखकर अपने पास बुला लीजिये, तो बड़ा अच्छा हो।" आप बोले, "अरे ! मेरे सामने तो इसकी प्रतिष्ठा होगी नहीं।" मैंने कहा, "क्यों महाराजजी ! आपके सामने इसकी प्रतिष्ठा क्यों नहीं होगी ?" आपने झट प्रसंग बदल दिया और कहा, "देख, तेरी माँजी तो आती ही नहीं, कब तक आनेको लिखा है ?" मैंने कहा, "महाराजजी ! दस दिनमें आनेकी बात है।" आप बोले, "दस दिन बाद आनेसे क्या होता है ? मुझसे मुलाकात तो होगी नहीं।" मुझे सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसा श्रीमहाराजजी क्यों कह रहे हैं ? फिर सोचा, सम्भव है, कहीं बाहर जानेवाले हों। इसके पश्चात् आपने पुनः पूछा, "तेरी प्रीति शंकरजीमें है या श्रीराधाकृष्णमें ?" मैंने कहा, "महाराजजी ! मेरे तो दोनों ही इष्ट हैं, मैं तो दोनों की ही उपासना करता हूँ।" फिर बोले, "मुझसे शिवपुराण ले जाना और उसका पाठ करना।" बस, आपने मुझे शिवपुराण देकर विदा कर दिया। इस घटनाके चार-पाँच दिन पश्चात् आपने अपनी लौकिकी लीला समाप्त कर दी। अब मुझे आपकी उन बातोंका रहस्य समझ पड़ा।

मन्दिर बनकर तैयार हुआ। प्रतिष्ठाका शुभ मुहूर्त्त आया। कितने ही सुयोग्य व्यक्ति पुजारीका पद पानेके लिये उत्सुक थे। मुझे तो स्वप्नमें भी आशा नहीं थी कि मुझे यह सेवा मिलेगी। प्रतिष्ठाके अन्तिम समयपर मैं रमण रेतीसे यहाँ आया। उस समय माँजीके मुखसे यह सुनकर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि अभिषेककी आरती थाने करनी छै। मेरी आँखोंमें आँसू छलछला आये और

श्रीमहाराजजीकी मूर्ति सामने खड़ी हो गयी। इसके पश्चात् कई पुजारी रखे गये, परन्तु माँजी किसीसे सन्तुष्ट न हुईं। अन्तमें मुझे ही यह सेवा प्राप्त हुई। अब मुझे इहलौकिक और पारलौकिक किसी भी बातकी चिन्ता नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्रीमहाराजजीने मेरा हाथ पकड़ा हुआ है। वे सर्वसमर्थ हैं, जिसमें मेरा हित होगा वही करेंगे। जब मैं ध्यान करने बैठता हूँ तो जिस प्रकार श्रीशंकरजी और श्रीराधाकृष्ण मेरे ध्यानमें आते हैं उसी प्रकार श्रीमहाराजजी आ जाते हैं। मुझे तो उनसे उनका कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।
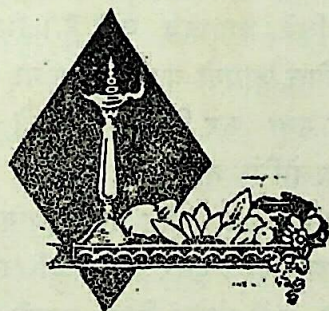
पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी शास्त्री, सुनामई

प्रथम दर्शन

मैं खुरजामें सेठ गौरीशंकरजीकी पाठशालामें पढ़ाता था। एक दिन सायंकालमें एन्० आर० संस्कृत कालेजके प्रिंसिपल पं० चण्डी-प्रसादजीके साथ बाहर टहलनेके लिये गया। मार्गमें सुना कि उड़िया बाबा नामके एक महात्मा आये हैं, जो बड़े ही त्यागी हैं। मैं उक्त पण्डितजीके साथ उनके दर्शनार्थ गया। स्वामीजी एक चटाईपर सिद्धासनसे बैठे थे। पासमें एक मिट्टीका एक पात्र रखा हुआ था। कुछ बात-चीत प्रारम्भ ही हुई थीं कि गौरीशंकरजी आ गये और स्वामीजीसे घरपर भिक्षा करनेके लिये प्रार्थना करने लगे। स्वामी-जीने कहा, "मैं इसके लिये वचनबद्ध नहीं हूँ। भिक्षाके लिये जाते समय जहाँ भिक्षा मिल जायगी वहाँ कर लूँगा।" सेठजीने बग्घी भेजनेके लिये कहा तो मना कर दिया और बोले, "साधुओंको इस प्रकार भिक्षाके लिये प्रलोभित नहीं करना चाहिये।" मैं उनके इस व्यवहारसे बहुत प्रभावित हुआ और उनके त्यागकी दृढ़ता देखकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन जहाँ संस्कृतके विद्यार्थी भोजन बना रहे थे वहाँ जाकर भिक्षा करली और कहीं अन्यत्र विचरनेके लिये चले गये।

पुत्रदान

कुछ दिनोंके पश्चात् मैं वहाँसे अलीगढ़के धर्मसमाज कालेजमें पढ़ाने आ गया। एक दिन श्रीस्वामीजी वहाँ आये और छात्रोंसे

पूछने लगे, "तुम्हारे गुरूजी कहाँ हैं ?" छात्रोंने बतलाया कि उन्होंने शहरमें एक मकान ले रखा है, वहीं गये हैं। आप कुछ देर बैठकर वहाँसे चले गये। जब मैं वहाँ पहुँचा तो छात्रोंद्वारा मालूम हुआ कि श्रीस्वामीजी आये थे और आपको याद करते थे। सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ और मैं अपनेको धिक्कारने लगा कि स्वामीजी यहाँ आये और मैं उनके दर्शन न कर सका। अब क्या करूँ ? इतनेमें श्रीमहाराजजीके प्रेमी पं० गोपीरामजीसे मालूम हुआ कि अभी बाबा धनीपुरके बागमें, जो अलीगढ़से दो कोसकी दूरीपर है, ठहरे हैं। मैं प्रातःकालही वहाँ पहुँच गया। पं० शिवरामजीने बताया कि स्वामीजी तो मानो तुम्हारी ही प्रतीक्षामें बड़ी देरसे टहल रहे हैं, जल्दी मिल लो। मैं जल्दीसे दौड़कर गया और स्वामीजीके चरण-स्पर्श किये।

"अच्छा, पण्डितजी ! तुम आ गये" यह कहते हुए आप चल दिये। मानो मुझे किसी एकान्त स्थानको ले जा रहे हों। मैं तो ऐसा चाहता ही था। कुछ दूर चलकर सड़कके किनारे बैठ गये। मैंने अपना दुपट्टा बिछाना चाहा, परन्तु मना कर दिया। फिर छात्रोंकी संख्या और प्रबन्ध आदिके विषयमें पूछा। इस प्रकार कुछ देर बातचीत हो लेनेपर मेरे बिना पूछे ही आप बोले, "कोई पुत्र है ?" मैंने कहा, "नहीं" तो कहने लगे, "एक पुत्र तो होना चाहिये।" ऐसा दो-तीन बार कहा। मैंने इसे बाबाका आशीर्वाद समझा और ध्यानमें रख लिया। घर लौटनेपर गृहिणीसे भी कहा। उसके ठीक एक वर्ष पश्चात् मेरे एक लड़का हुआ। वह अभी तीन-चार महीनेका ही था कि स्वामीजी पुनः अलीगढ़ पधारे। मैं बौहरेके बगीचेमें दर्शनार्थ गया और चरणस्पर्श करते ही आप बोले, "पण्डितजी ! बच्चा

अच्छा है ?" मैं 'हाँ' कहकर बैठ गया और सोचने लगा कि स्वामीजीसे बच्चा होनेकी बात किसने कह दी ? अभी तो वह तीन-चार महीनेका ही हुआ है। और इस बीचमें मेरा मिलना भी नहीं हुआ। इत्यादि।

इसके तीन-चार वर्ष बाद श्रीस्वामीजी मानिकचौकमें आये। वहाँ मेरी लड़की लड़केको लेकर गयी। लड़केके चरणस्पर्श करनेपर आप बोले, "क्यों भाई ? पण्डितजी अच्छे हैं ? कहाँ गये हैं ?" गोपीलालने पूछा कि आपने इस बच्चेको कैसे पहचाना, तो बोले, "इसके चरण छूनेके तरीकेसे मैंने जान लिया कि यह पण्डितजीका लड़का है।"

मेरी शिथिलता और पुत्रशोक

अब लड़का चौदह वर्षका हो चुका था। मैं एक बार महराजजीके दर्शनार्थ बाँधपर गया। आप एक वृक्षके पास खड़े थे। मुझे चरणस्पर्श करते देखकर कहने लगे, "अरे ! पण्डित आलसी हो गया।" इसका और कोई तात्पर्य तो मैं समझ नहीं सका, केवल यह समझकर सन्तोष कर लिया कि पहले मैं गायत्रीका जाप करता था वह अब छोड़ दिया है, इसीसे स्वामीजीने ऐसा कहा है।

इसके छः महीने बाद लड़केका देहान्त हो गया। उस दुःखित अवस्थामें मैंने कर्णवास जाकर स्वामीजीका दर्शन किया। मुझे शोकाकुल देखकर आप बोले, "पण्डितजी ! तुमको पुत्रका बड़ा शोक है।" यह वाक्य आपने दो बार कहा। मैं बोला, "महाराज ! ऐसा तो मुझसे बहुतोंने कहा है। अब मुझे पुनः शोक न हो—ऐसा कोई उपाय हो तो बतलाइये।" यह सुनकर आप कुछ देर चुप रहे। फिर बोले, "कठिन है।" मैंने आग्रहपूर्वक कहा, "कितना ही कठिन

हो, मैं अवश्य करूँगा । आप परीक्षा कर लीजिये ।" तब आपने मुझे वृन्दावन आनेकी आज्ञा दी ।

साधन और शान्ति

कुछ दिनों बाद मैं वृन्दावन पहुँचा । महाराजजीने मुझे गुफामें ले जाकर सिद्धासन बतलाया और आज्ञा दी कि तीन महीने तक इसका अभ्यास करो । जब तीन घंटेका आसन सिद्ध हो जाय तब फिर आना । मैं लौट आया और पूरे तीन घंटेका आसन प्राप्त करके फिर पहुँचा । अबकी बार श्रीमहाराजजीने मेरी पसलीमें अँगुलीसे परीक्षा करके मुझे प्राणायाम बतलाया और तीन महीने बाद पुनः आनेको कहा । इस प्रकार प्राणायामका अभ्यास करनेसे मुझे खुश्की बढ़ गयी और हाथ सूजे हुए-से प्रतीत होने लगे । मैं फिर स्वामीजीके पास पहुँचा । अबकी बार आपने उसकी औषधि बतलायी और आश्वासन प्रदान करते हुए केवली कुम्भकका अभ्यास करनेकी आज्ञा दी । अभ्यास करते-करते जब दस मिनटसे ऊँचा कुम्भक हो गया तो भी मुझे शान्तिके दर्शन न हुए । तब तक श्रीमहाराजजीने अपनी ऐहिक लीला संवरण कर ली । इस घटनासे मैं दुःख से व्याकुल हो गया । अब मैं कहाँ जाऊँ ? एक दिन जबमैं बहुत व्याकुल हो रहा था मुझे स्वप्नमें महाराजके दर्शन हुए । आपने आज्ञा की कि शरीरसे पृथक्ताका अनुभव करते हुए अभ्यास करो । इससे शान्ति प्राप्त होगी । मैंने इस आज्ञाका पालन किया और उससे मुझे शान्ति एवं प्रसन्नता प्राप्त हुई ।

प० श्रीभगवद्दासजी, सेहता (आगरा)

प्रथम दर्शन

पं० श्री शिवदयालुजी कभी-कभी हमारे गाँवकी ओर आया करते थे। वे स्कूलोंमें प्रायः ब्रह्मचर्यपर भाषण दिया करते थे। इससे उनके साथ मेरा परिचय हो गया। बचपनसे ही सन्त-महात्माओंमें मेरी प्रीति सदासे रही है। बागमें वैष्णव संत प्रायः आया ही करते थे। पं० शिवदयालुजी कभी-कभी कहा करते थे कि मैं तुम्हें एक ऐसे महात्माके दर्शन कराऊँगा जैसा तुमने कभी न देखा होगा। उनके इन वाक्योंसे मेरे मनमें श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी उत्कण्ठा जागृत् हुई।

जाड़ेकी ऋतु थी। पं० शिवदयालुजीके साथ गजाधरसिंह और मैं श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ रामघाट गये। परन्तु वे हमारे पहुँचनेसे पूर्व ही दबतरा चले गये थे। अतः हम लोग बिहारीलालको साथ ले वहाँसे दबतरा चले गये। वहाँ एक आमके बगीचेमें आम्रवृक्षके नीचे मूर्तिमान् शान्तरसके समान मैंने श्रीमहाराजजीके दर्शन किये। वे समाधिस्थ योगिराजके समान निश्चल आसनसे विराजमान थे। भाषण बहुत कम करते थे। किसीने कोई प्रश्न किया तो संक्षेपमें सारगर्भित उत्तर देकर मौन हो जाते थे। मेरे सामने ही किसी विभागके एक अफसरने आपसे कुछ प्रश्न किया। उसका उत्तर श्रीमहाराजजीने थोड़ेहीमें उनके घरकी अप्रकट बातें बताते हुए इस ढंगसे दिया कि वे चकित रह गये और मेरे चित्तपर भी उसका बड़ा प्रभाव पड़ा।

जिस समय वहाँ पहुँचकर हम लोगोंने श्रीमहाराजजीको साष्टाँग प्रणाम किया उसी समय मुझे देखकर वे बोले, "यह लड़का कौन है ?" पं० शिवदयालुने उत्तर दिया, "श्री भगवन् ! यह वही लड़का है जिसके यहाँ मैं जाया करता हूँ ।" तब श्रीमहाराजजी बोले, इसको पहले क्यों नहीं मिलाया ?" रात्रिको शयनके समय मैंने प्रार्थना की, "महाराजजी ! कभी हमारे यहाँ पधारनेकी कृपा करें ।" तब आप बोले, "अरे ! मुझे तो वह स्थान बहुत अच्छा लगता है, मैं वहाँ अवश्य चलूँगा ।" मुझे उस समय ऐसा भान हुआ मानो वहींसे आप उस स्थानको देख रहे हैं, जो सर्वथा सत्य ही था । दूसरे दिन जब आप दबतरासे नरवरको चले तो मैंने देखा कि सैकड़ों स्त्री-पुरुष रोते हुए आपके साथ चल रहे हैं, लौटानेपर भी कोई लौटना नहीं चाहता । इस दृश्यका मेरे चित्तपर बड़ा प्रभाव पड़ा ।

दबतरामें ही मुझे श्रीमहाराजजीने आज्ञा दी कि तुम समर्थ गुरु रामदासजीका दासबोध अवश्य पढ़ना । पर पता भूल जानेके कारण मैं उसे न मँगा सका । ठीक एक वर्ष पश्चात् जब मैंने हाथरसमें आपके दर्शन किये तो मुझसे यह पूछे बिना ही कि तुमने दासबोध मँगाया या नहीं आप निश्चयात्मक शब्दोंमें बोले, "अरे ! तुमने दास-बोध नहीं देखा ?" मैंने कहा, "महाराजजी ! मैं उसका पता भूल गया ।" बोले, "अरे ! उसका पता क्या है—चित्रशालाप्रेस पूना ।" मैंने वहींसे पत्र लिखा और पुस्तक आ गयी । उसका स्वाध्याय करने से मेरे जीवनकी अनेक ग्रन्थियाँ खुल गयीं ।

इसके कुछ वर्ष पीछेकी बात है, मेरे यहाँ वर्षा नहीं हुई, दुर्भिक्ष पड़ गया । आर्थिक संकटके कारण मेरा चित्त चिन्तित रहता था । एक दिन मैंने दासबोध उठाया और स्वाभाविक ही उसे खोला । जो

सामने आया उसे पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—'जो भविष्यमें आने वाली विपत्तिको याद करके दुःखी होता है वह भी एक मूर्ख है। उसका भगवान्में विश्वास नहीं है।' इस प्रसंगको पढ़कर मेरी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। मेरी चिन्ता जाती रही और वे संकटके दिन निश्चिन्त अवस्थामें बीत गये।

सेहतामें

दुर्दैवसे मेरे पिताजीका पहले कुछ ऐसे साधुओंसे सम्पर्क हो गया था जिनके कारण साधुओंके प्रति उनकी अश्रद्धा हो गयी थी। इसके अतिरिक्त उन्हें तम्बाकूका अत्यन्त व्यसन था। दालानमें तीन-चार हुक्के सदैव टँगे रहते थे। ब्राह्मणोंका अलग, ठाकुरोंका अलग, अहीरोंका अलग, और अपना अलग। प्रतिदिन सब मिलाकर प्रायः एका सेर तम्बाकूका खर्च था। उनका दालान क्या था मानो तम्बाकूका अड्डा था। इधर श्रीमहाराजजी तम्बाकू पीनेवालोंसे इतनी घृणा करते थे कि उनसे अपने चरण भी स्पर्श नहीं कराते थे। रात्रिके समय अन्धकारमें भी यदि कोई तम्बाकू पीनेवाला आ जाता तो वे कह देते, "अरे कौन तम्बाकू पीनेवाला आ गया, मेरा जी घबराता है।" श्रीमहाराजजीको मैं अपने यहाँ लानेके लिये अत्यन्त लालायित था, परन्तु पिताजीकी दशा देखकर डरता भी था।

आखिर दिसम्बर सन् १९२५ को दबतरावाली प्रार्थनाके अनुसार सन् १९२७ ई० में आप मेरे यहां सेहता पधारे। आपके आगमनसे मुझे जो हर्ष हुआ उसका क्या वर्णन करूँ ? विचित्र बात तो यह हुई कि मेरे पिताजी भी, जो संतोंमें बहुत अश्रद्धा करने लगे थे, आपमें बड़ा प्रेम रखने लगे। उनका तम्बाकूका गढ़ भी टूट गया। पिताजीकी आयु इस समय प्रायः ९५ वर्षकी थी। किन्तु श्रीमहाराज-

जीके दर्शन, भाषण और सत्संगका उनपर ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा कि इस अत्यन्त वृद्धावस्थामें भी उन्होंने तम्बाकूको ऐसा त्यागा कि बादमें यदि उनके पास बैठकर कोई तम्बाकू पीने लगता तो वे यह कहकर उसे हटा देते कि मुझे इसकी गन्ध नहीं सुहाती। इस घटनासे मुझे श्रीचैतन्य महाप्रभुके वचन याद आते हैं कि जिसके दर्शन और भाषणमात्रसे दुर्गण छूट जायँ वह उत्तम भवगद्-भक्त है।

इन्हीं दिनों मास्टर चिरञ्जीलाल भी अपनी मास्टरमण्डलीके साथ आये। पहले ये आर्यसमाजी थे, सनातनधर्मसे इनका कट्टर विरोध था। किन्तु श्रीमहाराजजीने प्रथम मिलनमें ही उनपर ऐसी कृपा की कि वे सदाके लिये आपके ही हो गये और उसके परिणाम-स्वरूप आज हम उन्हें सन्तरूपमें देखते हैं।

सेहतामें श्रीमहाराजजीने रामायणमण्डल और संकीर्तनमण्डल-की स्थापना की। सब बालकोंको नित्यप्रति रामायणका पाठ तथा संकीर्तन करनेकी आज्ञा दी। विशेष व्यक्तिओंको गीतापाठ भी बत-लाया। इससे सत्संगादिमें हम लोगोंकी अच्छी रुचि बढ़ी। उन दिनों लड़ने-लड़ानेमें विशेष रुचि लेनेके कारण हम लोग घी-दूधका सेवन अधिक करते थे। पाव-डेढ़पाव घी और सेर-डेढ़सेर दूध नित्यके भोजनमें रहता था। श्रीमहाराजजीने यह घी-दूधका सेवन कम करा दिया। यहाँकी संकीर्तनमण्डली कर्णवास-रामघाट आदि स्थानोंमें भी, जहाँ-कहीं उत्सव होता था, जाती थी। एक बाल-मण्डलीकी भी स्थापनाकी गयी, जिसमें डालचन्द और बंगाली आदि बालक थे।

एक बार श्रीमहाराजजीने हमसे श्रीरामायणजीके एक-सौ-आठ

पाठोंका नियम कराया और आज्ञा दी कि जिसकी जिस वस्तुमें सबसे अधिक रुचि हो एक वर्षके लिये वह उसी वस्तुको छोड़ दे। उन दिनों हमें मीठा अधिक प्रिय था। अतः एक वर्षके लिये मीठा खाना छुड़वा दिया। इसके सिवा गद्देपर सोना और रजाई ओढ़ना भी छुड़वाया।

सेहतामें दूसरी बार

दूसरी बार सन् १९३१ के चैत्र मास में श्रीमहाराजजी सेहता पधारे और यहाँ प्रथम वार रामनवमीका उत्सव मनाया गया। इससे पूर्व एक पण्डितजीके साथ रामायणके विषयमें कुछ विवाद हुआ करता था। पण्डितजी कहते थे कि रामायण एक उत्कृष्ट काव्य है और मेरा पक्ष था, रामायण मन्त्ररूप है। उसकी चौपाइयोंका जप करके अनेकों भक्तोंने फल प्राप्त किये हैं, वह काव्य नहीं है। एक बार कुछ भावुक भक्तोंके समक्ष यह विवाद हुआ। उन्होंने भी मेरे ही मतका समर्थन किया। इससे पण्डितजी कुछ संकुचित हो गये। जब श्रीमहाराजजी पधारे तो उन्होंने उनसे भी यही प्रश्न किया। उत्तरमें श्रीमहाराजजीने दोनोंहीकी बातों का समर्थन किया। वे बोले, "साहित्यिकोंके लिये रामायण एक उच्चकोटिका काव्य है और भक्तोंके लिये वह मन्त्ररूप है।" पण्डितजीने पूछा, "सच्ची बात क्या है?" महाराजजीने कहा, "दोनों ही बात सच हैं।" तब पण्डितजीने हम दोनोंके विवादकी बात स्पष्ट कह दी। उनके चले जानेपर श्रीमहाराजजीने मुझसे एकान्तमें जो वचन कहे वे स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य हैं। मेरे चित्तपर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा। वे बोले, "तू भक्त बनता है और जीत चाहता है। भक्तका स्वभाव तो ऐसा होता है कि उसके पास जो कोई जिस अभिलाषासे आता है

उसकी वही कामना वह पूरी कर देता है । तुमसे पण्डितजी विवादमें जीत ही तो चाहते थे । उनकी इच्छाके विपरीत तुमने उन्हें जीतनेकी इच्छा क्यों की ? विवादमें जीतनेपर तुम्हें अभिमान होगा और उन्हें दुःख । यह क्या भक्तका लक्षण है ?" मेरे हृदयने स्वीकार किया कि श्रीमहाराजजीने एक बहुत ऊँची बात कही है ।

इस द्वितीय आगमनमें श्रीमहाराजजीने नये बगीचेकी नींव डाली । इस बागको लगानेकी आज्ञा आपने मुझे अनूपशहरमें दी थी । मैंने उसे स्वीकार भी कर लिया था । परन्तु घरकी स्थिति ऐसी नहीं थी । बाग लगानेके लिये पैसेकी आवश्यकता थी और पैसा मेरे पास था नहीं । यह बात मैंने वहाँ प्यारेलालजीसे कही थी वे बोले, "जब महाराजजीने आज्ञा दी है तो बाग लगा हुआ ही समझो, पैसेकी चिन्ता छोड़ो" । हुआ भी ऐसा ही । घर आनेपर मुझे अप्रत्याशित रूपसे दो हजार रुपये प्राप्त हो गये । जिस कुऐंका श्रीमहाराजजीने मुहूर्त्त किया उसका जल अत्यन्त मीठा निकला । वह एक सप्ताहमें ही तैयार हो गया और बाग़के सब वृक्ष भी थोड़े ही दिनोंमें फल देने लगे ।

जिस दिन श्रीमहाराजजी जाने लगे पिताजीने उन्हें आत्म-समर्पण किया और फिर हम तीनों भाइयोंको भी उन्हें समर्पित कर दिया । हम सबके सिरपर हाथ फिरवाया और कहा, "महाराजजी ! अब मैं अधिक दिन नहीं जीऊँगा । ये सब बालक आपके हैं, आपको समर्पित है ।" इसके दो महीने पश्चात् पिताजीका देहान्त हो गया । श्रीमहाराजजीके विदा होनेके पश्चात् उन्होंने सांसारिक चर्चा एकदम छोड़ दी और अन्तमें श्रीमहाराजजी तथा भगवान् का चिन्तन करते हुए ही प्राण-परित्याग किया ।

इस बार श्रीमहाराजजीने लगातार पैंतालीस दिनतक मेरे ही घर भिक्षा की। यह उनकी अपार अनुकम्पा थी। सामान्तया वे एक-दो दिनसे अधिक किसीके घर भिक्षा नहीं करते थे। इस बार सेहतामें लगातार डेढ़ मास तक सत्संग एवं कथा-कीर्तनका क्रम रहा। लोगोंने श्रीमहाराजजीके दर्शन और सम्भाषणका अनुपम लाभ उठाया और उनके उपदेशोंसे प्रभावित होकर अनेकों नर-नारी भजन-ध्यानादिमें प्रवृत्त हुए। अब जब वे जाने लगे तो विदाईका अद्भुत दृश्य उपस्थित हुआ। विशारदजी आपको मिढ़ाकुर ले जा रहे थे, साथमें १५–२० साधु-संत और भक्तजन थे। उस समय ठीक वैसा ही दृश्य बन गया जैसा श्रीवृन्दावनसे अक्रूरद्वारा श्याम और बलरामको मथुरा ले जाते समय बना था। अनेकों व्यक्ति रुदन कर रहे थे और अनेकों मूर्छित पड़े थे। सारा गाँव घरोंको सूना छोड़कर आपके पीछे लग गया, किसीको घर लौटने की सुधि नहीं थी। गाँवसे एक मीलतक सभी लोग रुदन करते आपके पीछे चले गये। यह दृश्य देखकर पथिक लोग स्तम्भित रह जाते। आखिर, सबको विलाप करता छोड़ कर आप मिढ़ाकुर चले गये।

लोग अपने-अपने घरोंको लौटे। सबका हृदय सूना-सूना हो गया और चित्त व्याकुल। जैसे-तैसे रात्रि व्यतीत कर प्रातःकाल हम लोग मिढ़ाकुर पहुँचे। वहाँ श्रीमहाराजजीका पूजन किया और दिनभर ठहर कर सायंकालको पुनः सेहता लौटे। इसके पश्चात् सन् १९३६ में तीसरी बार श्रीमहाराजजी सेहता पधारे थे। उस समय प्रायः एक मास तक आप वहाँ विराजे।

कुछ स्मरणीय प्रसंग

(१)

एक बार हम लोग बाँधके उत्सवमें गये। वहाँ श्रीमहाराजजीने मुझे तथा गजाधरसिंह आदि कुछ साथियोंको श्रीगंगाजीमें खड़ा करके 'मंगलभवन अमंगलहारी द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी' इस सम्पुटके साथ श्रीरामचरितमानसके एक सौ आठ पाठ करनेका संकल्प कराया। इस पाठके फलस्वरूप मुझे स्वप्नमें श्रीहनुमानजी और श्रीविश्वनाथजीके दर्शन हुए। इसके पश्चात् मेरी माताजी बीमार हो गयीं। तब श्रीमहाराजजीने मुझे सूचना भेजी कि माता-की सेवा-सुश्रूषा खूब करना, परन्तु चिन्ता न करना। अब उसका शरीर नहीं रहेगा। ठीक वैसा ही हुआ। माताजी स्वर्ग सिधार गयीं। इस प्रकारकी अनेक घटनाओंसे मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्रीमहाराजजीको भविष्यकी घटनाओंका ज्ञान हो जाता था।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी बुलन्दशहरसे खुरजा जा रहे थे। अनेकों भक्त साथ थे, मैं भी था। रास्तेमें नहरके किनारे बैठे थे। मैंने कुछ प्रश्न किये। आपने उनके उत्तर दिये और फिर बोले, "जो गुरुसे प्रश्न करता है वह गुरुको जीव समझता है। भक्तको प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं। इष्टदेव स्वयं उसके हृदयमें उत्तर देकर समाधान कर देते हैं।" उसी समय मैंने निश्चय किया कि अब आगे मैं श्रीमहाराजजीसे कोई प्रश्न नहीं करूँगा। उसके बाद वे ऐसी लीला करते कि जब मेरे मनमें कोई प्रश्न उठता और मैं उनके पास जाता, पर पूछता कुछ नहीं, तो उसी समय उपस्थित समाजमेंसे कोई व्यक्ति मेरे मनके प्रश्नको ही पूछ बैठता और श्री-

महाराजजी उसका उत्तर देकर मुझसे पूछते, "क्यों भगवद्दास ! ठीक है न ?" मेरे मनका समाधान हो जाता, अब उन्हें क्या उत्तर देता । उनकी योगशक्तिकी महिमा समझकर मुसका देता और चकित हो जाता । ऐसी घटनाएँ दस-बीस बार नहीं सैकड़ों बार हुई हैं । ऐसी योगशक्ति अन्यत्र मिलनी कठिन ही है ।

(३)

एक बार मुझे संग्रहिणीकी बीमारी हुई । दवा बहुत की, परन्तु अच्छा न हो सका । उसके कारण कई महीनेतक श्रीमहाराजजीके पास भी न जा सका । सोचता रहा—'अच्छा होनेपर ही दर्शन करूँगा । रुग्णावस्थामें वहाँ जानेसे तो सेवा करनेके स्थानमें सेवा लेनी ही पड़ेगी ।' अन्तमें मेरे गाँवके एक भक्तद्वारा श्रीमहाराजजीने कहलाया, "वह दवा करके अच्छा होना चाहता है, दवा करके क्या आजतक कोई अच्छा हुआ है ?" इसे श्रीमहाराजजीकी आज्ञा समझकर मैं उसी अवस्थामें वृन्दावन पहुँचा । वहाँ मुझे भण्डारके निरीक्षणकी सेवा मिली । श्रीमहाराजजी अपने हाथसे मुझे जो प्रसाद दे देते थे वही मैं पा लेता था । बस, तभीसे धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा और कुछ ही दिनोंमें पूर्ण स्वस्थ हो गया ।

(४)

अनूपशहरमें श्रीमहाराजजीके एक प्रेमी भक्त थे । उनका अन्तिम समय समीप आया । श्रीमहाराजजीने उनसे पूछा, "तुम्हारे मनमें कोई संकल्प तो नहीं है ?" भक्तने कहा, "महाराजजी ! अमुक व्यक्तिके इतने रुपये मेरे ऊपर ऋण हैं, इसी बातका ख्याल है ।' श्रीमहाराजजीने उस ऋणदाताको वहीं बुलाया और बोले, "तू आज अपना ऋण मुझे दे दे । इसका भार मुझपर है ।" और फिर ऋण-

दातासे कहा, "तुम्हारे इतने रुपयेका ऋण आजसे मुझपर है, इसे मैं दूँगा।" इसके कुछ दिनों बाद उस भक्तका देहान्त हो गया। इस प्रकार स्वयं कष्ट उठाकर भी आप भक्तोंका दुःख दूर कर देते थे।

(५)

पहले मैं मुकदमोंमें बहुत उलझा रहता था। श्रीमहाराजजी खुरजामें विराजमान थे। मैं उनके दर्शनार्थं गया। आप बोले, "भगवद्दास ! तुमने बहुत मुकदमे जीते हैं, दो-एक हारा भी ? अब कबतक मुकदमे लड़ता रहेगा ? यह मानवजीवन दूसरोंसे लड़ते रहने के लिये ही थोड़े हैं ?" मैंने कहा "महाराजजी ! मैं किसीसे मुकदमा लड़नेकी नीयत नहीं रखता। पर लोग लड़ा-भिड़ा देते हैं। गाँवमें एक पटवारी ऐसा है कि उसने घर-घरमें फूट डाल रखी है। यदि वह बदल जाय तो सारा झगड़ा समाप्त हो जाय।" तब आप बोले, "अरे ! वह तो बदल जायगा।" फिर मैंने सोचा यदि श्री-महाराजजीकी ऐसी ही आज्ञा है तो आजसे ही मुकदमेबाजी क्यों न छोड़ दी जाय। श्रीमहाराजजीकी बात सच हुई। वह पटवारी मेरी अनुपस्थितिमें ही बदल गया। तबसे सामान्य बातोंके सिवा मुकदमे-बाजीकी नौबत कभी नहीं आयी।

(६)

एक बार श्रीमहाराजजी बोले: "भगवद्दास ! मुझे खिलानेवाले बहुत तंग करते हैं।" मैंने कहा, "आपको आग्रह कराकर खानेकी आदत पड़ गयी है। आप हरेक चीजको मना कर देते हैं। जो चीज अनुकूल हो, पसन्द हो उसे बता दिया करें तो खिलानेवाले जान जायँगे कि अमुक चीज अनुकूल है और अमुक प्रतिकूल। फिर वे

आग्रह नहीं करेंगे ।" तब आप बोले, "तुम विश्वास नहीं करोगे। मैं भगवान्‌की साक्षी करके कहता हूँ कि मुझे किसीभी पदार्थको खानेकी रुचि नहीं होती । पहले साग खानेकी रुचि अवश्य हुआ करती थी । तब मैंने भगवान्‌से प्रार्थना की और वह रुचि भी जाती रही ।" तात्पर्य यह कि आपका खान-पानका व्यवहार परेच्छासे ही होता था ।

लीलासंवरणके बाद

सं० २००५ वि० की चैत्र कृष्णा १४ को श्रीमहाराजजीने लीला संवरण की। उसके पाँच वर्ष पीछे की बात है । बागमें जलकी कमी रहती थी । इसीलिये कुएँमें जलके लिये इञ्जिन लगानेका संकल्प हुआ । फाल्गुन सं० २०१० की शिवत्रयोदशीको इञ्जिन लगानेका कार्य पूरा हुआ और प्रथम जल निकला । मैंने उस जलको श्रीमहाराजजीके भावसे शिवजीपर चढ़ाया । उसी रात्रिको स्वप्नमें श्रीमहाराजजीने दर्शन दिया और बोले, "भगवद्दास ! अब तू क्या चाहता है ?" उस समय आप बड़े प्रसन्न थे और रोमाञ्चित हो रहे थे । उन्हें प्रसन्न देखकर मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई और रोमाञ्च हो आया । मैंने कहा, "भगवन् ! मैं तो केवल आपके श्रीचरणोंका आश्रय चाहता हूँ । और किसी लौकिक वस्तुकी मुझे इच्छा नहीं है ।"

इससे भी पहलेकी एक घटना है । श्रीमहाराजजीको लीलासंवरण किये साढ़े तीन वर्ष बीत चुके थे । सन् १९५२ के आश्विन मासमें मेरा लड़का प्रेमचन्द बीमार पड़ा । उसे तीन बीमारियाँ एक साथ घेरे हुए थीं—(१) हर समय बुखार बना रहता था, (२) दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह मिनटपर दस्त आते थे और (३) बार-बार मूर्च्छा

हो जाती थी। मैं डाक्टरी चिकित्सा करा रहा था, परन्तु उसपर दवाका कोई प्रभाव नहीं होता था। देखते-देखते दस-बारह दिनके भीतर प्रेमचन्द एकदम चारपाई से लग गया। शौचादि भी उसे चारपाईपर ही कराना पड़ता था। घरके सभी लोग अत्यन्त चिन्तित थे। होते-होते एक दिन हालत बहुत बिगड़ गयी। आधी राततक सारा परिवार उसकी चारपाईको घेरे बैठा रहा। सबको यही आशंका थी कि प्रेमचन्दके लिये आजकी रात निकलनी कठिन ही है।

जब हम एक बार भी श्रीभगवान् या किसी संतको आत्म-समर्पण कर देते हैं तो फिर यह आवश्यक नहीं होता कि उनसे प्रार्थना करनेपर ही रक्षा हो। वे बिना प्रार्थना किये भी रक्षा करते ही हैं। और जब प्रार्थना करनेपर भी रक्षा न हो तब उसे अपना कर्मफल भोग ही समझना चाहिये। श्रीभगवान् या संतकी कृपापर अविश्वास नहीं करना चाहिये।

भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी वह काली रात्रि हमारे परिवारके लिये कालीरात्रि बनीहुई थी। ऐसे विकट अवसरपर दयामय प्रभुने स्वयं ही कृपा की। 'प्रणतारतिहर विरद सँभारा।' यह किस प्रकार सो सुनिये। रात्रिके चार बजेका समय था। प्रेमचन्दको श्रीमहाराजजीने स्वप्नमें दर्शन दिया। वे आकर आपके सिरहाने खड़े होगये और उसके सिरपर करकमल फिराते अपनी स्वाभाविक मधुर वाणीमें बोले, "बेटा प्रेम! तू घबड़ा गया। देख, घबड़ा मत। दरवाजेपर मुखिया *वैद्य खड़ा है। इसका इलाज करा। उससे तू

*ये आगरेके एक प्रसिद्ध वैद्य हैं। कभी-कभी श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ आया करते थे।

अच्छा हो जायगा ।" यह सुनकर प्रेमचन्द गद्गद् हो गया और उसे रोमाञ्च हो आया। उसने दरवाजेकी ओर देखा तो उसे मुखियाजी खड़े दिखायी दिये। इतना कहकर श्रीमहाराजजी अन्तर्धान हो गये और प्रेमचन्दका स्वप्न टूट गया। उसने स्वप्नका सारा वृत्तान्त मुझे सुनाया। प्रातःकाल होते ही मैंने एक आदमी आगरे भेजा और उनसे स्वप्नकी बात सुनाकर तुरन्त पधारनेको प्रार्थना की।

मुखियाजी कुछ ओषधियाँ लेकर तुरन्त आये और मुझसे पूछा आज किस रोगकी दवा दूँ। मैंने कहा, "सबसे पहले मूर्छा रोकनेकी दवा दीजिये। इससे सब घबड़ाते हैं।" उन्होंने दवा दी और चौबीस घंटेके अन्दर उसे मूर्छा आना बन्द हो गयी। दूसरे दिन मुझसे उसी प्रकार पूछकर उन्होंने दस्त बन्द करनेकी दवा दी और चौबीस घंटेमें उसे दस्त आने बन्द हो गये। इसी प्रकार तीसरे दिन बुखारकी दवा दी गयी और केवल एक दिनमें उसका ज्वर निःशेष हो गया। इस तरह तीन दिनमें ही एक-एक दवासे क्रमशः उसके तीनों रोग निवृत्त हो गये। तीसरे दिनकी रातको प्रातः चार बजे स्वप्नमें श्रीमहाराजजीने मुझे दर्शन दिये और कहा, "अरे भगवद्दास ! आज मुझे यहाँ तीन दिन हो गये हैं, अब मैं जाता हूँ।" मैंने पूछा, "महाराजजी ! कहाँ जायेंगे ?" बोले, "मैं पुष्कर जा रहा हूँ।" इतना कहकर वह अन्तर्धान हो गये और मेरा स्वप्न भंग हो गया।

श्रीमहाराजजीको यह अपार अनुकम्पा और उनकी कृपामयी मूर्ति आज आखोंमें आँसू लानेका ही काम करती है। जगत्में अनेकों संत महात्मा हैं। वे सभी पूज्यनीय हैं। पर अपने हृदय की तो दशा ऐसी

है कि कहीं भी जानेको मन नहीं होता और जाता हूँ तो मन नहीं लगता। लोग न जाने क्या सोचते होंगे, परन्तु अपने हृदयकी तो बार-बार यही ध्वनि निकलती है—

"देव देखि तब बालक दोऊ । अब न आँखतर आवत कोऊ ॥
अस सुभाव कहुँ सुनहुँ न देखौं । केहि खगेश रघुपति सम लेखौं ॥
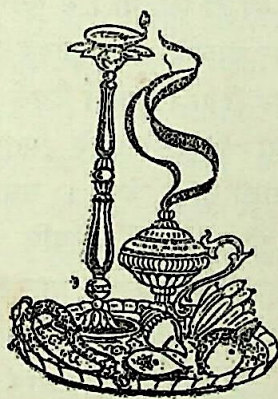
पं० श्रीकृष्णवल्लभजी वैद्य (श्रीलल्लूजी), अनूपशहर

प्रथम दर्शन

सन् १९२४ की बात है। मुझे अभी श्रीमहाराजजीके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। वे कर्णवासमें ज्वर और मूर्छामें ग्रस्त थे। उनके परम भक्त श्रीप्यारेलालजी यहाँ वैद्य मोतीदत्तजीको लिवानेके लिये आये। साथ ही उन्होंने मुझसे भी कहा कि आपको कल प्रातःकाल कर्णवास बाबाके पास चलना होगा। मैं पहले से बाबाका नाम तो सुना ही करता था, सोचा-चलो, इसी निमित्तसे उनका दर्शन भी हो जायगा। मैं दूसरे दिन प्यारेलालजीके साथ कर्णवास गया और बाबाके दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। प्यारेलालने मेरा परिचय दिया। बाबाने केवल इतना कहा कि मुझे इनके खानदानका पता है और इसके पिताजीको मैंने देखा है। इसके पश्चात् मैंने बाबाकी नाड़ी देखी। उस समय उन्हें ज्वर था और मूर्छाका भी दौरा होता था। मैं ओषधि अपने साथ नहीं ले गया था, अतः निश्चय यह हुआ कि कल प्रातःकाल कोई अनूपशहर जाकर मेरे यहाँसे ओषधि लायेगा। दूसरे दिन आदमी आया और मैंने उसे ओषधि दे दी। तीन-चार दिन बाद आप स्वस्थ हो गये। उसके पश्चात् मेरे चित्तका उनकी ओर कुछ ऐसा आकर्षण हो गया कि मैं हर महीने चाहे कैसी भी ऋतु हो, उनके दर्शनार्थ जाने लगा। एक वार श्रीमहाराजजीके पूछनेपर मैंने वताया कि मेरे घरमें भगवतीकी उपासना हुआ करती है। तब उन्होंने कहा कि तुम भगवतीकी ही उपासना किया करो।

पूर्णेश्वरकी स्थापना

मेरे यहाँ पूर्वजोंका बनाया हुआ प्रायः ढाई सौ वर्षका एक प्राचीन शिवमन्दिर था, जिसका शिवलिंग खण्डित हो गया था। यह मन्दिर सौ वर्षके लगभग तो खण्डित अवस्थामें ही पड़ा रहा। मेरे पूज्य बाबाने इसका जीर्णोद्धार कराना चाहा। परन्तु इस संकल्पके पूर्ण होनेसे पहले ही वे परलोक सिधार गये। इसके पश्चात् पिताजीकी इच्छा भी इसका जीर्णोद्धार करानेकी रही, परन्तु वे भी यह कार्य न करा सके। अन्तिम अवस्थामें हम सब भाइयोंको पिताजीने आदेश दिया कि इस मन्दिरके जीर्णोद्धारके लिये इतना रुपया है, यदि कमी पड़े तो तुम लोग और लगा देना। सन् १९३५ में बाबासे प्रार्थना की कि यदि आपके करकमलोंद्वारा इस मन्दिरका जीर्णोद्धार हो जाय तो बहुत अच्छा हो, क्योंकि इस कार्यमें विघ्न बहुत आते हैं। बाबाने स्वीकार कर लिया और उसका सारा भार अपने ऊपर ले लिया। उनकी आज्ञानुसार मुहूर्त्त भी निश्चित हो गया—वैशाख कृष्णा त्रयोदशी। किन्तु कार्य आरम्भ होनेके एक दिन पहले ही मेरी चाचीकी मृत्युका समाचार आ गया। बाबाने कार्यारम्भ स्थगित कर दिया और कहा कि अब इसके लिये दूसरा मुहूर्त्त निश्चय किया जायगा। मैं कल रामघाट जाऊँगा। मैंने प्रार्थना की, "आप अवश्य जाइये, परन्तु इस मन्दिरके जीर्णोद्धारका कार्य आपके ही सामने प्रारम्भ होगा।" बाबा बोले, "इस मन्दिरके जीर्णोद्धारमें विघ्न आ ही जाते हैं। यदि इस बार विघ्न आया तो हमारी शंकरजीसे लड़ाई होगी और इस स्थानपर गदहे लोटेंगे।" इसके पश्चात् बाबा रामघाट चले गये।

लगभग एक वर्ष पश्चात् वैशाख कृ० ३ को पूज्य बाबाकी

ही उपस्थितिमें मन्दिरके जीर्णोद्धारका कार्य आरम्भ हुआ । उसके पश्चात् बाबा तो अन्यत्र चले गये । प्रायः आठ महीनेमें मन्दिर तैयार हो गया । अब श्रीमहाराजजीके करकमलोंद्वारा शिवलिंगकी स्थापनाका मुहूर्त्त फाल्गुन कृष्णा शिवरात्रि निश्चित् हुई । आपकी ही अनुमतिसे मथुरासे देवस्थापन-विधिके ज्ञाता दक्ष पण्डित बुलाये गये । स्थापनाका सम्पूर्ण कार्यभार मैंने श्रीमहाराजजीको ही सौंप दिया । आपने पं० सुबोधचन्द्रजीको अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया । मैंने श्रीमहाराजजीको उज्ज्वल रेशमी वस्त्र धारण कराया, जिसे देख कर आप कह उठे, "आज तो मैं पण्डित हो गया हूँ ।" प्राणप्रतिष्ठाके दिन मन्दिर वेदध्वनिसे गूँज उठा । श्रीमहाराजजीके करकमलोंद्वारा विधिपूर्वक लिंगकी स्थापना हुई और उनके नामानुसार ये श्रीपूर्णेश्वर महादेवके नामसे प्रसिद्ध हुए ।

श्रीपूर्णेश्वरके निकट अन्य मूर्तियोंकी भी स्थापना हुई । उस समय शंकरजीका सुन्दर शृंगार किया गया था । रुद्रीका पाठ तथा सहस्त्रधाराके जलसे निरन्तर अभिषेक होता रहता था । श्रीपूर्णेश्वरजीके सम्मुख आपका भी एक सुन्दर चित्रपट सुशोभित है । प्राणप्रतिष्ठाके पश्चात् श्रीमहाराजजीने अपना रेशमी वस्त्र प्रसादरूपसे मुझे ही दे दिया । शिवरात्रिको सारी रात जागरण होता रहा । कीर्तन और पदगायन होते रहे तथा कविरत्न पं० अखिलानन्दजीका प्रतिभाशाली भाषण हुआ । श्रीमहाराजजी सारी रात एक आसनसे बैठे रहे । इस प्रकार आपकी कृपासे बड़ो धूमधामसे यह कार्य सम्पन्न हुआ ।

संकटमें सहायता

(१)

सन् १९३० की बात है । श्रीमहाराजजी वृन्दावनमें श्रीजीकी

छोटी कुञ्जमें विराजते थे । उस समय मेरे बड़े दामाद पाण्डेजी सहारनपुरमें अत्यन्त रुग्णावस्थामें थे । डाक्टर जोशीकी चिकित्सा चल रही थी । मैं श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ वृन्दावन जानेका निश्चय कर चुका था । उसके एक दिन पूर्व सहारनपुरसे तार मिला—'शीघ्र आओ, हालत खराब है ।' सगे-सम्बन्धियोंका कहना था कि पहले सहारनपुर जाओ, पीछे वृन्दावन जाना । परन्तु मैंने पहले वृन्दावन जानेका ही निश्चय रखा और श्रीमहाराजजीसे मिलनेपर उन्हें पाण्डेजीका समाचार सुनाया । बाबा बोले. "कोई चिन्ता मत करो, कल चले जाना ।" अतः रात्रिको श्रीमहाराजजीकी सेवामें रहकर दूसरे दिन मैं सहारनपुर पहुँचा ।

वहाँ पाण्डेजीकी दशा बहुत खराब देखी । शौच बड़े कष्टसे राद और खूनसे मिला होता था । अफरा (पेट फूलना) इतना अधिक था कि डाक्टरोंने पेटपर पट्टियाँ चढ़ा रखी थीं । बार-बार एनिया द्वारा शौच कराना पड़ता था । तीन-तीन, चार-चार घंटेके अन्तरसे दारुण उदरशूलका आक्रमण होता था । डेढ़ महीनेसे अन्न सर्वथा बन्द था, केवल फलोंके रस और दूधसे ही निर्वाह हो रहा था । वहाँ पहुँचकर जब रात्रिको मैं सोया तो स्वप्नमें बाबाने दर्शन दिया और बोले, "अफीम और शुद्ध कुचलाका प्रयोग करो, इससे अच्छा हो जायगा ।" सौभाग्यसे ये दोनों ओषधियाँ मेरे पास मौजूद थीं । प्रातःकाल मैंने इन दोनों ओषधियोंकी एक-एक चावल बराबर मात्रा निश्चय करके दवा तैयार तो कर ली, परन्तु रोगी को देनेमें मेरी बुद्धि सहमत नहीं हुई । मेरी बुद्धिके अनुसार तो ये दोनों चीजें रोगके सर्वथा प्रतिकूल थीं । इसी सोच-विचारमें सारा दिन बीत गया, परन्तु मैं दवा न दे सका । रात्रिके नौ बजे पाण्डेजीने मुझसे पूछा कि आप दवा क्यों नहीं दे रहे हैं ? मैंने उनसे सब बात स्पष्ट कह

दी। पाण्डेजी महात्माओंमें श्रद्धा रखते हैं। वे बोले, "यदि किन्हीं महात्माने कहा है तो मुझे विष भी दे दीजिये।" अब मुझे चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं रहा। रात्रिको नौ बजे मैंने एक मात्रा ओषधि दी। उसके आधा घण्टे बाद उन्हें पाँच बार ऐसी अपानवायु खुली कि उनका पेट बिलकुल हल्का हो गया। तत्पश्चात् वे सो गये और उन्हें बड़ी गहरी नींद आयी। प्रातःकाल जगनेपर जहाँ और दिन एनिमाके द्वारा शौच उतारा जाता था वहाँ स्वयं ही हाजत हुई और एक मोटी गाँठ निकली। उससे शरीर एकदम हल्का हो गया तथा चित्त प्रसन्न और शरीर स्वस्थ होने लगा। प्रतिदिन केवल एक बार वही ओषधि देता रहा और उसीसे वे सात-आठ दिनोंमें पूर्णतया स्वस्थ हो गये। जब मेरे सामने वे सब कुछ खाने-पोने लगे तो मैं चला आया।

इस घटनासे यह बात जानी जाती है कि श्रीमहाराजजीको ओषधियोंका बहुत अच्छा ज्ञान था, जिसे देखकर अच्छे-अच्छे वैद्य और डाक्टर चकित हो जाते थे। परन्तु वे इस बातको किसीपर प्रकट नहीं करते थे और न उन्हें इसका अभिमान ही था।

(२)

सन् १९३५ की घटना है। मेरे छोटे भाई लक्ष्मणवल्लभ मेरठमें चिकित्सा कार्य करते थे। एंक दिन उनकी स्त्री समस्त कार्योंसे निवृत्त होकर रात्रिको अपने कमरेमें सोई और प्रातःकाल अचेतन अवस्थामें मिली। माताजीने उसे बहुत जगाया, किन्तु वह कुछ न बोली। आठ-दस दिनतक खाना-पीना आदि समस्त कार्य बन्द रहा। भाईने बहुत कुछ अपनी ही चिकित्सा की। परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। उसके निमित्त दुर्गापाठ और महामृत्युञ्जयका जप भी कराया, सयानों-

से अनेकों उपाय कराये, परन्तु किसीका कोई प्रभाव न पड़ा। वह दिन-रात चुप पड़ी रहती थी, कुछ भी नहीं बोलती थी। न जाने किस आधारपर उसके प्राण टिके हुए थे।

एक महीने बाद माताजी उसे यहाँ घरपर ले आयीं। मैंने भी शिरोवस्ति आदि जितने उपाय हो सकते थे वे सभी किये तथा भूतोन्मादादिकी चिकित्सा भी की। किन्तु सभी व्यर्थ हुआ। उन दिनों श्रीमहाराजजी कर्णवासमें विराजते थे। एक दिन जब मैं उनके दर्शनार्थ जाने लगा तो माताजीने उन्हें बहूकी हालत निवेदन करनेके लिये कहा। मैंने कर्णवास पहुँचकर उन्हें सब हाल सुनाया। सुनकर आप शांत स्वरमें बोले, "तुम चिकित्सा करो।" मैंने प्रार्थना की, "मैंने तो जो उत्तमसे उत्तम चिकित्सा हो सकती थी सब कर ली, पर सब निष्फल हुई।" इस पर थोड़ी देरके लिये आप ध्यानमग्न हो गये और फिर कुछ भी उत्तर न देकर चुप रह गये। मैंने शामको घर लौटकर सब समाचार सुनाया। उससे सबको यह निश्चय हो गया कि अब इसका जीवन समाप्त होनेवाला है।

दस-बारह दिन पश्चात् श्रीमहाराजजी अनूपशहर पधारे और सीधे मेरे घर चले आये। रोगिणी खाटपर अचेत पड़ी थी। श्री-महाराजजीने अपने हाथके अँगूठे और अँगुलियोंसे उसके सिर और गर्दनके पिछले भागको दबाकर कहा, "खड़ी हो जा।" और वह तुरन्त चारपाईसे उठकर खड़ी हो गयी तथा कहने लगी, "मैं इस जीवनसे अत्यन्त दुःखी हूँ, मेरा उद्धार करो।" श्रीमहाराजजी बोले, "तेरे सामने चतुर्भुजमूर्त्ति भगवान् श्रीकृष्ण खड़े हैं, क्या तुझे उनके दर्शन नहीं हो रहे ?" वह तुरन्त बोली, "हाँ, महाराज ! दीख रहे हैं।" उसी समय उसका कान्तिहीन चेहरा श्रीयुक्त होकर खिल उठा।

वह श्रीमहाराजके चरणोंमें गिर पड़ी। महाराजजीने पूछा, "क्या भोजन करेगी?" वह बोली, "जो आप देंगे।" तब महाराजजीने कहा, "जा, पहले गंगास्नान करके पूर्णेश्वर महादेवके दर्शन कर आ!" जब वह स्नान और दर्शन करके लौटी तो श्रीमहाराजजीने उसे अपने हाथसे कटोरेमें दाल-चावल खानेको दिये और उसने उन्हें पा लिया।

इसके पश्चात् जब महाराजजी भिक्षा करने के लिये दूसरी जगह चले गये तो मैंने माताजीसे पुछवाया कि उस समय तुझे क्या मालूम हुआ। उसने बताया कि जब मुझे किसीने खड़ा किया तो मुझे आग लगता हुआ धूआँका पहाड़-सा दिखायी दिया। फिर उसके भीतर एक प्रकाशमय मण्डलमें चतुर्भुज मूर्त्तिके दर्शन हुए और फिर वही मूर्त्ति मुझे श्रीमहाराजजीके रूपमें दिखायी दी। उसके बाद मैं होशमें आ गयी।

(३)

सन् १९४१ के कार्तिक मासकी बात है। मेरे नितम्बके सन्धि-स्थलके दोनों पार्श्वोंमें दो ग्रन्थियाँ उत्पन्न हुईं। प्रारम्भमें पाँच-छः दिन तो कोई कष्ट नहीं हुआ; पर पीछे वेदना आरम्भ हुई और उसका भयङ्कर रूप हो गया। डाक्टरों को दिखानेपर मालूम हुआ कि फोड़ा बन गया है, ओपरेशन कराना होगा। मेरी बहिनने अपने लड़के को श्रीमहाराजजीके पास भेजकर पुछवाया कि ऐसी दशामें क्या किया जाय। उनसे यह भी कहलाया कि इस समय भैयाका दुर्गापाठ भी छूट गया है। श्रीमहाराजजीने उसे तुरन्त वापिस भेज-कर कहलाया कि वहाँ (अनूपशहर) के डाक्टरोंसे चिकित्सा न कराकर दिल्ली चले जायँ और वहीं ओपरेशन करावें। दुर्गासप्त-

शतीका पाठ छोड़ें नहीं । चौथे अध्यायमें देवताओंने जो भगवतीकी स्तुति की है वह उन्हें याद ही है । चारपाईपर लेटे-लेटे उसीका पाठ कर लिया करें । ओपरेशन अमुक दिन अमुक समयपर करावें ।

श्रीमहाराजजीकी आज्ञानुसार मैं तुरन्त कारद्वारा दिल्ली गया । वहाँ डाक्टर पाण्डेने देखकर कहा कि फोड़ा गुदासे केवल आधा इञ्च अलग रह गया है । यदि दो दिनकी भी देरी हो जाती तो फिर मेरे हाथकी बात न रहती । आजही ओपरेशन होना चाहिये । पर मैंने श्रीमहाराजजीके बतलाये समयपर दूसरे दिन के लिये सहमत कर लिया । नियत समयपर जब मुझे मेजपर लिटाया गया तो मैं जीवनसे निराश हो चुका था; अतः मन ही मन श्रीभगवतीकी स्तुति-का पाठ करने लगा । सात श्लोकोंका पाठ कर चुकनेपर मैं ईथरके प्रभावसे अचेत हो गया । अचेत होनेके पूर्व एक अलौकिक प्रकाशके अन्दर किसी दिव्य मूर्त्तिने, जिसे मैं ठीक-ठीक पहचान नहीं सका, मुझे गोदमें ले लिया। ओपरेशनमे ३५ मिनट लगे। उसके पश्चात् जब मुझे स्ट्रेचरपर कमरेमें लेजाया जा रहा था अचेतावस्थामें ही मैंने पुनः पाठ आरम्भ कर दिया और दस मिनटतक वह पाठ होता रहा । ज्योंही अध्यायकी समाप्ति हुई कि मुझे चेत हो गया और मैं सबको पहचानने लगा ।

इसके चार-पाँच दिन बाद मेरी पत्नी महाराजजीको सब समा-चार सुनानेके लिये वृन्दावन गयीं । वहाँ बहिनजी आदिसे उन्हें मालूम हुआ कि ओपरेशनके दिन ११ बजेके पश्चात् श्रीमहाराजजीने कुटियाके किवाड़ बन्द कर लिये और भिक्षाके लिये कह दिया कि आज मेरी तबियत ठीक नहीं है । उस दिन प्रायः ढाई घण्टे बाद आपने पट खोले थे । हम लोगोंने जब बहुत आग्रह किया तब आपने

बतलाया कि आज वैद्यजीपर महान् संकट था। मैंने बहुत सोचा, पर कोई संकल्प उदय नहीं हुआ। आखिर मैंने उन्हें भगवतीकी गोद-में समर्पित कर दिया।

अभी मैं अस्पतालहीमें था कि वृन्दावनके गीताजयन्ती उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये माँ श्रीआनन्दमयी दिल्ली पधारीं। मेरी लड़की उनकी परम भक्ता है और वे भी उसपर कृपा करती हैं। उसने दिल्लीमें माताजीका दर्शन किया और अपने आनेका कारण मेरी अस्वस्थताका सब समाचार माँको सुनाया। साथ ही प्रार्थना की कि इस समय वे तो उठ नहीं सकते, परन्तु आपका दर्शन चाहते हैं। माँने कहा, "उनका तो दूसरा जन्म हुआ है। माँ भगवतीने ही उनके प्राण बचाये हैं। मैं अभी तो वृन्दावन जा रही हूँ, लौटती बार आऊँगी।" लौटती बार माँ कृपा करके अस्पतालमें ही पधारीं और मुझे दर्शन भी दिये।

इन घटनाओंसे श्रीमहाराजजीकी योगशक्ति तथा उनकी कृपा-लुताका पता चलता है कि वे समय-समयपर किस प्रकार अपने शरणागतोंकी रक्षा करते थे।

पं० श्रीलालजी याज्ञिक, अनूपशहर

प्रथम दर्शन

मैं एक दिन भेरिया (भृगुक्षेत्र) में पूज्यपाद श्रीअच्युत मुनिजीके पास आचार्यकृत शतश्लोकी पढ़ रहा था। उसी समय श्रीउड़िया बाबाजी महाराज वहाँ आये और बैठ गये। पाठ समाप्त होनेपर श्रीअच्युतमुनिजीने मुझसे गंगाजीसे कमण्डलु भर लानेके लिये कहा और पाँच-सात मिनटमें ही मैं गंगाजल भर लाया। उतनी देरमें बाबासे उनकी बातें हो गयीं। महाराजने मुझसे कमण्डलु लेकर एकान्तमें कहा, 'ये ब्रह्मनिष्ठ हैं, तू इनसे बात कर ले।" इसके सिवा पाँच-सात मिनटमें बाबासे उनकी जो बातें हुई थीं वे भी मुझे बतायीं।

श्रीअच्युत मुनिजी कहा करते थे कि मुझे सगुण-साक्षात्कार नहीं हुआ है। परन्तु बोधवान् पुरुषकी पहचान मुझे है। मैं पाँच-सात मिनटकी बातसे ही जान लेता हूँ कि यह पुरुष बोधवान् है या नहीं। उन्होंने इसी प्रकार और दो पुरुषोंको भी बोधवान् बताकर मुझे उनके पास भेजा था। उनमें से एक थे श्रीज्ञानीजी, जो काशीमें श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरके समीप मठाधीश थे और दूसरे थे हरि-विट्ठलजी, जो काशीमें ही वरुणाके पास आदिकेशवके समीप वटवृक्षके ऊपर कुटी बनाकर रहते थे।

तभीसे महाराज श्रीउड़ियाबाबाजीके प्रति मेरी अत्यन्त श्रद्धा हो गयी और वह अन्ततक वैसी ही बनती रही। पूज्य बाबा ज्ञानी

थे—यह तो श्री अच्युत मुनिजीसे ही सुना था। इसके अतिरिक्त वे ध्यानी, उपासक और मन्त्रशास्त्रके भी ज्ञाता थे। वे कहा करते थे, "भैया, इस समय जो अपनेको ज्ञानी समझते हैं वे ध्यानकी आवश्यकता नहीं मानते; परन्तु प्राचीन महात्मा तो ध्यानका बहुत आग्रह रखते थे और मैं भी वैसा ही मानता हूँ।" उनके ध्यानकी पद्धति भी विलक्षण थी। मुझे बहुतसे महात्माओंके सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे अजपा जाप, नाद अथवा साक्षीभावके चिन्तनका उपाय बताते हैं, किन्तु पूज्य बाबा चित्तवृत्तियोंके साक्षी रहनेके उपायकी अपेक्षा भी देहको दृश्यरूपसे देखनेके साधनको विशेष महत्व देते थे और यही उनके साधनकी पद्धति थी। 'कल्याण' में शाम्भवी मुद्राको ही उन्होंने ध्यानका सर्वोत्तम उपाय बताया है, जिसके विषयमें उन्होंने यह श्लोक उद्धृत किया है—

अन्तर्लक्ष्यबहिर्दृष्टिः निमेषोन्मेषवर्जिता ।
सा भवेच्छाम्भवीमुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥*

पूज्य बाबा कहीं भी बैठे हों, अधिकतर ध्यानकी स्थितिमें ही रहा करते थे। मेरा विश्वास है उनकी पद्धतिके अनुसार जो साधन करेगा उसे अवश्य लाभ होगा। मैंने उनमें आसनकी सिद्धि देखी। उन्हें ध्यानावस्थामें भी देखा। उनकी ध्यानमुद्रासे उनके समीप बैठनेवाले पुरुषोंपर भी प्रभाव पड़ता था। अतः बाबा ध्याननिष्ठ ज्ञानी थे और उनका कथन था कि बिना ध्याननिष्ठ हुए ज्ञाननिष्ठा नहीं बनती।

वे देवीके उपासक भी थे। बहुत लोग तो थोड़ी-सी ज्ञानचर्चा

*जिसमें लक्ष्य भीतरकी ओर रहता है, परन्तु निमेषोन्मेषसे रहित दृष्टि बाहरकी ओर रहती है और वह सम्पूर्ण शास्त्रोंमें गुप्त शाम्भवी मुद्रा है।

सुनकर ही सगुण उपासना छोड़ देते हैं, परन्तु वे तो प्रायः अन्तिम समयतक दुर्गासप्तशतीका पाठ करते थे। सांसरिक कष्ट पड़नेपर वे लोगोंको दुर्गाके विविध मन्त्रोंका जाप बतलाया करते थे। वमनोई (जिला अलीगढ़) के ठाकुर साहबके आदमियोंपर एकबार एक पुरुषको मार डालनेका अभियोग लगा। ठाकुरानीजीकी श्रीमहाराजमें बहुत श्रद्धा थी। उन्होंने आपसे प्रार्थना की। तब आपने श्रीदुर्गाका अनुष्ठान कराया। फलस्वरूप ठाकुरसाहबके आदमी छूट गये और विपक्षियोंको सजा हो गयी। मेरे बच्चोंको भी एक प्राचीन मन्त्रका प्रयोग और दुर्गापाठ करते रहनेका आदेश दे गये हैं। श्रीबाबाके लीलासंवरणके तीन दिन पूर्व मैं वृन्दावनमें ही था। जब विदा होने लगा तब मैंने पूछा कि उस मन्त्रका कितना जाप करना चाहिये? आपने कहा, "जितने अक्षर हैं उतने लक्ष जाप होना चाहिये।" यही उनकी अन्तिम बात थी। वे प्रायः सोलह नामोंवाले महामन्त्र, द्वादशाक्षर मन्त्र और पञ्चाक्षर शिवमन्त्रका उपदेश दिया करते थे। इस प्रकार वे उपासक और अच्छे मन्त्रशास्त्रज्ञ भी थे। वे कहते थे कि हमारे कुलमें दो सौ वर्षसे दुर्गाकी उपासना चली आ रही है।

अनूपशहरमें जब श्रीमहाराजजी पधारते तो प्रातःकाल मेरे मकानपर ही वेदान्तसम्बन्धी प्रश्नोत्तर होते थे। उस समय मकानका दरवाजा वन्द कर दिया जाता था। वहाँ जिज्ञासुओंके सिवा और किसीको नहीं बैठने देते थे। उस समयका-सा सत्संगका सुख मुझे कभी नहीं मिला। एक-दो बार श्रीअच्युतमुनिजीकी नौकामें रातके तीन-चार बजे जब वे वेदान्त पढ़ाते होते, तो उस समय नावमें केवल तीनही व्यक्ति होते—श्रीअच्युत मुनिजी, श्रीउड़िया बाबाजी और मैं।

शान्त निशा, श्रीगंगाजीकी अद्‌भुत शोभा और उज्ज्वल चाँदनी छिटकी होती ! वे दिन मुझको आज भी याद आते हैं। पञ्चदशी, योगवासिष्ठ, जीवन्मुक्तिविवेक और श्रीमद्‌भागवतके बहुतसे श्लोक बाबाको कण्ठस्थ थे । परमार्थका सूक्ष्मप्रतिपादक करते हुए कभी-कभी वे उन श्लोकोंको कहा करते थे। इस श्लोकको वह बहुत बार कहा करते थे, यह जीवन्मुक्तिविवेकमें आया है—

'संशान्तदुःखमजडात्मकमेकरूपमानन्दमन्थरमपेतरजस्तमोयत् ।
आकाशकोशतनवोऽतनवो महान्तस्तस्मिन्पदे गलितचित्तलवावसन्ति ॥'

अर्थात् जिसमें दुःखका अत्यन्ताभाव है, जो चिन्मात्र एकरस, और आनन्दघनस्वरूप है तथा जिसमें रजोगुण और तमोगुणका लेश भी नहीं है उस पदमें वे देहातीत महापुरुष निवास करते हैं, जिनका आकाशकोश ही देह है और जिनकी चित्तकणिका विलीन हो गयी हैं अर्थात् जो अमनीभावको प्राप्त हो गये हैं।

श्रीबाबाने मुझे सुनाया कि ब्रह्मचर्यावस्थामें मैं एक सहस्र गायत्री नित्यप्रति जपता था। एक लोटेमें अरहरकी दाल चढ़ा देता और चार-पाँच बाटियाँ बना लेता। यही मेरा भोजन था। उसके पश्चात् संन्यास लेकर मैंने तत्त्वदर्शी एवं समाधिनिष्ठ गुरुकी बहुत खोज की। एक बार मैं गंगा तटपर विचर रहा था। वरुआ घाटके समीप मेरे मनमें विचार आया कि घर छोड़ा, सिर भी मुँड़ाया किन्तु वस्तुकी प्राप्ति न हुई। ऐसा सोचते-सोचते मैंने निश्चय किया कि गंगाजीमें कूद पड़ूँ। मैंने तूंबा गंगाजीमें फेंक दिया और स्वयं भी कूदनेको तैयार हुआ। परन्तु फिर हिचक हुई। विचार आया कि यों मरनेसे क्या लाभ ? विचार करते-करते सम्भव है अनुभव भी हो जाय। ऐसा सोचकर पास ही एक शिवमन्दिरमें जाकर लेट गया।

तन्द्रा-सी आ गयी। । उसी अवस्थामें मैंने देखा कि दो विरक्त परमहंस पधारे हैं । उनसे मेरा प्रश्नोत्तर होने लगा । वे मेरे प्रत्येक प्रश्नका बड़ा ही समाधानकारक उत्तर देते थे । अन्तमें उन्होंने मुझे दो श्लोक याद रखनेको कहा—

'नेति नेतीति नेतीति शेषितं यत्परं पदम्
निराकर्तुमशक्यत्वात्तदस्मीति सुखी भव ।।'॥
जडतां वर्जयित्वैतां शिलाया हृदयं च यत् ।
अमनस्कं महाबाहो तन्मयो भव सर्वदा ।।२।।*

वहाँ बरुआघाटमें ही श्रीज्ञानाश्रमजोसे आपकी भेट हुई । उनके पास रहकर आपने योगसाधन और ध्यानका अभ्यास किया । श्री-ज्ञानाश्रमस्वामीमें आपका गुरुभाव था । वे अद्भुत संयमी थे । बाबा कहते थे कि उनकी गति निर्विकल्प समाधितक थी । पूज्य करपात्री जो महाराजजीसे भी मैंने उनकी प्रशंसा सुनी थी । इस प्रकार बाबाको योगका भी अच्छा अनुभव था ।

अद्भुत क्षमाशीलता

एकबार रामघाटमें सत्संग हो रहा था । दो-तीन सौ आदमी बैठे हुए थे । मैंने अपनी पत्नीसे कहा, "तुम बाबासे प्रश्न करो कि गीतामें स्त्रियोंको पापयोनि क्यों लिखा है ?" उसने प्रश्न किया । वहाँ पण्डित तृषारामजी भी बैठे हुए थे । वे शास्त्रोंके प्रचण्ड विद्वान् थे । वे ही मुझे उत्तर देने लगे । बीच-बीचमें बाबा भी कुछ कह देते

---

*स्थूल सूक्ष्म और कारण तीनों देहोंका निषेध करनेपर जो परमपद निषेधके योग्य न होनेके कारण बच रहता है वही मैं हूँ—ऐसा जानकर सुखी हो जा ।।१।। [निषेध करनेपर] शिलाकी घनताके समान जो जड़ता प्राप्त होती है उसे त्यागकर हे महाबाहो ! अमनस्क (मननहीन) होकर सर्वदा उसी स्थितिमें स्थित रहो ।।२।।

थे। मुझे उस समय ज्वर चढ़ा हुआ था। उसके वेगमें मुझे ऐसा लगा कि पण्डितजी और बाबा जो उत्तर दे रहे हैं उसका पूज्यपाद भाष्यकार भगवान् शंकरके सिद्धान्तसे विरोध है। वह मुझे सहन नहीं हुआ और मेरे मुखसे निकल गया कि भाष्यकारके विरुद्ध मुझे किसीका मत प्रिय नहीं है, ऐसी बात मैं किसी भी पुरुषकी माननेको तैयार नहीं हूँ। पं० तृषाराम भी आचार्यके परम भक्त थे। मैं तो उनके सामने कुछ भी नहीं था। बाबा तो महापुरुष थे ही। सभा उठनेपर मैंने श्रीमहाराजजीसे क्षमा माँगी। तब आप बोले, "नहीं, भाष्यकारके प्रति तेरी श्रद्धाको देखकर हम प्रसन्न हैं। भाष्यकारके तर्क और युक्तियाँ अकाट्य हैं। हमलोग भी उन्हींके वचनोंमें श्रद्धा रखते आये हैं।" बाबाके इन शब्दोंसे यह निश्चय होता है कि उनका चित्त कितना शान्त था। मैंने गीताके 'यस्मान्नोद्विजते लोको लोका-न्नोद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः' इस श्लोक-को बाबाके जीवनमें ही चरितार्थ होते देखा है। वे एक अलौकिक महा-त्मा थे। उनमें मेरी और मेरे परिवारकी बहुत श्रद्धा थी। महात्मा लोग अलौकिक गुणसम्पन्न हुआ करते हैं। उन्हें पहचानना बहुत कठिन है। मुझे तो अभिमान-सा रहता था कि बाबा मुझसे बहुत प्रेम करते हैं।

वाञ्छाकल्पतरु

एक दिन मेरे यहाँ श्रीमहाराजजीका पूजन हो रहा था। घरके तथा आस-पासके बच्चे बैठे हुए थे। मुझसे मेरे सबसे छोटे पुत्र मधु-सूदनने कहा कि मुझको बाबासे कुछ दिलवाओ। मैंने कहा कि तुम ही क्यों संकोच करते हो, स्वयं पूछ लो। उसने बाबासे कहा, "महाराज! मुझे एक ऐसा मन्त्र दीजिये जिससे लक्ष्मीकी प्राप्ति हो।" श्रीमहाराजजीने कह दिया, "अच्छा, तुमको ऐसा ही मन्त्र देंगे।" सब सुनकर चकित रह गये। श्रीमहाराजजी सेठ गौरीशंकरकी

धर्मशालामें ठहरे हुए थे। मैं स्वयं मधुको लेकर पहुँचा और उससे कह दिया कि ये फल महाराजके सामने रखकर वे जो कुछ कहें ध्यानसे सुन लेना। बाबाको बहुत आदमी घेरे रहते थे। उनसे एकान्तमें बात करना कठिन था। पर किसी तरह मैं उन्हें एकान्त कमरेमें ले आया। वहाँ वे, मैं और मधु तीन ही थे। मधुने बाबासे कहा, "मैंने सहसा उस समय लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये मन्त्र माँगा था। मेरी वास्तविक इच्छा तो यह है कि मैं अच्छा लेखक बनूँ।" श्रीबाबा बोले, "मैं तुम्हें ऐसा मन्त्र देता हूँ जिससे तुम्हारी दोनों इच्छाएँ पूर्ण होंगी।" ऐसा कहकर उसे मन्त्र बता दिया।

अँग्रेजी पढ़नेवालोंको मन्त्रपर विश्वास तो होता नहीं। फिर भी थोड़े दिन उसने उस मन्त्रका जप किया। इससे उसके एक-दो लेखोंपर शिक्षाविभागकी ओरसे उसे पारितोषिक मिला। फिर उसने भारतवर्षमें सबसे बड़ो परीक्षा आई० ए० एस्० पास की। आज वह पाँचसौ रुपया मासिकपर बम्बईमें इनकमटैक्स आॅफिसर है। इसे बाबाकी कृपा समझिये अथवा मन्त्रका प्रभाव।

बुद्धिसाम्य

मेरी बड़ी बहिन, जिसकी आयु प्रायः पचहत्तर वर्षकी है, वल्लभसम्प्रदायमें दीक्षित है। वह बाबासे मेरी शिकायत किया करती थी कि महाराज! यह न जाने घट,पट,मठ, रज्जु-सर्प और चाँदी-सीपी क्या करता रहता है। हमारे यहाँ तो लालाको सेवा, पूजा और कथा कीर्तनका महत्त्व है। इसमें कौन बात ठीक है? श्रीमहाराज उससे कहते, "यह तो मूर्ख है, तुम इसकी बात मत सुनना। लालाकी ही बात ठीक है। तुम यही करती रहो।" इस प्रकार महाराज जिसकी जैसी श्रद्धा होती उसे उसीमें दृढ़ कर देते थे। उसे बदलनेका प्रयत्न कभी नहीं करते थे।

पं॰ श्रीबद्रीप्रसादजी, अनूपशहर

बाबाका प्रथम दर्शन मैंने अनूपशहरमें रामशंकरजीके बागमें किया था। एक दिन रामशंकरने ही मुझे बाबाके आनेकी सूचना दी थी। मैं बागमें गया और उनका दर्शन किया। उस समय कोई बातचीत नहीं हुई। पीछे धीरे-धीरे आपके साथ मेरा सम्पर्क बढ़ता गया। फिर तो जब-जब बाबा अनूपशहर पधारते तो मैं उनके दर्शनोंको जाता ही, वे भी कृपा करके मेरे यहाँ अवश्य पधारते। इस प्रकार प्रायः पैंतीस वर्ष बाबाके साथ मेरा प्रेम रहा।

बाबा सचमुच महान् पुरुष थे। उनमें नास्तिकोंके हृदयोंको भी आकर्षित कर लेना और दूसरेके चित्तको लय करके उन्हें बोलनेसे रोक देना आदिकी सिद्धियाँ मैंने अनुभव की थीं। वे नास्तिकोंके यहाँ भी चले जाते थे। उनके पास बैठते और बातचीत करते थे। एक दिन मैंने कहा, "बाबा! आप ऐसे लोगोंके यहाँ भी चले जाते हैं?" आप बोले, "इसमें मेरी क्या हानि है? क्या जाने उनका कैसे कल्याण हो जाय।" उनकी ऊँच-नीचपर दृष्टि नहीं थी। जीवोंका कल्याण कैसे हो—इसीपर उनकी दृष्टि रहती थी। वे मुसलमानोंसे भी घंटों बातें करते रहते थे। उनका चित्त कभी किसीपर बिगड़ता नहीं था।

एक बार चित्तोड़गढ़ किलेमें भगत्कृपासे मुझे चालीस श्लोक स्फुरित हुए। वे श्लोक मैंने बाबाको सुनाये। उन्होंने आज्ञा दी कि इसकी भाषाटीका लिखो। चौदह वर्ष परिश्रम करके अनेकों पुराण तन्त्र एवं शास्त्रादि अवलोकन करके उनकी टीका लिखी गयी। तब

बाबाने चार महीने लगातार अनूपशहरमें रहकर वह सम्पूर्ण ग्रन्थ सुना। और उसपर भक्तलक्षण-प्रतिपादक एक श्लोक लिख दिया।

इसी प्रकार एक बार आप मेरे यहाँ आये और श्रीमद्भागवत एकादशस्कन्धका एक श्लोक दिखाकर बोले, "पण्डितजी! इस श्लोकका क्या अर्थ है?" मैं समझ गया। उनका भाव था—भगवान् कहते हैं कि सूर्य, अग्नि, जल और गुरु आदिमें मेरी पूजा करे।

एक बार मैंने बाबाको श्रीद्वारिकाधीशजीका प्रसाद दिया। जब वे पाने लगे—मुझे उनसे भय तो लगता नहीं था—मैंने सीधे कहा, "बाबा! आपके मुखमें भगवत्प्रसाद है, सच-सच कहो, गोवर्धनमें मेरी कुटियापर कब चलोगे?" वे बोले, "बस, यहाँसे उठते ही अवश्य चलूँगा।" उसके कुछ ही दिन पश्चात् आप अकस्मात् मेरी कुटियापर पहुँच गये। साथमें एक सेवक था। पीछेसे पचासों भक्त भी आ गये। आप बोले, "पण्डितजी! आप तो केवल मेरे लिये मूँगकी दाल और रोटी बनवा देना, ये सब अपना प्रबन्ध कर लेंगे।" वैसा ही हुआ। रात्रिमें नत्थीलाल मास्टरने तीन कनस्टर दूध मँगाकर सबको पिलाया।

रिछपाल देवी नामकी एक भक्ता हैं। एक दिन उनके मनमें संकल्प हुआ कि कल मैं भी बाबाको फूलमाला पहनाऊँगी। दूसरे दिन जब बाबा आये तो वैसे तो रोज सीधे मेरे पास चले आते थे, परन्तु आज मुड़कर रिछपाल देवीके पास चले गये और बोले, "ला, फूलमाला पहना।" संयोगवश उसे उस दिन फूल मिले नहीं थे, और बाबा पहुँच गये। आखिर उसने तुलसीकी कण्ठीमाला

पहना दी। पास आनेपर मैंने पूछा, "बाबा ! आज यह क्या लीला है ?" बोले, "यह फूलमाला पहनाना चाहती थी, सो इसके पास चले गये। इसने तुलसीकी कण्ठी पहना दी।"

बाबाका स्वभाव अत्यन्त करुणामय और प्रेमपूर्ण था। एक बार मैं आपके दर्शनार्थ कर्णवास गया। पर आप कुटियामें नहीं मिले। मैंने किसीसे पूछा, "बाबा कहाँ हैं ?" उसने उत्तर दिया, "उस कोठरीमें हैं।" मैंने जाकर देखा कि रामदासको १०३ डिग्री बुखार चढ़ा हुआ है और बाबा उसका सिर अपनी गोदमें लेकर हाथ फेर रहे हैं। उनके इस आचरणका मेरे मनपर बड़ा सुन्दर प्रभाव पड़ा।

रामशंकर मेरा शिष्य था। वह मुझसे पढ़ा था। परन्तु आगे चलकर उससे मेरी अनबन हो गयी। कई वर्षोंतक आपसमें हमारी बातचीत बन्द रही। अन्तमें रामशंकर बीमार पड़ा। एक दिन बाबा मेरे पास आये और बोले, "पण्डितजी ! आज रामशंकरका शरीर नहीं रहेगा, चलो।" मैं उनके साथ हो लिया। उस समय ललिताप्रसाद और आनन्द ब्रह्मचारी आदि वहीं थे। मैंने श्रीमद्भागवतका पाठ रामशंकरको सुनाया और सचमुच थोड़ी ही देरमें उसका शरीर छूट गया। इस प्रकार ठीक अन्तिम समयपर बाबाने हमारे पारस्परिक मनोमालिन्यको निवृत्त करके रामशंकरकी सद्गतिका साधन उपस्थित कर दिया।

मास्टर श्रीहरिदत्तजी जोशी, अनूपशहर

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमा ।
चन्द्राच्चन्दनाच्चैव शीतला साधुसङ्गतिः ॥१॥

संसारमें चन्दन शीतल है और चन्दनसे भी अधिक शीतल चन्द्रमा है । परन्तु साधु-सन्तोंकी सङ्गति चन्दन और चन्द्रमासे भी बढ़कर शीतल होती है ।

यत्रापि तत्रापि गता भवन्ति हंसा महीमण्डलमण्डनाय ।
हानिस्तु तेषां हि सरोवराणां येषां मरालैः सह विप्रयोगः ॥२॥

हंस तो भूमण्डलकी शोभा बढ़ानेके लिये जहाँ-तहाँ जाते ही रहते हैं, [इससे उनकी कोई क्षति नहीं होती] । हानि तो उन सरोवरोंकी ही होती है जिनका हंसोंसे वियोग होता है । अर्थात् जिन्हें छोड़कर हंस अन्यत्र चले जाते हैं । तात्पर्य यह कि संतजन तो जहाँ जाते हैं वहींकी शोभा बढ़ाते हैं , किन्तु जिन स्थानोंको छोड़कर वे जाते हैं वे तो श्रीहीन हो ही जाते हैं ।

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥३॥

उपकार करना, प्रिय बोलना और निष्कपट प्रेम करना—यह सत्पुरुषोंका स्वभाव ही होता है । भला, बतलाओ तो, चन्द्रमाको किसने शीतल किया ? [अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा स्वभावसे ही शीतल है उसी प्रकार संतजन स्वाभाविक ही दूसरोंका उपकार करते हैं, प्रिय बोलते हैं और सबसे निष्कपट प्रेम करते हैं ।]

प्रथम दर्शन

पूज्य श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन मैंने अनूपशहरमें ही किया था। मैं श्रीप्यारेलालके साथ दक्षिणीस्वामीके दर्शनार्थ उनकी कुटी-पर गया था। सौभाग्यसे अकस्मात् श्रीमहाराजजी कहींसे विचरते वहाँ आ पहुँचे। यत्किञ्चित् सेवा और सत्संगका सुअवसर मिला। उस दिनसे जबतक आप वहाँ विराजे मैं नित्यप्रति आपके दर्शनार्थ जाता रहा। उस प्रथम दर्शनमें ही मेरे हृदयमें श्रीमहाराजजीके प्रति जो श्रद्धा-भक्तिका भाव उदित हुआ वह दिनों दिन बढ़ता ही गया। मैंने सद्गुरुरूपसे वरणकर उन्हें अपनी जीवन-नौकाका कर्णधार माना और उन्होंने भी मुझे अपना एक दीन दास जानकर अहैतुकी कृपा की। जब आप अनूपशहरसे चले गये तो मेरा हृदय उनके बिना बेचैन रहने लगा। सदैव एक अभाव-सा खटकता रहता। उसके कुछ काल पश्चात् आप सेठ रामशंकरजीके बागमें पधारे, तब मैंने दूसरी बार आपका दर्शन किया।

सेठ श्रीरामशंकरजी बड़े ही साधुसेवी और सत्संगी पुरुष थे। उन्होंने सद्गुरुकी प्राप्तिके लिये हरिद्वार-ऋषिकेश आदि कई तीर्थ-स्थानों की यात्रा की थी। श्रीमहाराजजीके दर्शन तथा सत्संगसे उन्हें बड़ा लाभ हुआ। उनकी प्रीति प्रशंसनीय थी। श्रीमहाराजजीके पास आनेपर वे परम भक्तिनिष्ठ हो गये थे।

श्रीमहाराजजी जबतक सेठजीके बागमें विराजे उनके पास दर्शनार्थियोंकी बड़ी भीड़ रहती थी। वहाँ कथा-कीर्तन और सत्संगका बड़ा सुन्दर सुयोग रहता था। मैं सदैव सरकारके दर्शनार्थ सेवामें उपस्थित होता था। उस समय अनेकों प्रश्नकर्ताओंके प्रश्नोंका उत्तर तो आप बिना प्रश्न किये ही दे देते थे। भक्त मुन्नालालजी

जिस समय सितारपर विनयपत्रिकाके पद गाते और रामशंकरजी उनकी व्याख्या करते तो बड़ा ही अपूर्व आनन्द उमड़ता था। इस प्रकार प्रायः एक महीनातक अनूपशहरवासियोंको अपने दर्शन और सत्संगका आनन्द प्रदानकर श्रीमहाराजजी एक रात्रिको सबको सोते छोड़कर चले गये। इससे सभी भक्तोंको बड़ा दुःख हुआ।

मेरी निष्ठामें व्यतिक्रम

मेरी श्रद्धा प्रारम्भसे ही भक्तियोगमें थी। इसलिये श्रीमहाराजजी मुझे सदैव हो भक्तिसम्बन्धी उपदेश दिया करते थे। परन्तु एक बार इस निष्ठामें कुछ व्यतिक्रम उपस्थित होनेका भी प्रसंग आ गया। उस समय श्रीमहाराजजीकी ही कृपासे मेरी रक्षा हुई। वह प्रसंग इस प्रकार है—

अनूपशहरमें एक मौनो महाराज रहा करते थे। मैं प्यारेलालजीके साथ उनके दर्शनार्थ जाया करता था। उनकी निष्ठा ज्ञानमार्गमें थी। उनके साथ सत्संग होते समय हम दोनोंको ऐसा अनुभव होता था कि श्रीमहाराजजी वहाँ उपस्थित हैं। एक रातको मुझे श्रीमहाराजजीने दर्शन दिया और निष्ठासम्बन्धी कुछ बातें भी कीं। परन्तु पीछे मुझे स्मरण नहीं रहा कि उन्होंने क्या निश्चय किया। मौनी महाराज जानते थे कि प्यारेलालजीतो बाबाके अनन्य भक्त हैं, अतः उनसे तो उन्होंने कुछ नहीं कहा। परन्तु मुझे नया समझकर उन्होंने ज्ञाननिष्ठापर जोर दिया। और मेरे हृदयपर उसका प्रभाव भी पड़ गया। मैंने अपनी निष्ठाके विषयमें श्रीप्यारेलालजीसे परामर्श किया तो उन्होंने भी कहा कि श्रीमहाराजजीके सिद्धान्तमें भो ज्ञानमें ही साधनाका पर्यवसान होता है। अतः मैं श्रीमौनी महाराजके आदेशा-

नुसार पारसभाग, विचारमाला एवं विचारसागर ग्रादि ज्ञानमार्गीय प्रक्रिया ग्रन्थोंका स्वाध्याय करने लगा।

इस प्रकार मैं ज्ञानगंगामें गोते लगा ही रहा था कि एक दिन प्यारेलालजीने यह शुभ संवाद सुनाया कि श्रीसरकारने तुम्हें याद किया है। बस, फिर क्या था ? सुनते ही मेरा मुरझाया हृदय हरा हो गया। उसमें सरकारके दर्शनोंकी उत्कण्ठा प्रबल हो उठी। सौभाग्यसे ग्रीष्मकालकी छुट्टियाँ थीं। मैं सीधा रामघाटको चल दिया। निष्ठामें परिवर्तन होनेके कारण मेरे हृदयमें उथल-पुथल मची हुई थी। रामघाट पहुँचकर मैंने सत्संगमण्डलमें श्रीसरकारका दर्शन किया। भक्तगण चारों ग्रोर वृत्ताकार बैठे हुए थे, सरकार कुछ प्रवचन कर रहे थे, इसलिये मैने दूरसे ही साष्टांग प्रणाम किया ग्रौर एक ग्रोर बैठ गया। सत्संगका विषय गम्भीर था, मैं शान्तिपूर्वक सुनता रहा।

सत्संग समाप्त होनेपर सरकारने सबको भोजन कराया ग्रौर स्वयं भी भिक्षा करके लेट गये। मैं बहिष्कृत-सा एक ग्रोर बैठा मनोराज्य करता रहा—'न जाने ऐसा कौन ग्रपराध हो गया जिससे ग्रबतक सरकारसे बातचीत करनेका ग्रवसर नहीं मिला ?' सब लोग सरकारसे ग्रपने-ग्रपने मनकी बातें कर रहे थे, परन्तु मैं चुपचाप बैठा था। धीरे-धीरे रातके बारह बज गये, परन्तु सरकार मुझसे एक शब्द भी नहीं बोले। सब लोग श्रीचरणोंमें प्रणाम करके विश्रामके लिये चले गये। मैं भी प्रणाम करके ग्रपने स्थानपर चला ग्राया, परन्तु नींद नहीं ग्रायी। मन चिन्तामें संलग्न था—'सरकार इतने रुष्ट क्यों हो गये, जो ग्रभीतक बातें नहीं कीं ?'

प्रातःकाल तीन बजे ही सरकार उठ बैठे। ग्रन्य भक्त भी जहाँ-

तहाँ बैठकर ध्यान करने लगे। पाँच वजे ज्ञानमार्गीय सत्संगी सरकारके पास जुट गये और ज्ञाननिष्ठापरक सत्संग होने लगा। मैं मन मारे चुपचाप सब सुनता रहा। सूर्योदय होनेपर सरकार भक्त-मण्डली सहित गंगास्नानको गये और स्नान करके एक वटवृक्षकी छायामें ऊँची वेदीपर विराज गये। मैं उद्विग्न हृदयसे गंगातीरपर सन्ध्योपासन कर रहा था। इतनेमें एक सेवकने आकर सूचना दी कि सरकार तुम्हें याद करते हैं। बस, मैं तुरन्त अपने भाग्यकी सराहना करता चल दिया और सरकारके आगे साष्टांग प्रणामकर चरणोंमें गिर पड़ा। सामने बैठनेकी आज्ञा हुई और मैंने आज्ञाका पालन किया।

तब सरकार मन्द मुस्कानसहित बोले, "अब तो तुम ब्रह्म हो गये हो?" मैं निरुत्तर होकर चुपचाप बैठा रहा। फिर बोले, "क्या तुमने विचारसागर अवलोकन कर जगत्को मिथ्या समझ लिया? क्या तुम तर्क-वितर्कमें प्रवीण हो गये? क्या तुम्हारा हृदय वज्रसे भी कठोर हो गया? क्या रामायण और भागवतके स्तुतिप्रकरणों-का संग्रह व्यर्थ हो गया?" इस प्रकार अनेकों प्रश्न सरकारने एक साथ ही किये? मुझसे इनका कुछ भी उत्तर देते न बना। मेरा हृदय करुण-क्रन्दन कर रहा था। बड़ा ही साहस करके बोला, "भगवन् आप सर्वज्ञ हैं, आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। मैंने आपकी स्वप्नाज्ञाकी भ्रान्तिसे ही ऐसा किया था। अब दीनदयालुकी जैसी इच्छा हो वैसा ही करनेके लिये यह दीन बाट जोह रहा है। यह आपकी शरण है। आपको छोड़कर इसका कोई अन्य आश्रय नहीं है।" श्रीसरकार तुरन्त बोले, "नहीं, नहीं, मैं तुम्हारे लिये ज्ञानमार्ग कभी उपयुक्त नहीं समझता। छठी कक्षाके विद्यार्थीको

एम० ए० में कैसे भर्ती किया जा सकता है ? कोमल हृदयवालोंके लिये तो भक्तिमार्ग ही उपयुक्त है ।" अब मेरे हृदयका बोझ हल्का हो गया और चित्तका समाधान भी । इसके बाद कभी-कभी हास्य-विनोदमें पूछा करते थे, "जोशीजी ! तुम ज्ञानी हो या भक्त ?" इसका उत्तर भला मैं क्या देता । मैं तो इसीमें अपना सौभाग्य समझता था कि इसी बहाने सरकारको इस दीन दासकी स्मृति आ जाती है ।

श्रीमहाराजजी कहा करते थे कि अपने स्वाध्याय ग्रन्थोंमेंसे एक-दो पद अथवा दस-पाँच श्लोक ऐसे अवश्य कण्ठस्थ कर लेने चाहिये जिनका पाठ नित्यप्रति अनिवार्य रूपसे कर लिया जाय । यदि घरमें शवभी पड़ा हो तो भी उन श्लोक या पदोंका मानसिक पाठ अवश्य कर ले ।

भक्त प्यारेलालपर कृपा

श्रीमहाराजजीके भक्तोंमें प्यारेलालजीकी श्रद्धा-भक्ति सराहनीय थी । श्रीमहाराजीके प्रति उनके जैसा प्रेम क्वचित् ही दिखायी देता है । मेरे साथ उनकी घनिष्ट मित्रता थी । हम दोनों सायंकालमें साथ-साथ वायुसेवनके लिये जाया करते थे। उस समय आपसमेंसत्संग-सम्बन्धी वार्तालाप अथवा साधु-महात्माओंकी चर्चा ही हुआ करती थी । उन्हें जिस प्रकार पूज्यपा दश्रीमहाराजजीके चरणोंकी प्राप्ति हुई वह प्रसंग भी उल्लेखनीय है । अतः यहाँ उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

एक बार अनूपशहरमें बाबा मस्तरामकी समाधिपर विरक्त महात्मा श्रीउग्रानन्दजी पधारे । संयोगवश हम भ्रमण करते हुए उधर जा निकले । हमने जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया ।

थोड़ी देर सत्सग होता रहा । उससे हम दोनों ही बहुत प्रभावित हुए । प्यारेलालजी तो नित्यप्रति ही उनके पास जाते और उनको सेवा-सुश्रूषा तथा सत्संग करते । फलतः उनके हृदयमें उन्हें गुरु-रूपसे वरण करनेका निश्चय करनेका संकल्प जाग्रत् हुआ । एक दिन इसके लिये उन्होंने उनसे प्रार्थना भी की । तब स्वामीजीने स्पष्ट शब्दोंमें कहा, "भैया ! तुम्हारे गुरु तो श्रीउड़ियाबाबा हैं, उन्हींके द्वारा कल्याण होगा ।" मालूम होता है कि उच्चकोटिके महात्माओंको इस बातका पता चल जाता है कि किसका कौन गुरु है, अतः समय आनेपर वे अधिकारी शिष्यको उसके वास्तविक गुरुके पास जानेकी सलाह देते हैं ।

अब प्यारेलालजी महाराजजीके दर्शनोंके लिये छटपटाने लगे । दैवयोगसे सुप्रसिद्ध महात्मा श्रीदक्षिणी स्वामी अनूपशहर पधारे । हम दोनों उनके दर्शनोंके लिये गये और सौभाग्यवश वहाँ पूज्य श्री-महाराजजी भी पधारे । दक्षिणी स्वामीजीने आगन्तुक महाराजजीकी भिक्षा और सेवा-सुश्रूषाके लिये प्यारेलालजीको आज्ञा दी । यद्यपि रात्रि बहुत बीत चुकी थी, तो भी प्यारेलालजीने कोई परवा न करके उसी समय मधुर पक्वान्न तैयार कराकर श्रीमहाराजजीको भिक्षा करायी । पीछे जब उन्हें यह मालूम हुआ कि रात्रिको उन्होंने जिन आगन्तुक महात्माको भिक्षा करायी है वे स्वामी श्रीउग्रानन्दजी द्वारा निर्दिष्ट मेरे गुरुदेव श्रीउड़ियाबाबाजी ही हैं तब तो उनके आनन्दकी सीमा न रही । प्यारेलालजीने सद्गुरु भावसे श्रीमहा-राजजीके चरण पकड़ लिये और ऐसे पकड़े कि जीवनपर्यंन्त उन्हीं चरणकमलोंके चञ्चरीक बने रहे ।

अनूपशहरनिवासियोंमें श्रीमहाराजजीका प्रथम भक्त होनेका

सौभाग्य सम्भवतः प्यारेलालजीको ही है। वे सामान्य स्थितिके व्यक्ति थे, परन्तु भक्ति-प्रेममें वे बहुतोंसे बढ़कर थे। श्रीमहाराजजीको बारम्बार आग्रह करके अनूपशहरमें लाना उन्हींका काम था। वे महाराजजीके भक्तोंकी भी सेवा करना अपना अहोभाग्य समझते थे। अच्छे-अच्छे लोगोंके मुखसे सुना है कि अनूपशहरमें महाराजजीका सच्चा प्रेमी तो प्यारेलाल ही था।

जिस समय प्यारेलालका अन्तिम समय आया श्रीमहाराजजी हरिद्वारमें थे। वे भला ऐसे समय अपने एकनिष्ठ भक्तको कैसे भूल सकते थे! प्रभुकी प्रतिज्ञा है कि कफ, वात और पित्तके दोषसे अंत समयमें यदि मेराभक्त मुझे भूल भी जाय तोमैंही उसे स्मरण कर लेता हूँ और उसे परमगति प्रदान करता हूँ।* प्यारेलालका श्रीमहाराजमें पूर्णतया भगवद्भाव था उन्होंने जीवनभर भगवान् मानकर ही उनकी सेवा की थी। अतः श्रीमहाराजजीने उनके अन्त समयपर अपने कर्त्तव्यका निर्वाह किया। उन्होंने हरिद्वारसे मास्टर मुंशीला-लके द्वारा संदेश भेजा—'प्यारेलालसे कहना कि अब सम्पूर्ण आसक्तियोंको त्यागकर रामायणके सुन्दरकाण्डका पाठ करावे।' बस, पाठ आरम्भ हुआ और उसकी पूर्ति होते ही प्यारेलालका शरीर शान्त हो गया।

इससे कुछ दिन पूर्व जब प्यारेलाल बीमार थे श्रीमहाराजजीने पूछा था, "प्यारेलाल! तुम्हें कोई चिन्ता है?" प्यारेलालने कहा, "महाराजजी! मेरे ऊपर ऋण हो गया है, उसीकी चिन्ता है।" इसपर श्रीमहाराजजीने उत्तर दिया, "तुम्हारा ऋण मैं चुकाऊँगा।

---

*कफवातादिदोषेण मद्भक्तो न च मां स्मरेत्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्॥

उसका भार मुझपर है, तुम चिन्ता छोड़ दो ।" इस प्रकार श्रीमहाराजजीने अन्त समयपर उन्हें सब चिन्ताओंसे मुक्त कर दिया था ।

प्यारेलालको श्रीमहाराजजीके विषयमें बड़े-बड़े अनुभव हुए थे । उन्होंने अपने इष्टमित्रोंको वे अनुभव सुनाये भी थे । यदि हमें वे ज्ञात हो सके तो फिर किसी समय उन्हें व्यक्त करनेका प्रयत्न करेंगे ।

पं० श्रीबद्रीशंकरजी मेहता, अनूपशहर

पूज्य श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन मैंने अनूपशहरमें अपने बाग-में ही किया था। मेरे बड़े भाई श्रीरामशंकरजी बड़े सत्संगी और बाबाके प्रधान भक्त थे। उन्हींको प्रार्थनासे बाबा बागमें पधारे थे। पीछे तो हमारा सारा ही परिवार बाबाका भक्त हो गता था। जिस समय मैंने प्रथम दर्शन किया महाराजजी सत्संगमें बैठे हुए थे। दर्शन करते हो उनके प्रति मेरे हृदयमें श्रद्धा और महत्त्वके भावकी जागृति हुई। तबसे वह भाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। मेरे लिये बाबा प्रायः यही उपदेश देते थे कि यथासम्भव मनको सदैव वशमें रखो और जिस साधना या साध्यमें अपनी श्रद्धा हो उसीमें दृढ़ निष्ठा रखो। जो कुछ सुनो उसे आचरणमें लानेकी चेष्टा करो, ऐसा नहीं कि सारा जीवन सुनते-सुनते ही बीत जाय। इसमें सन्देह नहीं, बाबाको अन्न-पूर्णा सिद्ध थी। कैसी भी महँगी हो, कितना भी कन्ट्रोल हो, उनके यहाँ अन्नकी कमी नहीं होती थी।

एक बार बाँधके उत्सवपर बाबा पधारे थे। हमलोग भी वहाँ गये थे। मेरा नियम था कि जब उनके पास रहता नित्य-प्रति प्रातः-काल उनका पूजन करता था। पूजनमें कुछ भोग भी अवश्य रहता था। संयोगवश एकदिन जब हम पूजनके लिये चले तो भोग नहीं था। मैंने पत्नीसे कहा कि कुछ भोग ले आओ। वे भीतर गयीं, पर कुछ भी न मिलनेसे खाली लौट आयीं। हम बिना भोग पूजा करना नहीं चाहते थे। इस फेरमें वे तीन-चार बार भीतर गयीं और लौट

आयीं। बाबा समझ गये कि आज ये किसी असमंजसमें हैं। बोले, "जाओ, जो कुछ हो वही ले आओ।" पर जब कुछ था ही नहीं तो वे लातीं क्या ? जब बाबाने बार-बार वही बात दुहरायी तो वे फिर गयीं। उन्हें एक हाँडी मिली। उनकी जानकारीके अनुसार उसमें था कुछ नहीं, परन्तु उसका मुँह कपड़ेसे बँधा था। उसे खोला तो एक दोनेमें कुछ मक्खन और मिश्री रखा मिला। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस समय माखन-मिश्री कहांसे आ गया; परन्तु बाबाकी लीला समझकर चुप हो रहे।

बाबाका स्वरूप और स्वभाव ऐसा था कि उन्हें जो जिस भावसे देखता था उसे वे वही दीख पड़ते थे। रामोपासक उन्हें रामरूपमें, कृष्णोपासक कृष्णरूपमें और शिवोपासक शिवरूपमें देखते थे। हम शिवोपासक थे, इसलिये उन्हें शिवरूपमें ही देखते थे। जब उनका शिवरूपसे शृङ्गार किया जाता था तो वे साक्षात् शंकरजी ही जान पड़ते थे। उनके सम्बन्धमें यह चौपाई चरितार्थ होती थो—

'निज निज रुचि सब रामहिं देखा। कोउ न जान कछु मरम विशेषा॥'

बाबामें मैंने यह विशेष गुण देखा कि वे गरीब-अमीरका भेद न करके दोनोंको समान रूपसे प्रेम करते थे। उनके ऐसे-ऐसे भी भक्त थे कि जो हजारों रुपये खर्च कर उनकी सेवा करते थे। परन्तु मेरे मनमें तो इस बातका दुःख रहता था कि हमलोग रुपया खर्च करके बाबाकी कोई सेवा नहीं कर पाते। तथापि वे हमपर भी उतनी ही कृपा करते थे जितनी हजारों रुपये खर्च करनेवालोंपर। उनमें यह भी विलक्षण बात थी कि वे किसीके मनको, किसीके भी भावको ठुकराते नहीं थे। यथासम्भव सभीके मनको रखनेका प्रयत्न करते थे। हमलोग गुजराती हैं और प्रातः-सायं चाय पीनेका अभ्यास

रखते हैं। उसके सिवा और भी जो वस्तु हमें खानी-पीनी होती है उसका पहले श्रीभगवान् या गुरुदेवको भोग लगाना आवश्यक समझते हैं। सर्दी हो या गर्मी जब भी हम बाबाके पास जाते तो प्रातःकाल चाय तैयार होने पर हम उनके लिये भी अवश्य ले जाते और वे उसे तत्काल पी लेते। उधर ठण्डाई पीनेवाले उन्हें ठण्डाई भी पिला जाते। वे लोग हमें चाय पिलानेको मना करते। कहते कि चाय और ठण्डाई दोनों पीनेसे बाबाको सर्दी-गर्मीका विकार हो जायगा। अतः आप चाय न पिलाया करें। मैं कह देता कि यदि वे मना करेंगे तो मैं नहीं पिलाऊंगा। इसी बातको लेकर एक भक्त एक दिन गंगातटपर मुझसे लड़ पड़े। मैंने बाबासे इस विषयमें कुछ नहीं कहा। परन्तु उन्होंने स्वयं ही जब वह ठण्डाई लेकर गये तो उन्हें फटकारा और कहा कि तुम उनसे लड़े क्यों? मैं ठण्डाई नहीं पीऊँगा, चाय ही पीऊँगा। ऐसी स्थितिमें यदि लोगोंके डरसे मैं चाय ले जानेमें झिझकता तो वे कहते, "आज चाय नहीं लाओगे क्या?" तब हम कैसे रुकते। कोई कुछ भी कहे ले ही जाते।

बाबामें संग्रहका स्वभाव बिलकुल नहीं था। चाहे जितना सामान आता वे उसे तुरंत बाँट देते थे। फल, मिष्ठान्न एवं वस्त्रादि कुछ भी हो, उन्हें जोड़कर रखनेका संकल्प कभी नहीं होता था। उन्हें कभी किसीने क्रोध करते नहीं देखा। मानापमानमें वे सदैव समान रहते थे। जब आप पैदल विचरते थे अथवा किसी स्थानपर ठहरते थे तो आपके दर्शनोंके लिये आस-पासके लोग अपने काम छोड़कर भी पहुँच जाते थे। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके विषयमें भी ऐसी ही बात कही जाती है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भगवान् रामके विषयमें भी ऐसा ही लिखा है—

'धाये धाम काम सब त्यागे। मनहुँ रंक निधि लूटन लागे॥'

मेरा तो ऐसा भी विश्वास है कि बाबा दूरके दृश्योंको भी एक स्थानपर बैठे-बैठे देख लेते थे। एक बार मैं कर्णवासमें आपके पास था। उस दिन प्रातःकाल घरमें (अनूपशहरमें) मेरा एक बच्चा मर गया। उधर जब उसका जल-प्रवाह किया जा रहा था मैं कर्णवासमें उसी समय गंगाजीमें दूध चढ़ा रहा था। वहाँसे आते ही बाबा मुझसे बोले, "जा, घर जा।" मैंने सोचा कि अभी तो कोई बात नहीं, न घरसे ही कोई आदमी आया है, फिर घर जानेके लिये क्यों कह रहे हैं ? पर आप फिर कहने लगे, "ले टिकट ले, घर चला जा।" आखिर सायंकालतक आदमी भी आ गया। जानेपर मालूम हुआ कि बच्चा जाता रहा।

एक बार मुझे कुछ मानसिक क्लेश था। मैंने इस विषयमें बाबासे कोई चर्चा नहीं की। पर वे स्वयं ही कहने लगे, "ये सब तो नाशवान् पदार्थ हैं, इनसे चित्त हटा लो। मन अपने-आप स्थिर हो जायगा। सुख-दुःख तो नदीकी धाराके समान हैं। ये सदा एक-से नहीं रहते।" इन शब्दोंसे मेरा बहुत समाधान हो गया।

आपके लीलासंवरणसे दस-बारह दिन पूर्व हम वृन्दावनमें आपके पास गये थे। उस समय हमें भगवान्‌कृष्णके बालस्वरूपकी एक प्रतिमा देते हुए आपने कहा, "जा, सब चिन्ता छोड़कर इनकी सेवा-पूजा किया कर।" वह श्रीविग्रह हमारे घरमें विराजमान हैं। मुझे तो नहीं, पर एक अन्य व्यक्तिको उस प्रतिमाके विषयमें एक बार ऐसा अनुभव हुआ था कि बैठी होनेपर भी उन्हें वह अपने आसनपर खड़ी दिखायी दी।

पूज्य श्रीमहाराजजीने हमलोगोंके बीचमें रहकर सब प्रकार हमारा संरक्षण किया, हमारे लौकिक और पारलौकिक हितके लिये निरन्तर हमारा पथप्रदर्शन किया। वे जिस प्रकार उस समय हमारी देख-भाल करते थे उसी प्रकार अब भी करते हैं—ऐसा अनेक भक्तोंका अनुभव है। उनका वरद हस्त सर्वदा हमारे सिरपर हैं।
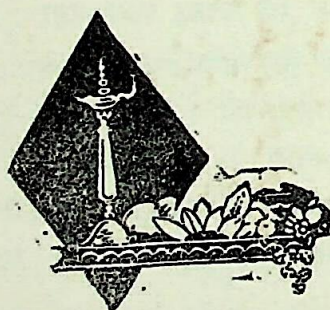
सेठ श्रीकेशवदेवजी, अनूपशहर

मैं सुना करता था कि श्रीउड़ियाबाबा नामके एक अच्छे महात्मा हैं। परन्तु उनका दर्शन नहीं हुआ था। महाराजका प्रथम दर्शन मुझे यहीं श्रीरामशंकरजीके बागमें हुआ। जिस समय अन्य कई व्यक्तियोंके साथ मैं वहाँ बैठा हुआ था, मुझे अकस्मात् सुगन्ध जान पड़ी। यद्यपि उस स्थानपर कोई सुगन्धित पदार्थ था नहीं। मैंने अनुमान किया यह सुगन्ध बाबाके ही शरीरको है। संत-महात्माओंके मुखसे ऐसा सुन रखा था कि यों तो जीवनमें अनेकों संत मिलते हैं, परन्तु जब सद्गुरुकी भेंट होती है, जिनसे कि अपना कुछ कल्याण होता है, तो वहाँ सुगन्ध आना अथवा स्वतः ही चित्तका आकर्षित होना आदि लक्षण अनुभवमें आते हैं। इससे श्रीमहाराजजीमें मेरी श्रद्धा हो गयी। उसके पश्चात् जब-जब आप अनूपशहरमें पधारते तब-तब मैं सेवामें उपस्थित रहता।

वे मुझपर बहुत कृपा करते थे। अन्य लोगोंकी भाँति मैं उनसे प्रश्न नहीं करता था। केवल उनकी सन्निधिमें बैठते ही मेरी शंकाओंका समाधान हो जाता था। एक बार मेरे मनमें यह प्रश्न उठा कि आसनपर बैठनेपर तो शरीरमें कोमलता आनी चाहिये, मेरे शरीरमें कड़ापन क्यों है? उसी दिन रात्रिमें जब हम कई लोग बाबाके पास बैठे हुए थे वे एकाएक आसन लगाकर बैठ गये और बोले, "देखो, हमारे शरीरमें कोई कड़ापन नहीं है।" मैं समझ गया कि यह मेरे प्रश्नका ही उत्तर है। वास्तवमें मेरे आसनमें ही त्रुटि है। बाबाको आसन सिद्ध था। दूसरे लोग जितनी देरमें कई बार

आसन बदलते हैं उतनी देर वे एक ही आसनसे बैठे रहते थे। योग-सिद्धिके लिये जिस प्रकारके आसनका वर्णन सुना जाता है उसी आसनसे वे बैठते थे। उस समय उनके नेत्र अर्द्धोन्मीलित रहते थे।

मेरा ऐसा विश्वास है कि बाबाको भविष्यका ज्ञान हो जाता था। मेरे एक कर्मचारीका लड़का पागल-सा हो गया था। एक दिन उसने साँप पकड़कर बाबाके आसनपर छोड़ दिया। वह दूसरे लोगोंको बाबाके आगे फल, फूल, मिष्टान्न आदि भेट रखते देखता था; उसने साँप ही पकड़कर भेट कर दिया। उस समय बाबाके मुखसे निकल गया, "तेरी मृत्यु साँप काटनेसे होगी।" उनका यह वचन सत्य हुआ। एक दिन कोई व्यक्ति एक काला विषधर सर्प गंगाजीमें छोड़नेके लिये लाया। उस बालकने उसे सर्प छोड़ने नहीं दिया और स्वयं लेकर सबको दिखाता फिरा। उस सर्पने ही उसे डस लिया। बहुत उपचार करानेपर भी उसकी मृत्यु हो गयी।

मैं प्रायः देखता था कि रात्रिमें वे सबको हटानेके लिये कह देते थे, "सब जाओ, अब मैं सोऊँगा।" तथा नींदमें खर्राटा भरनेकी-सी लीला भी करने लगते थे, परन्तु थोड़ी ही देर बाद जाकर हम देखते तो आसनसे बैठे दिखायी देते थे।

बाबाकी कृपा और उनके सत्संगसे मेरे जीवनमें बहुत लाभ हुए हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हममें दोष नहीं है। दोष तो हैं ही, परन्तु हम जो पापोंसे डरते और अपराध हो जानेपर काँपते हैं—यह भी उनकी कृपाका ही फल है।

पीछे तो बाबा जब अनूपशहर पधारते तो अपने बागमें ही ठहरते थे। कथा कीर्तन एवं सत्संग आदिका बड़ा सुन्दर सुअवसर

अनायास ही सबको प्राप्त हो जाता था। ऐसे ही अवसरपर मैंने उनका एक फोटो उतरवाया था। वह चित्र आज भी मेरे पास है। कोई चिन्ताजनक परिस्थिति उपस्थित होनेपर जब मैं एकाग्र-चित्तसे जिज्ञासापूर्वक उस चित्रपट-स्वरूपकी ओर देखता हूँ तब यदि वे मुझे मुसकराते हुए और प्रसन्नमन जान पड़ते हैं तो हमारी वह चिन्ता दूर हो जाती है; और यदि उनका उदासीनताका भाव दिखायी देता है तो सफलता नहीं मिलती। ऐसा मेरा कई बारका अनुभव है।

पं० श्रीमोतीदत्तजी शर्मा, अनूपशहर

(१)

मेरे काका पं० गणेशदत्तजी एक सुप्रसिद्ध वैद्य थे। एक दिन उनके शिष्य अंगनलाल वैद्यने सूचना दी कि रामघाटमें उड़ियाबाबा नामके एक सिद्ध महात्मा आये हुए हैं। परन्तु काकाजी रोगी होनेके कारण वहाँ जानेमें असमर्थ थे। अतः मुझसे बोले, "तुम उड़िया-बाबाको रामघाट जाकर ले आओ ?" मैंने कहा, "यदि आपकी आज्ञा होगी तो अवश्य जाऊँगा।" फिर बोले, "अच्छा, जाओ मत। यदि वे सिद्ध होंगे तो स्वयं ही दर्शन देंगे।" यह कहकर वे बाबाका चिन्तन करने लगे। मैं नहीं गया।

तीन दिन पश्चात् अकस्मात् मैंने देखा कि बाबा हाथमें एक साफी (रूमाल) घुमाते हमारे दरवाजेपर खड़े हैं। मैंने उन्हें प्रणाम किया और तुरंत भीतर जाकर काकाजीको सूचना दी। वे बाहर आये और बाबाको प्रणाम कर एकान्त कोठरीमें ले गये। मुझसे बोले, "तुम पहरा देना, कोई तीसरा आदमी भीतर न आवे।" घंटेभर तक न जाने क्या-क्या बातें होती रहीं। उसी क्षणसे काका-जीकी बाबामें अत्यन्त श्रद्धा हो गयी। बाबा भी जब कभी अनूपशहर पधारते उनसे अवश्य मिलते थे। जब काकाजीका अन्तिम समय आया तब उन्होंने अपने भाई और पुत्र दोनोंसे कहा कि देखो, तुम उड़ियाबाबाजीकापीछा मत छोड़ना।

(२)

काकाजीकी मृत्युके प्रायः दस वर्ष पश्चात् उनके पुत्र भोलादत्त-

जी बीमार पड़े। उनकी स्थिति देखकर पूज्य बाबासे दर्शन देनेकी प्रार्थना की गयी। वे अनूपशहर आये और उन्हें देखते ही बोले, "अब तुम्हारा शरीर रहेगा नहीं, परन्तु आगामी जन्मके कल्याणार्थ मैं अनुष्ठान करा सकता हूँ।" भोलादत्तजीने कहा, "आपकी जैसी इच्छा हो वैसा ही करें।" तब बाबाने कई पण्डितोंको बुलाकर पाठ आरम्भ करा दिया। पाठ सम्पूर्ण होनेके एक दिन पूर्व आपने पण्डितोंसे कहा, "कल पाठ पूरा हो जायगा। कल चार बजेतक आप अपना सम्पूर्ण कृत्य समाप्त करके चले जाना, रुकना मत। अपनी दक्षिणा भी लेते जाना। यदि वह न दे तो केशवराम और धीरज-रामसे अथवा लल्लूजीसे ले जाना। कल रात्रिमें उसका शरीर बचेगा नहीं।"

दूसरे दिन प्रातःकाल ही बाबा कहीं अन्यत्र चले गये। सायंकाल-में चार बजेतक भोलादत्तजीने पण्डितोंको दक्षिणा दिलायी। पण्डित जहाँ-तहाँ चले गये और रात्रिमें तीन बजे उनका शरीर पूरा हो गया। जान पड़ता है बाबाको भविष्यका ज्ञान हो जाता था। उनमें महान् गुण थे वे कभी किसीकी निन्दा नहीं करते थे और जिसकी श्रद्धा होती थी उसके साथ उसीके अनुसार बर्ताव करते थे।

श्रीयुत श्रीरामजी भारती, अनूपशहर

(१)

बाबाने कर्णवाससे आदमी भेजकर मुझे बुलाया और मैंने वहाँ जाकर सर्वप्रथम उनका दर्शन किया। वैसे वे प्रायः किसीको बुलाते नहीं थे, परन्तु मुझे उन्होंने बुलाया। इसका कुछ कारण था, उसे सुनिये।

यहाँ अनूपशहरमें एक दण्डिस्वामी आये। वे पहले मुजफ्फरनगरमें अध्यापक थे, इसलिये उन्हें पेंशनके कुछ रुपये मिलते थे। जिस समय मैंने उनके दर्शन किये उनकी छातीपर एक पोटली देखी। पूछनेपर उन्होंने बताया कि ये पेंशनके पाँच रुपये हैं। मैंने कहा, "तुम संन्यासी होकर रुपये रखते हो ?" बोले, "क्या हर्ज है ?" उस समय मेरे पास एक साथी भी था। उससे मैंने कहा कि इस साधुकी छातीपरसे शिला हटा दो। साथीने पाँचों रुपये उससे छीन लिये। मैंने उस साधुसे कहा कि अभी जाना नहीं, और पाँच रुपयेका कलाकन्द मँगाकर उसे भी खिलाया और दूसरोंको बाँट दिया। इसपर वह बहुत नाराज हुआ और थानेमें रिपोर्ट की तथा कप्तानको भी लिखा। जब अगले महीने फिर पेंशन आयी तो उसने उस रुपयेसे दस बल्लम खरीदे और कई साधुओंको बाँट दिये। वह विचित्र साधु था। वह जब कर्णवासमें श्रीउड़ियाबाबाजीके पास पहुँचा तो एक बल्लम उन्हें भी दिया और कहा कि एक दुष्ट पैदा हो गया है, उसे मारना है। बाबाने पूछा कि वह कौन है ? तो बतलाया, "उसका नाम श्रीराम है।" बाबाने उसे समझा-बुझाकर शान्त किया और मुझे आदमी

भेजकर बुलाया। मैंने कर्णवास जाकर उनका दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके बैठ गया। बाबाने मुझसे सारी बातें पूछीं और मैंने सब बता दिया। इसपर वे बहुत हँसे। उस समय मेरे मनपर उनका ऐसा प्रभाव पड़ा कि मेरा चित्त उनकी ओर आकर्षित हो गया। वैसे मैं थोड़ा विचित्र आदमी हूँ। हर किसीके पैर नहीं पकड़ता। जीवनमें यदि किसीके पैर छुए हैं तो एकमात्र श्रीउड़िया बाबाके।

(२)

उसके कई महीने बाद मैं बाबाके दर्शन करने रामघाट गया। उन दिनों उनका नियम था कि दिनमें चाहे जितने आदमी आ जायँ परन्तु रातमें किसीको अपने पास नहीं ठहरने देते थे। रातके दस-ग्यारह बजेतक उन्होंने सबको विदा कर दिया। केवल मैं ही शेष रह गया। मुझसे भी जानेको कहा। पर मैंने कहा कि मैं तो यहीं सोऊँगा। बोले, "यहाँ छप्परके नीचे तो कोई सो नहीं सकता।" मैंने कहा, "मैं पेड़के नीचे सो जाऊँगा।" तब बोले कि कुटीके पीछे उस आमके पेड़के नीचे जो गंगाजीकी रेती पड़ी है वहाँ सो जा।'

बस, उन्होंने अपनी किवाड़ें बन्द कर लीं और मैं उस रेतीपर जा लेटा। वहाँ झाड़ीमें बघेरा आदि हिंसक जीव भी रहते थे। अतः मेरा मन उधेड़-बुन करने लगा और मैं सोचने लगा कि यह कितना निर्दयी साधु है। आप तो किवाड़ बन्द करके सो गया और मैं यहाँ अकेला पड़ा हूँ। यदि रातमें कोई जानवर आकर मेरा पैर खींचने लगे तो यहाँ कौन बचायेगा? तभी बाबाने किवाड़ें खोलीं और मेरे पास आकर बोले, "क्यों रे! क्या सोच रहा है पगला!" मैंने कहा, "कुछ नहीं, मैं तो लेटा हुआ हूँ।" तब बोले,

"देख, इस गंगारजके भीतर कोई जानवर पैर नहीं रख सकता। इसका जिम्मा मैं लेता हूँ। तू निश्चिन्त सो जा।" मैं वहाँ दो दिन रहा और दोनों रात वहीं सोया, परन्तु रातमें कोई जानवर मेरे पास नहीं फटका। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि मैंने बाबासे कुछ भी नहीं कहा था तथापि उनका अकस्मात् कुटीसे आना और गंगारजमें कोई भी जानवर नहीं आ सकता—इसका जिम्मा लेना यह स्पष्ट सिद्ध करता है कि वे दूसरेके मनकी बात जान लेते थे।

(३)

मेरे एक मित्र थे ब्रह्मचारी सहस्रराम। वे मध्यप्रदेशके रहनेवाले थे। ब्रह्मचारी प्रभुदत्त, ब्रह्मचारी इन्द्र और ब्रह्मचारी सहस्र रामने अपना रक्त निकालकर लिखा था कि हम आजीवन देशकी सेवा करेंगे। ये तीनों ही काशीसे बदरीनारारायणकी पैदल यात्राके लिये चले थे। इनमेंसे ब्रह्मचारी सहस्रराम यहाँ अनूपशहरमें आकर रुक गये और काँग्रेसमें काम करने लगे। इससे मेरी उनसे मित्रता हो गयी और धीरे-धीरे बाबासे भी उनका सम्बन्ध हो गया। ब्रह्मचारी सहस्रराम थे बड़े विचित्र पुरुष। एक दिन रात्रिके दस-ग्यारह बजे हम दोनों बाबाकी चरणसेवा कर रहे थे। उस समय बाबा प्रसन्नचित्त बैठे थे। तभी ब्रह्मचारीजीने उनसे प्रार्थना की, "यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यही आशीर्वाद दीजिये कि मैं आजीवन दरिद्र और भूखा रहूँ।" बाबाने कहा, "अरे भैया! ऐसी बात तुम क्यों करते हो?" ब्रह्मचारीजीने कहा, "हम दरिद्रता और भूखमें जितनी ईश्वरभक्ति और देशसेवा कर सकते हैं उतनी धनवान् और सुखी बनकर नहीं कर सकते। और हमें जीवनभर करना यही

है। इसलिये मैं तो यही आशीर्वाद माँगता हूँ।" बाबाने कह दिया, अच्छा भैया जैसी तेरी इच्छा।" उसके बाद जबतक वे जीवित रहे तबतक उनकी ऐसी दशा रही कि महीनेमें चार-छः फाके अवश्य हो जाते थे। एक बार थोड़ा-सा सामान मैंने उनके यहाँ भेज दिया तो मुझपर बहुत बिगड़े थे। यों आदमी वे बड़े अच्छे थे।

(४)

जब सन् १९३० के काँग्रेस आन्दोलनमें मैं जेलमें था। वहाँ जितेन्द्रनाथ लाहिड़ीके, जिन्हें काकोरी केसमें फाँसीकी सजा हुई थी, बड़े भाई मेरे साथ रहते थे। एक दिन उन्होंने भोजन नहीं किया। मैंने उसका कारण पूछा तब उन्होंने बतलाया कि आजके ही दिन मेरे छोटे भाईको फाँसीकी सजा हुई थी। इसलिये आज मैं भोजन नहीं करूँगा। बातचीतके प्रसंगमें उन्होंने बताया कि उड़ीसा प्रान्तके एक ब्रह्मचारी, जिनके दाँत आगेको निकले हुए थे, जो जटा बढ़ाये रखते और हाथमें त्रिशूल रखते थे, हमारे घरपर रहते थे। वे हमारे भाईके साथ देशके स्वाधीनतासंग्राममें भी भाग लेते थे। जब जेलसे आकर मैंने बाबासे पूछा तो उन्होंने स्वीकार किया। वंग-विच्छेदके राष्ट्रीय संग्राममें देशसेवकोंके दो दल बन गये थे—एक तो वे जिनका विश्वास हिंसा द्वारा अँग्रेजोंको भगानेमें था और दूसरे वे जो भजन-साधन और अनुष्ठानद्वारा उन्हें भगानेके पक्षमें थे। बाबा इन दूसरे दलवालोंमें ही थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं कुछ दिन अरविन्द बाबूके साथ भी रहा था। इसीसे सी० आई० डी० विभागके उच्च ऑफिसर यहाँ पता लगानेके लिये कि देशकी स्वतन्त्रताके लिये वे कितना सक्रिय भाग लेते हैं उनके पास आया करते थे।

पं० नन्नामल मिश्र, अनूपशहर

मैंने सन् १९२०-२१ के लगभग प्यारेलालके साथ सेठ बालूशंकरजीके बागमें सबसे पहले श्रीमहाराजजीका दर्शन किया। उन दिनों बाबाका शरीर बहुत हल्का था। वे एक साधारण-सी चादर ओढ़े शान्त मुद्रामें विराजमान थे। आपकी सन्निधिमें थोड़ी देर बैठनेसे ही मेरे हृदयमें आपके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई और मुझे ऐसा लगा कि ये बहुत उच्चकोटिके सन्त हैं। मैंने प्यारेलालसे कहा, "भाई, ये महात्मा तो कोई महापुरुष जान पड़ते हैं, इन्हें अवश्य पकड़ना चाहिये।" फिर तो हम दोनों प्रत्येक महीने, वे जहाँभी होते, उनके दर्शनोंके लिये जाने लगे।

मेरा एक लड़का बहुत होनहार था। उससे हमें बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। एक दिन अकस्मात् बिजलीका करेण्ट लगनेसे उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी इस आकस्मिक मृत्युका मेरे छोटे भाई गोपालप्रसाद एम्० ए० पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और दस महीनेके भीतर वे भी चल बसे। इन दो प्रियजनोंकी आकस्मिक मृत्युओंका मेरे ऊपर बड़ा भयानक असर हुआ और मैं सख्त बीमार पड़ा। मुझे तोलेभर अन्न भी नहीं पचता था। मरणासन्न अवस्था हो गयी। जब जीवनकी आशा न रही तो वैद्य लल्लूजी और धीरजरामजी आदिने सोचा कि इन्हें इससमय बाबाके दर्शन कराने चाहिये। बाबा उन दिनों बाँधके उत्सवमें पधारे थे। अतः वह मुझे ताँगेमें रखकर बाँधपर ले गये। मेरा छोटा लड़का बाबाको बुला लाया।

मैंने उनके चरण स्पर्श किये। बाबा बोले, "मुझे क्यों बुलाया है ?" मैंने कहा, "महाराज ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरा शरीर रहेगा या नहीं ?" इसपर बाबा हँसे और बोले, "तुम्हारा शरीर जायगा नहीं। इस समय तुम्हें किसी महात्माके सत्संगकी आवश्यकता है।" मैंने कहा, "महाराज ! मैं तो आपको छोड़कर और किसी महात्माको नहीं जानता। जो कुछ करना हो आप ही कीजिये।" तब बाबाने और सबको अलग कर दिया और प्रायः दस मिनटतक मुझे उपदेश देते रहे। उस समय मुझे प्रकाशपुञ्जका दर्शन हुआ और ऐसा स्पष्ट अनुभव होने लगा कि स्त्री-पुत्रादिका ममत्व मिथ्या ही है। वास्तवमें कोई किसीका नहीं है। उस समय मुझे ऐसा जान पड़ा कि जैसे किसीके सिरपर भारी बोझा हो, उससे वह दबा जा रहा हो और कोई कृपालु उस बोझको उतार दे। ऐसी स्थितिमें जैसे उसका चित्त हल्का और प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार मेरे मनका भारी भार उतर गया और मुझे बड़े सुखका अनुभव होने लगा। उसके पश्चात् धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा और कुछ दिनोंमें मैं अच्छा हो गया।

बाबामें मैंने भारी सहिष्णुता देखी। वे प्रायः कहा करते थे कि महात्मा तो वह है जिसको पूजा हो अथवा अपमान दोनों ही स्थितियोंमें समान रहे। उनका यह कथन उनमें पूर्णतया चरितार्थ होता था। उनसे कुछ न कहनेपर भी वे हमारी छोटी-से-छोटी सुविधाका भी ध्यान रखते थे—ऐसी थी उनकी सहृदयता। कभी-कभी कह देते थे, "भैया यह पूर्व जन्मका संस्कार है—कहाँ मेरा जन्म हुआ और कहाँ तुम्हारा, फिर भी तुम लोगोंसे पूछता रहता हूँ कि भोजन किया या नहीं ? कहाँ सोओगे ? यह सब पूर्व जन्मके

सम्बन्धसे ही तो होता है।" मेरा ऐसा भाव था कि जब वे अपने हाथसे देते तभी प्रसाद ले लेता था। अतः वे स्वयं ही बुलाकर मुझे प्रसाद देते थे। उसीमें उनकी प्रसन्नता थी।

बाबाने मुझे भगवान् शिवकी आराधनाका उपदेश दिया था तथा शिव-पञ्चाक्षरी मन्त्र और गायत्रीके जपकी आज्ञा दी थी। पीछे रामायणपाठ करनेके लिये भी आज्ञा दी। मैं यथासाध्य उनके आदेशका पालन कर रहा हूँ। लीलासंवरणके पश्चात् भी स्वप्नमें उनके दर्शन हुए हैं। उनकी कृपासे मुझे जीवनमें अनेकों लाभ हुए हैं, उनका कहाँतक वर्णन किया जाय ?

पं. श्रीरामप्रसादजी 'भाईसाहब' व्यायामविशारद अनूपशहर

आरम्भिक परिचय

अबसे प्रायः छत्तीस वर्ष पहले श्रीगंगाजीके किनारे एक प्राचीन स्थान के मठ में मैंने श्रीमहाराजजीका दर्शन किया था। उस समय मैंने उनमें एक विलक्षण आनन्दकी मस्तीका अनुभव किया। तभीसे उनके चरणकमलोंमें मेरी श्रद्धा-भक्ति हो गयी। जब वे कर्णवास, रामघाट आदि स्थानोंमें पधारते मैं अवश्य उनके दर्शन करनेके लिये जाता और उनके सत्संगसे लाभ उठाता। श्रीमहाराज-जीकी कृपा और उनके सत्संगके प्रभावसे मेरे अन्दर युवावस्थाके वे दोष जो मनुष्योंमें प्रायः आ जाते हैं, नहीं आये। उन विकारोंसे श्रीमहाराजजीने ही मेरी रक्षा की थी। आप कहा करते थे—"लौकिक या परमार्थिक जो भी उन्नति करनी हो युवावस्थामें कर लो। वृद्धावस्थामें वह बात नहीं रहती।" यह बात अब मेरे अनु-भवमें भी आ रही है कि भजन-ध्यानमें जो उत्साह और स्फूर्ति जवानीमें थी वह अब नहीं रही। काम सब वही हो रहे हैं, पर अब वह आनन्द नहीं है।

पहले मेरी आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। पैसा पास नहीं था;न घरका मकान था और न जमीन ही थी। जबसे श्रीमहाराजजी के चरणोंकी शरण ली सब प्रकार मंगल होगया। मैं तो सब प्रकार अयोग्य ही था, पर उन्होंने कृपा करके मेरी रक्षा की।

बागके संकल्पकी पूर्ति

सन् १९२९ के लगभग मैं आपके दर्शनार्थ रामघाट गया था।

वहाँ सत्संग हो रहा था। अकस्मात् उसी समय मेरे मनमें यह संकल्प हुआ कि यदि मेरे पास बाग होता तो श्रीमहाराजजीको ले जाकर उसमें विराजमान कराता। मैंने इस विषयमें उनसे कहा कुछ नहीं, परन्तु वे अन्तर्यामी मेरे हृदय के संकल्प को जान गये और अप्रत्याशितरूपसे उन्होंने उसे पूर्ण भी कर दिया।

बागके लिये मैंने भूमि लेनी चाही, परन्तु वह जमींदारके अधिकारमें पहुँच चुकी थी और मेरे पास पैसा नहीं था। उस भूमिको लेनेके लिये कई बड़े आदमी हजारों रुपये देनेको तैयार थे। उस समय बंबईवाले स्वामी श्रीकृष्णानन्दजीने मुझसे कहा, "उस भूमिको लेनेके लिये तुम श्रीमहाराजजीके दिये मूल मन्त्रका अनुष्ठान करो।" तब हम दोनोंने चालीस दिनतक अनुष्ठान किया। परिणाम यह हुआ कि जो लोग कोर्ट ऑफ वार्ड्सके सरवराकारको दो-दो हजार रुपये दे रहे थे उन्हें वह भूमि नहीं मिली और मुझे बिना कुछ दिये ही मिल गयी। बस, कुछ दिनोंमें ही बाग लगा, कुटिया बनी और श्रीमहाराजजीने पधारकर उसे पवित्र भी किया। इसके पीछे तो वे कई बार उस बागमें पधारे। कभी-कभी कह भी देते थे, "भैया! यह बाग तो मेरा है।" उनकी कृपासे आज वह साठ बीघेका बाग फल-फूल रहा है।

एक बार ऐसा प्रसंग आया कि इस बागकी सिंचाईके लिये मेरे पास पैसा नहीं था। गर्मी की ऋतु थी, अतः वृक्ष सूखने लगे। कोई वश चल नहीं रहा था। अन्ततः मैंने निश्चय किया कि जबतक सिंचाईका प्रबंध नहीं होता मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगा, केवल गंगाजल पीकर रहूँगा। अब तो निराहार स्थितिमें दिनपर दिन बीतने लगे। घरवाले समझते थे कि दूकानपर भोजन कर लेते हैं और

दूकानवाले समझते थे घरपर खा लेते होंगे। पूरे नौ दिन बीत गये। दसवें दिन विचार हुआ कि श्रीमहाराजजी को यह वृतान्त सुनाना चाहिये। मैं वृन्दावन पहुँचा और रात्रिमें संक्षेपसे उन्हें सब हाल सुनाया। वे बोले, "भैया! ऐसा हठ नहीं करना चाहिये। भगवत्कृपासे सब ठीक हो जायगा।" फिर श्रीबाँकेविहारीजीका थोड़ा प्रसाद दिया और दूसरे दिनसे भोजन करनेकी आज्ञा दी। मैं आज्ञा लेकर घर आया और उसी दिन मेरा उद्देश्य पूर्ण हो गया। एक सज्जनने इतने रुपये दिये कि सिंचाई का पूरा प्रबन्ध हो गया। यह थी उनकी कृपा।

भगन्दर की चिकित्सा

एक बार मुझे भगन्दरका रोग हो गया। कई सालतक चिकित्सा कराता रहा, परन्तु कोई लाभ न हुआ। डाक्टरोंने सलाह दी कि ऑपरेशन करालो। मैंने सोचा, पहले श्रीमहाराजजीके दर्शन करके फिर ऑपरेशन कराऊँगा। बाबा उस समय कर्णवासमें थे। मैं वहाँ पहुँचा और संक्षेपमें उन्हें सब समाचार सुनाया। वे बोले, "नहीं रे, ऑपरेशन मत कराना।" मैंने नहीं कराया और भगन्दर ठीक होगया। तब से अभी तक ठीक है।

श्रीमहाराजजीने मेरे लौकिक और पारमार्थिक दोनों प्रकारके कल्याणके लिये मुझे यही उपदेश दिया था कि गायत्रीका जप और भगवान् शंकरकी उपासना किया करो।

व्यायाम और कलाएँ

मैं बाबाको प्राचीन कलाके खेल दिखाया करता था। व्यायाम का प्रदर्शन मुगद्र की जोड़ी हिलाना तथा तलवार और लाठी आदि

चलाना। एक बार उन्होंने रमेशचन्द्रजीकी प्रशंसा की और कहाकि मैं तेरा परिचय रमेशचन्द्रसे कराऊँगा। किन्तु मैं और रमेशचन्द्र कभी बाबाके पास एकत्रित नहीं हुए। मेरी ऐसी भी धारणा है कि ऐसे गुणी आदमी किसीको अनायास में कलाएँ नहीं सिखाते। अपने अधिक से अधिक प्रेमीसे भी इन्हें गुप्त रखते हैं। फिर मेरा तो उनसे कोई सम्बन्ध या परिचय भी नहीं था। केवल श्रीमहाराजजी की कृपा ही थी कि वे अनूपशहर पधारे। मैंने उनके खेल देखे और वे स्वयं ही मुझपर ऐसे कृपालु हुए कि उन्होंने अपनी सभी विद्याएँ मुझे बड़े प्रेम से खिला दीं। उनमें मुख्य-मुख्य ये हैं—धनुषविद्या, बाण से हार पहनाना, एक ही बाण से दो, तीन या सात लक्ष्य तक बेधना, शब्दवेधी बाण छोड़ना, दर्पणमें प्रतिविम्ब देखकर बाण मारना, एक या दो मोटरों को रोकना, हृदय की धड़कन रोक देना, लोहे के कुण्डलमें होकर सारे शरीर को निकाल देना, अड़तालीस घंटेतक भूमिके भीतर समाधिस्थ रहना, इत्यादि। मैं बम्बई आदि नगरोंमें जाकर इन विद्याओं का प्रदर्शन कर चुका हूँ।

उनकी कृपा

श्रीमहाराजजीकी कृपा अपार है। वे पहले और अब भी समय-समय पर स्वप्न में दर्शन देते रहते हैं और कभी-कभी कुछ कह भी देते हैं। अभी हालमें मुझे उनके और श्रीहरिबाबाजीके स्वप्नमें दर्शन हुए थे। उन्होंने तो केवल इतना कहा, "क्या है रे!" मैंने कहा, "महाराजजी! सब आपकी कृपा है।"

श्रीहरिवाबाजीने कहा, "भैया! मर जाना ही सार है।" इस वचन का अभिप्राय मैंने यही समझा कि अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये प्राणोंको न्योछावर कर देना चाहिये।

मैंने श्रीमहाराजजीकी महिमा जितनी अनुभव की है उसका वर्णन नहीं कर सकता। वह कहनेकी वस्तु है भी नहीं। जैसे कल्पवृक्षका आश्रय लेनेपर सभी संकल्प पूर्ण हो जाते हैं वैसे ही उनकी कृपासे अनेकों मनोरथ पूर्ण हुए हैं। अनेकों व्यक्तियोंने सामान्य स्थितिसे महत्ता प्राप्त की है। अतः उनकी महिमाका क्या वर्णन किया जाय।

एक गरीब लड़की, अनूपशहर

दुर्भाग्यसे जीवनके प्रारम्भिक कालमें ही मैंने कुछ ऐसी राग-द्वेषपूर्ण बातें सुन ली थीं कि जिनके कारण मैंने निश्चय कर लिया था कि किसीको भी गुरु नहीं बनाऊँगी। मेरे दादा श्वसुरजी बाबाके अनन्य भक्त थे। वे प्राय: बाबाके दर्शनार्थ जाते रहते थे। कभी-कभी उन्हें भिक्षा कराने के लिये घर भी लाते थे। परन्तु मैं अपनी टेकपर अटल रहती। दूरसे ही दर्शन कर लेती। एक बार प्रणाम तो किया पर बातचीत नहीं की। अन्तमें न जाने बाबाने क्या जादू किया कि मेरा मन उनके दर्शनों के लिये लालायित रहने लगा। बारम्बार उनके दर्शनोंकी उत्कण्ठा होती। आखिर मैंने दादा श्वसुरजी से कह दिया कि अबकी बार जब आप बाबाके दर्शन करने चलेंगे तो मैं भी साथ चलूँगी। उन्होंने कहा, "अच्छी बात है।"

अबकी बार मैंने उनके साथ रामघाट जाकर बाबाके दर्शन किये। उसके बाद तो मैं कर्णवास, बाँध आदि कई स्थानोंपर जाकर दर्शन करती रही। धीरे-धीरे बाबामें मेरी श्रद्धा-भक्ति बढ़ती गयी। मेरे प्रार्थना करनेपर बाबाने मुझे शिवमन्त्रका उपदेश किया और भगवान् शिवकी आराधना करनेकी आज्ञा दी। पाठ करनेके लिये उन्होंने मुझे गीता और रामायणकी पुस्तकें तथा जप करनेके लिये माला भी दी। पीछे कभी-कभी बाबा कह दिया करते थे कि तेरा तो अटल नियम था कि किसीको गुरु नहीं बनाऊँगी, फिर कैसे चली आयी ? मैं भला अब क्या उत्तर देती। यही कह देती कि मेरा तो नियम था ही परन्तु आपने ही न जाने क्या मन्त्र पढ़ दिया। आप

ही जबरदस्ती गुरु बन गये। आपके दर्शन किये बिना मुझे चैन ही नहीं पड़ती थी।

(१)

मेरे लिये बाबाने जो मन्त्रजपकी संख्या बतायी थी वह कम नहीं थी। सोते समयतक भी पूरी नहीं हो पाती थी। रातमें जब नींद खुलती तब संख्या पूरी करने लगती। एक बार घरके काम-काजमें लगे रहनेके कारण मन्त्रजपकी संख्या पूरी करना मेरे लिये भार हो गया। मनमें झुँझलाहट पैदा हुई। मैं कहने लगी, "यह माला तुमने अच्छी दी। यह पचड़ा अब मुझसे पूरा नहीं होगा। तुम अपनी यह माला लो।" यह कहकर मैं मालाको तकिये के नीचे पटक कर सो गयी। उस समय बाबा मेरे पास नहीं थे। रामघाटमें अथवा कहीं अन्यत्र थे। आश्चर्यकी बात यह हुई कि प्रातःकाल जब नींद खुली तो पूर्वाभ्यासवश संख्या पूरी करने के लिये माला तकिया के नीचे ढूँढ़ने लगी। परन्तु माला नदारद। बहुत ढूँढ़ने पर भी कहीं पता न चला। मेरे कमरेमें दूसरा कोई था भी नहीं, जिसपर शंका करती। मैं रोने लगी। बड़ी पछतायी। अन्तमें जब दादा-श्वसुरजीके साथ रामघाट दर्शन करने गयी तो मालाकी बात कहकर मैं रोने लगी। बाबाने माला दिखाते हुए कहा, "यही तेरी माला है?" मैंने हाथ बढ़ाकर माला ले ली। बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँसे बाबाके पास माला कैसे पहुँच गयी। आजतक इसके सिवा इसका और कोई रहस्य समझमें नहीं आया कि यह कोई बाबाकी ही सिद्धि थी, जो उन्होंने मेरे मनमें मालाके प्रति तिरस्कार जानकर उसे वापिस ले लिया था।

(२)

मैं एक गरीब लड़की थी। वैधव्य जीवन था। वैधव्य जीवन

दुःखमय तो होता ही है। दुःखोंसे घबड़ाकर मेरे मनमें आत्महत्या-का विचार उठ आया। धीरे-धीरे इस विचारने दृढ़ता प्राप्त कर ली। उस समय मेरी अवस्था प्रायः बीस वर्षकी होगी। सोच लिया कि मरनेपर चाहे कुछ भी हो इन दुःखोंसे तो पिण्ड छूट जायगा। जबतक आत्महत्या करनेका पूर्ण निश्चय हुआ तबतक श्रीहरिबाबाजी के बाँधका उत्सव आ गया। यह भी सुना कि वहाँ बाबा आ गये हैं। तब यह विचार हुआ कि बाबाके अन्तिम दर्शन और कर लूँ। पर कहना किसीसे कुछ नहीं है। बाबासे भी इस सम्बन्धमें कुछ नहीं कहना है। मैं दादा श्वसुरजीके साथ बाँधपर गयी और श्रीमहाराजजी के दर्शन किये। वे अन्तर्यामी थे, दूसरेके मनकी बात जान लेते थे। पर किसीसे कुछ कहते नहीं थे। मैंने कुछ भी नहीं कहा। वे बिना ही किसी प्रसंगके स्वयं ही कहने लगे, "खबरदार ! तूने मनमें ऐसा विचार किया तो ! आत्महत्या बड़ा भयानक पाप है। इससे कीड़ा-मकोड़ा बनेगी। नरकमें पड़ेगी।" यह होगा—वह होगा—पचासों बातें कह डालीं और मेरे मनमें ऐसा भय बैठा दिया कि तबसे आत्महत्याका विचार फिर कभी नहीं उठा।

(३)

यों तो बाबाको भोजन करानेका सौभाग्य मुझे जीवनमें कई बार प्राप्त हुआ है, परन्तु एक बारका भोजन कराना मुझे कभी नहीं भूलेगा। मैं दही-भात बनाकर ले गयी थी। देखते ही बाबा बोले, "बेटा ! क्या लाया है ?" मैं सदा ही गरीबनी की भाँति बाबाके सामने बहुत कम बोलती थी। केवल इतना ही कह सकी, "दही-भात लायी हूँ।" बहिनजी आदिने चादरसे पर्दा कर दिया और वे प्रसाद पाने लगे। यह प्रातः ७ बजे का समय था। इस

समय यदि कोई भोजन लाता था तो बाबा प्रायः डाँट दिया करते थे कि यह क्या भोजनका समय है ? परन्तु उस दिन बड़े प्रेमसे पाने लगे । बाबा प्रायः बहुत ही कम भोजन करते थे । जरा-मना उठाकर मुँहमें डाल लेते, परन्तु दूसरोंको दिखाते ऐसा थे मानो खूब भोजन कर रहे हैं । यदि कोई दूधका गिलास ले जाता तो मुँहसे इतने जोरकी चुस्की भरते कि सब लोग समझते खूब दूध पी रहे हैं, चाहे मुँहमें एक बूँद भी दूध न जाता । अधिकांश प्रसाद तो भक्तगण ही खाते-पीते थे । परन्तु उस दिन उन्होंने जो प्रसाद पाना आरम्भ किया सो पाते ही गये । कोई-कोई भक्त सोच रहे थे कि हमको थोड़ा प्रसाद तो मिलेगा ही । बहिनजी सोचती थीं कि औरोंको न सही, मेरे लिये तो अवश्य थोड़ा प्रसाद छोड़ेंगे । परन्तु बाबा पाते ही चले गये । आखिर, समाप्तिका ढंग देखकर बहिनजीने धीरेसे कह भो दिया, "थोड़ा-सा प्रसाद तो छोड़ दो ।" पर बाबाने उन्हें डाँट दिया, "चुप रह ।" सब प्रसाद पाकर वे कटोरी धोकर पी गये । वैसे वे कभी कटोरी धोकर नहीं पोते थे । न उनकी ऐसी आदत थी । परन्तु मुझ अभागिनीको यह मालूम नही था कि मैं उन्हें यह अन्तिम भोजन करा रही हूँ । पता नहीं, शायद वे यही सोचकर इतने प्रेमसे भोजन कर रहे थे कि अब इस जोवनमें फिर इसका भोजन नहीं करना है ।

(४)

यह उस समयकी घटना है जब बाबाको लीलासंवरण किये ढाई वर्ष बीत चुके थे । मेरे भतीजेकी बहूका मस्तिष्क विक्षिप्त था । वह सदैव दुःख-शोकका ही अनुभव करती थी । सुख-शान्ति उसके लिये कहीं थी ही नहीं । अन्तमें एक दिन उसने पासके कुएँ

में गिरकर आत्महत्या करली। प्रातःकालका समय था। मेरे तो होश उड़ गये। मैं कोई बी० ए, एम० ए० पास शिक्षित लड़की तो हूँ नहीं। वैसे भी सीधी और गरीबनी ही थी। पुलिस आयेगी, हथकड़ी-बेड़ी पड़गी और न जाने क्या-क्या दुर्दशा होगी—इस प्रकारकी आशंकाओं से हृदय घबड़ा उठा। पूजनका समय था। मैं ठाकुरजी और (चित्रपटस्वरूप) श्रीमहाराजजीका पूजन करती थी परन्तु उस दिन भय और घबड़ाहटके कारण पूजनमें लेशमात्र भी मन नहीं लगा। बारम्बार यही विचार कि पुलिस आ रही होगी अब हथकड़ी-वेड़ी पड़ेंगी, चित्तमें उठता रहा। उसी समय मैंने बाबा की आवाज सुनी—"घबड़ा मत, कुछ नहीं होगा।" प्रत्येक व्यक्तिकी आवाज भिन्न-भिन्न होती है। शरीर भले ही न दीखे, केवल आवाजसे ही यह जाना जा सकता है कि कौन बोल रहा है। वह आवाज बिलकुल बाबा ही की थी। वे जिस प्रकार बोला करते थे ठीक उसी स्वर और ध्वनि से युक्त थी। उनके उ। वचनसे मुझे ढाढस हुआ। अन्तमें सेठ केशवराम आदि कुछ बाबाके प्रेमी आये और थानेदारको सूचना देकर पंचायतनामा बनाकर बयान दिया। लाश निकलवाकर अग्निसंस्कार कर गंगाजीमें बहा दी गयी। मुझे कुछ भी नहीं करना पड़ा। श्रीमहाराजजीने जैसा आश्वासन दिया वैसा ही करके दिखा भी दिया।

(५)

मेरा नियम था, मैं बाबासे कभी कोई चीज माँगती नहीं थी। उन्होंने स्वयं ही मुझे अपना एक चित्रपट और एक चादर दी थी। उनमें पूजनके लिये चित्रपट और स्मृतिके लिये चादर अमूल्य सम्पत्ति है। मैं बाबासे बहुत कम बोलती थी। गरीबनीकी भाँति

बैठी रहती थी। मेरा तो एक यही बल था कि रो देती थी और वे कृपालु मेरी दीनता देखकर मुझपर दयादृष्टि रखते थे। वे अब भी मेरे पास हैं और मैं उनके पास हूँ। मैं उन्हें नहीं भूलती और वे मुझे नहीं भूलते। अब भी जब कभी मैं रोकर उनसे प्रार्थना करके सोती हूँ तो अवश्य ही वे स्वप्नमें दर्शन देते हैं, सान्त्वना देते हैं और धीरज बँधाते हैं। यह हो नहीं सकता कि मैं रोकर सोऊँ और वे स्वप्नमें मुझे दर्शन न दें। ऐसी है उनकी कृपा।

श्रीभगवतीप्रसादजी, अनूपशहर

हम तो बाबाका फूलोंसे शृङ्गार करनेवाले सेवक हैं। हमारे तीन त्यौहार हैं—श्रीकृष्णजन्माष्टमी, होली और गुरुपूर्णिमा। हमारी श्रीकृष्णजन्माष्टमी बाबाके यहाँ, होली श्रीहरिबाबाजीके यहाँ और गुरुपूर्णिमा स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजीके यहाँ होती है। एक कृष्णजन्माष्टमीकी बात है। बाबा रामघाटमें थे, हम भी पहुँच गये। हमें तो फूलोंकी आवश्यकता थी; चाहे जहाँसे मिलें और चाहे जैसे मिल सकें। कभी-कभी तो रामघाटमें बाबाके रहनेपर हमें फूलोंके लिये डिबाईतक दौड़ लगानी पड़ती थी। हम फूल ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक बौहरेके बगीचे में पहुँचे। उसने मना कर दिया। मैंने कहा, "मैं फूलोंको बेचता तो हूँ नहीं, मुझे तो बाबाके पूजनके लिये फूलोंकी आवश्यकता है।" वह बोला, "बाबा-फावा कौन होते हैं ? मैं कहता हूँ कि तुम फूल नहीं ले जा सकते।" मैं लौट आया और दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले ही उसके बागपर ताँगा जा भिड़ाया। उसके सारे फूल, पत्ते और केलेके खम्भे तोड़कर ताँगेमें भर लिये और रामघाट चला आया। देखते ही बाबा बोले, "अरे भैया ! तू न जाने यह किसका बाग नोच-खसोटकर ला रहा है ? वह देखेगा तो क्या कहेगा ?" बस, हमने जन्माष्टमीपर खूब सजावट की और फूलोंका शृङ्गार किया। बड़ा आनन्द आया। इसी समय हमें बोहरा भी आता दिखायी दिया। मैंने अपने साथीसे कहा, "सागर ! बोहरा तो आ रहा है।" वह बोला, "आने दे। हमने क्या किसीके घर डाका डाला है। सब माल यहीं तो लग रहा है।" बोहरा आया और उसने वह सब सजावट देखी। परन्तु बाबाके प्रभावसे वह

बोला कुछ नहीं, चुपचाप लौट गया।

बाबा कभी-कभी कहा करते थे कि भगवती ! तुमने नीलकण्ठ महादेव का दर्शन किया है ? कभी ऋषिकेश जाओ तो दर्शन करना। एक बार संयोगवश भगवान् स्वामी, कन्हैयालाल, गौरीशंकर और मैं ऋषिकेश गये। वहाँ से हम सब नीलकण्ठ पहुँचे। सबने दर्शन किया। रात्रिमें और लोग तो दूसरी जगह सोये, पर मैं नीलकण्ठ महादेवके समाने बरामदे में बैठ गया। मन-ही-मन सोचने लगा, 'बाबा कई बार कहा करते थे कि तुम ऋषिकेश जाओ तो नीलकण्ठ महादेव के दर्शन अवश्य करना। देखें यहाँ क्या लीला दिखाते हैं ?', मैं यह सोच ही रहा था कि अकस्मात् सामनेका दृश्य बदल गया। नीलकण्ठ महादेवका दर्शन लुप्त हो गया और उनके स्थान-पर बाबा बैठे दिखायी दिये। उनके चारों ओर ऐसा महान् प्रकाश-पुञ्ज दिखायी दिया, जिसके आगे बिजलीका प्रकाश तो कुछ भी नहीं है। बाबाका अद्भुत शृङ्गार था। फूलोंकी सजावट, डमरू. त्रिशूल और कमण्डलु आदि सभी थे। सिर पर जटाजूट था, जिसमें से एक ओर श्रीगंगाजीकी धारा गिर रही थी। मैं आश्चर्यचकित होकर देख रहा था। बाबा बोले, "देख, मेरा असली शृङ्गार यह है।" इसके पश्चात् वह दृश्य समाप्त हो गया।

मैंने सोचा, शायद चिन्तन कर रहा था, इससे ऐसा दृश्य दिखायी दिया। लेट गया, तब भी वही दृश्य। फिर तो वह दृश्य मनमें ऐसा बसा कि हर समय दीखने लगा। खाना नहीं, सोना नहीं, बोलना नहीं, एक दम बेहोश। इसी बीचमें मुझे ज्वर हो गया। लोग जैसे-तैसे मुझे वहाँ से लाये। तीन दिन बाद वह दृश्य बन्द हो गया। लौटनेपर बाबाको भी वह सब बात सुनायी। उसके पश्चात् फिर वह भाव नहीं आया।

श्रीहरिशङ्करजी गुप्त कैमिस्ट (अनूपशहर)

पूज्य श्रीमहाराजजी का प्रथम दर्शन मुझे अनूपशहर ही में हुआ था। परन्तु उनका दर्शन करनेमें मेरा उद्देश्य भगवत्प्राप्ति या ब्रह्मज्ञान–जैसी कोई वस्तु नहीं थी। जैसे अनेकों लोग प्रसाद पानेके लोभसे चले जाते हैं, वैसे ही मैं भी जाता था। उस समय मेरी आयु सोलह–सत्रह सालकी होगी। मैं आठवीं कक्षामें पढ़ता था।

बाबासे मेरा विशेष सम्पर्क कर्णवासमें हुआ। सन् १९३३ या ३४ की गुरुपूर्णिमा कर्णवासमें हुई थी। उस समय उनके दर्शनार्थ मैं वहाँ गया था। एक दिन आप सत्संगमें प्रवचन कर रहे थे। विषय था प्रेम। मैंने बीच हीमें प्रश्न कर दिया—'प्रेम किसे कहते हैं और मोह क्या है ?' परन्तु बाबा मेरे प्रश्नका उत्तर न देकर प्रवचन करते रहे। ग़लती मेरी ही थी। मुझे बीचमें प्रश्न नहीं करना चाहिये था। थोड़ी देरमें मैं वहाँसे उठकर अन्यत्र चला गया। जब प्रवचन समाप्त हुआ तो बाबाने चौबेसे पूछा, "वह लड़का कहाँ गया जिसने प्रेम और मोहका अन्तर पूछा था ? उससे कह देना कि तुम्हारे प्रश्नका उत्तर कल दिया जायगा।" दूसरे दिन आप मुझसे बोले, "ईश्वर गुरु और माता-पितामें जो राग होता है उसे प्रेम कहते हैं और इनके अतिरिक्त स्त्री, पुत्र एवं धनादिमें जो राग होता है वह मोह होता है।" मैंने अनुभव किया कि उसी समयसे बाबाकी दृष्टि मुझपर पड़ गयी। उन्होंने मुझे प्रसाद बाँटनेका काम सौंपा और वह सेवा मैं कुछ दिनोंतक वहाँ रहते हुए करता रहा।

अब तो मेरा यह स्वभाव ही बन गया कि जो भी काम करना

होता उसके विषयमें पहले बाबासे पूछ लेता। जब मेरे विवाहका प्रसंग आया तो उसके विषयमें भी मैंने आपसे पूछा। आपने मना कर दिया कि उस लड़कीसे विवाह मत करो। परन्तु अन्य कई कारणोंसे माता-पिताने वहीं शादी कर दी। हमने पूज्य श्रीमहाराजजीकी बात नहीं मानी, अतः उसका दुष्परिणाम हमें भोगना पड़ा।

जब दसवीं कक्षाकी परीक्षा देनेका अवसर आया, मैंने बाबासे आज्ञा माँगी। आपने आज्ञा दे दी। मैंने परीक्षा दी, परन्तु दो प्रश्न-पत्र बिगड़ गये। मुझे सफलताकी कोई आशा न रही। कुछ दिनों पश्चात् बाबा अनूपशहर आये। मैं दर्शन करनेके लिये गया। वे गंगास्नान करके एक वृक्षके नीचे ध्यानस्थ बैठे थे। मैं वहाँ पहुँचा और प्रणाम करके बैठ गया। परीक्षामें फेल होनेसे विद्यार्थीको कितना दुःख होता है यह वेही जानते हैं जो कभी फेल हुए हैं। कोई तो आत्मघात तक कर लेते हैं। मैं उदासमुख सिर नीचा किये बैठा था। बाबाने नेत्र खोले और पूछा, "परीक्षा दे आया ?" मैंने कहा, "हाँ, दे आया।" मुझे इस बात से आश्चर्य हुआ कि इतने महान् और इतने बड़े-बड़े आदमियोंसे पूजित होनेपर भी बाबा मेरी इतनी छोटी बातपर भी ध्यान रखते हैं। फिर बोले, "मुँह क्यों लटका रखा है ?" मैंने केवल इतना ही कहा, "बाबा ! क्या बताऊँ ?" पर वे सब समझ गये। बोले, "बावला ! मेहनत नहीं करता है और अब मुँह लटकाता है।" उसके पश्चात् पाँच मिनटतक फिर ध्यानस्थ और मौन रहकर बोले, "जा, मैंने तुझे दो नम्बरसे पास किया। पर आगे खूब मेहनत करना।" बाबा अँग्रेजी नहीं पढ़े थे। वे सैकण्ड डिवीजनको ही 'दो नम्बर' कहते थे। बस, मैं खुशी-खुशी घर चला आया। मुझे विश्वास हो

गया कि अब बाबाने कह दिया है तो अवश्य पास हो जाऊँगा। जब परीक्षाफल प्रकाशित हुआ तो मैं द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण था। इसके भीतर क्या रहस्य था, सो तो वे ही जानें।

पीछे श्रीमहाराजजीने मुझे आज्ञा दी थी कि अपनी आय-का दशमांश धर्मार्थ खर्च करते रहना। परन्तु खेद है, मैं उनकी इस आज्ञाका पूर्णतया पालन नहीं कर सका।
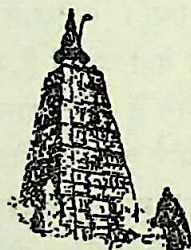
श्रीज्वालासिंहजी प्रबन्धक भृगुक्षेत्र, भेरिया

आरम्भिक परिचय

पहले मैं नरदौलीघाट जिला एटामें श्रीअच्युत मुनिजीके पास रहता था। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा कि जिला बुलन्द शहरमें उड़ियाबाबा नामसे प्रसिद्ध एक अच्छे महात्मा रहते हैं। यदि तुम कभी उस प्रान्तमें जाओ तो उनके दर्शन करना। सन् १९२९ में जब मैं भेरिया आया तो श्रीअच्युत मुनिजीकी आज्ञानुसार गिरिधारी लालजीके साथ बाबाका दर्शन करनेके लिये कर्णवास गया। वहाँ पहुँचकर मैंने बाबाका दर्शन किया तो मुझपर उसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। उनका अनेकों नर-नारियों से घिरे रहना तथा भक्तोंके खिलाने-पिलाने और आने-जानेकी व्यवस्थामें व्यस्त रहना मुझे पसंद नहीं आया। उन दिनों मेरे मनमें योगके कुछ संस्कार थे। दो-दो घण्टे त्राटकका अभ्यास करता था। मनमें यह जाननेकी इच्छा थी कि योगकी कौन-कौनसी सिद्धियाँ होती हैं और उन अवस्थाओं में योगीका शरीर किस-किस प्रकारका हो जाता है? एक बार श्रीअच्युत मुनिजीसे मैंने यह प्रश्न किया था, परन्तु उन्होंने यह कह कर फटकार दिया कि भक्त को इन बातोंसे क्या मतलब। बाबाकी बहुत प्रशंसा सुनकर यही प्रश्न मैं उनसे पूछना चाहता था। परन्तु उनके यहाँका रङ्ग-ढङ्ग देखकर मनमें अश्रद्धा उत्पन्न हो गयी, इससे पूछ न सका।

रास्तेमें—

'उघरहिं विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव-रजनी के।
सूझहिं रामचरित मणि-माणिक। गुप्त प्रगट जो जहँजेहि खानिक।।"

इन गुरुवन्दनाकी चौपाइयोंको गुनगुनाता हुआ वापिस लौट आया। मनमें सोच लिया, यह भृगुक्षेत्र सिद्धभूमि है। यहाँ असंख्य संतोंने भजन किया है। यहीं कभी न कभी मेरे प्रश्नका उत्तर मिल जायगा। रात्रिको भगवान्की आरती हो जानेके बाद मैं सोया और स्वप्नमें मैंने जो दृश्य देखा वैसा न तो पहले कभी देखा था और न उसके पीछे कभी देखनेको मिला। मैंनें देखा कि बड़ा भारी प्रकाश छाया हुआ है। वहीं एक महल है। उसमेंसे एक पन्द्रह-सोलह वर्षकी आयुके छोटे-से उड़ियाबाबा निकले। उनका वेष संन्यासका ही था और आगेको दाँत भी निकले हुए थे। वे पुस्तक लेकर पढ़नेको बैठ गये। उसके बाद एक बहुत बड़े उड़ियाबाबा निकले। उनका मुँह सुदूर आकाशमें दीख रहा था और चरण फटी हुई पृथ्वीमें जलके ऊपर दिखायी देते थे। फिर एक बहुत मोटे उड़ियाबाबा निकले, जो सामान्य आकारसे बीसों गुना मोटे थे। उसके पश्चात् एक बहुत ही दुबले-पतले हड्डीके ढाँचामात्र उड़ियाबाबा प्रकट हुए। फिर एक ऐसे उड़ियाबाबा दीखे जो आकाशमें उड़ रहे थे। तदनन्तर एक उड़ियाबाबा चट्टी पहनकर समुद्रपर चलते दिखायी दिये। फिर अनेकों प्रकारके पशु-पक्षियोंके रूपमें उड़ियाबाबा दीखे, जिनका और सब शरीर तो उन-उन पशु-पक्षियोंके समान था परन्तु मुख उड़िया बाबाजीका-सा था। फिर अशरफियोंके ढेरपर बैठे हुए उड़ियाबाबा देखे और उसके पश्चात् अनेकों उड़िया बाबाओंका बाजार-सा देखा, जिसमें विविध प्रकारके उड़ियाबाबा थे। फिर वे सभी स्वरूप अदृश्य होगये। महाराजजी बोले, "देखा, ये ही योगकी सिद्धियाँ हैं।" तत्पश्चात् वह स्वप्न भङ्ग हो गया।

उसके कुछ दिनों पश्चात् अनूपशहरमें मुझे बाबाके दर्शन हुए।

वहां पं० बद्रीप्रसादजी द्वारा लिखित योगप्रदीप नामक ग्रन्थकी कथा हो रही थी। उसमें उन्हीं सिद्धियों का प्रसंग चल रहा था जिन्हें मैंने स्वप्नमें देखा था। कथाके अन्तमें बाबाने मुझसे कहा, "समझ लिया।" इससे मैंने समझ लिया और मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि बाबा योगिराज हैं और दूसरोंके मनकी बात जान लेते हैं। बाबाने ही कृपा करके मेरे मनका समाधान करनेके लिये स्वप्नमें वे सब दृश्य दिखाये थे। यद्यपि मैंने उनसे पूछा कुछ भी नहीं था, तथापि उन्होंने मेरे मनकी बात जान ली थी। उसके पश्चात् बाबा जहाँ-कहीं भी रहते मैं उनके दर्शनोंके लिये अवश्य जाता, क्योंकि उनके प्रति मुझे अटूट श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी।

स्वप्नमें समाधान

इसके कुछ वर्षों बाद मेरे मनमें यह जिज्ञासा हुई कि ज्ञानी ज्ञानकी सात भूमिकाओंमें किन-किन अवस्थाओंको प्राप्त होता है और उन-उन अवस्थाओंमें उसके आहार-विहारादि आचरण कैसे होते हैं? एक दिन मैंने सुना कि बाबा हाथरसमें हैं। मैंने वहाँ जाकर उनका दर्शन किया और रात्रिमें सोया तो स्वप्नमें देखा कि मेरे ही सात स्वरूप सात स्थानोंमें बैठे हैं और मैं उनका द्रष्टा होकर सबको देख रहा हूँ। उनमेंसे चार स्वरूप तो बोलते-चालते हैं और तीन मौन हैं। उन तीनोंकी बड़ी विलक्षण अवस्था है। इतने हीमें बाबाके दर्शन हुए और वे बोले, "ये अवस्थाएँ बहुत शीघ्र ही तुम्हें लिखनेको मिलेंगी।" उसके दो दिन पश्चात् बिठूरसे श्रीयुगलानन्द ब्रह्मचारी आये। उन्होंने मुझे सात-आठ श्लोक लिखवाये, जो सब मेरे प्रश्नके ही उत्तर थे। उनमेंसे निम्नलिखित श्लोकने मेरी इस शंकाका भी समाधान कर दिया कि बाबा जब कथा या सत्संगमें

बैठते हैं तब ऊँघते क्यों रहते हैं—

'अन्तर्मुखतया तिष्ठन् बहिर्वृत्तिपरोऽपि सन् ।
परिश्रान्ततया नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते ॥'

अर्थात् जो महात्मा बाह्य व्यापारोंमें रहते हुए भी अन्तर्मुख होकर ही रहता है वह परिश्रान्त-सा (थका-सा) रहनेके कारण निद्रालु-सा दिखलायी देता है ।

अद्भुत चिकित्सा

सन् १९२५ ई० से ४४ ई० तक मैं भयंकर वायुरोगका रोगी रहा हूँ । मुझे गृध्रसी (साइटिका) और आमवात (गठिया) थी । सारे शरीरकी हड्डियोंमें दर्द होता था । वातोन्मादके दौरे आते थे । पाँच-पाँच, छः-छः घंटेतक बेहोश रहता था तथा शरीरमें पक्षाघात (लकवा) के बहुतसे चिह्न प्रकट हो गये थे । श्रीअच्युत मुनिजीने कलकत्ता, बंबई और दिल्लीके डाक्टरोंसे चिकित्सा करानेमें सहस्रों रुपये खर्च कराये । देशी इलाज भी बहुत हुए, परन्तु कोई लाभ न हुआ । अन्तमें महाराजजीने कहा कि अब कोई इलाज मत कराओ, केवल भगवान्से प्रार्थना करो । इसके कुछ ही दिनों पश्चात् कर्णवाससे बाबा पधारे । मुझे दुःखी देखकर बोले, "भगवान्की जब महान् कृपा होती है तब इस शरीरमें पूर्व-जन्मोंके कर्मोंका फल भोगनेको मिलता है । इसे तुम प्रभुकी कृपा ही समझो ।"

बाबा रातको आश्रममें ही ठहरे । रसोइया उन्हें पिलानेके लिये रात्रिमें आधा सेर दूध ले गया । परन्तु उन्होंने पीया नहीं । रसोइयाने वह दूध अलमारीमें रख दिया । उसी अलमारीमें वैद्य

रेवतीवल्लभजीका निकलवाया हुआ आधा सेर आकका दूध भी रखा था। प्रातःकाल होनेपर बाबा श्रीअच्युतमुनिजी के पास अनूपशहर चले गये। मुझे बातके प्रकोपसे बड़ी प्यास लगी। मैंने सोचा रातका जो बाबाका प्रसादी दूध रखा है उसे पी लूँ। परन्तु उसे तो रसोइयाने पी लिया था। मैंने उसीके भ्रममें आक का दूध गर्म किया और उसमें प्रसादके आठ पेड़े मिलाकर पी लिया। कुछ खट्टा तो लगा, परन्तु समझा कि पीतलके गिलासमें रहनेके कारण खटाई आ गयी होगी। इसके आधा घंटा पश्चात् शरीरमें दाह उत्पन्न हुआ तथा नाड़ियोंमें ऐंठन और बेहोशी होने लगी। आश्रममें एक सिविलसर्जन स्वामी थे। उन्होंने देखकर कहा, "तुम ने बिष खा लिया है। शरीरका बचना कठिन है।" तब मैंने समझा कि मैं आकका दूध पी गया हूँ। मैंने सोचा कि अब अनूप-शहर चलकर श्रीमहाराजजी (श्रीअच्युत मुनिजी) के चरणोंमें ही शरीर छोड़ना चाहिये। अतः तुरन्त लाला बाबूकी कोठीपर पहुँचा। वहाँ महाराजजी कुर्सीपर बैठे थे और बाबा तख्तपर विराजमान थे। श्रीहरि बाबाजी भी वहीं बैठे थे और श्रीभोले-बाबाजी वेदान्तछन्दावली सुना रहे थे। मैंने सबको दण्डवत् प्रणाम किया और बैठ गया।

कथा समाप्त होनेपर मैंने सारा हाल कहा। महाराजजीने तुरन्त वैद्य-डाक्टर बुलाये और उपचार कराया, परन्तु लाभ कुछ न हुआ। मैं बेहोश पड़ा रहा। धीरे-धीरे पाँच-छः दिन पश्चात् स्वयं ही हालत ठीक हो गयी। फिर न तो गृध्रसी रही, न मूर्च्छाके दौरे और न हड्डियोंमें दर्द रहा। परन्तु शरीरमें दाह होनेके कारण इन दिनों ठण्डे पदार्थोंका अधिक सेवन किया था और जलमें भी

बहुत देरतक बैठा रहता था, इसलिये शरीर सुन्न हो गया। पाँच-छः वर्षतक ऐसी दशा रही और केवल ओषधियोंके बलपर ही शरीर चलता रहा। श्रीहरिबाबाजी और सेठ आदित्यनारायणजी आदिने डाक्टर हंसराज आदि बड़े-बड़े डाक्टरोंको दिखलाया। परन्तु सबसे निराश होकर लौटना पड़ा।

एक दिन मैं अनूपशहरमें श्रीनन्नामलजींकी बैठकमें तख्तपर लेटा हुआ था। सामने पूज्य बाबाका चित्रपट था। उसका दर्शन कर रहा था। जीवनसे निराश हो चुका था। ऐसा जान पड़ता था, अब दो-तीन दिनमें ही शरीर छूट जायगा। मस्तिष्क काम नहीं देता था। अकस्मात् बाबाके चित्रपटमें ध्यान लगाये मुझे नींद आ गयी। मैं स्वप्न देखने लगा। बाबा हाथमें कमण्डलु लिये खड़े हैं और मुझसे कह रहे हैं, "ठाकुर ! तू बाजीकरण खा।" फिर आँखें खुल गयीं। मैंने श्रीलल्लूजीसे बाजीकरण देनेको कहा। वे बोले, "बाजीकरण खाना तुम्हारा काम नहीं है। और बाजीकरण तो कई प्रकारका होता है। तुम्हें कौन-सा दिया जाय ?" मैंने कहा, "आप सबको मिलाकर पुड़िया बनादें।" उन्होंने सात पुड़ियाएँ बनाकर दीं। मैंने उनमेंसे एक खायी तो मुझे सारे शरीरकी हड्डी और नाड़ियोंके दर्शन होने लगे तथा रक्तका संचार भी होने लगा। शरीरमें अद्भुत चमत्कार और बलकी स्फूर्ति जान पड़ी। मैं शेष पुड़ियाएँ लेकर भेरिया चला आया।

दूसरे ही दिन पता चला कि बाबा भिरावटीमें हैं। मैं सवारी द्वारा भिरावटी पहुँचा। सातों पुड़िया खा लेनेपर मेरा शरीर नीरोग हो गया। जब बाबाका दर्शन करने गया तो वे हँसकर कहने लगे, "अब तो तू ठीक हो गया। अब तुम इस ओषधिको

भगवान्‌का महाप्रसाद समझकर सेवन करो।" तबसे अबतक मैंने सहस्रों रोगियोंको वह ओषधि दी है और बाबाकी कृपासे शत-प्रतिशत रोगियोंको उससे लाभ हुआ है। पन्द्रह-बीस वर्षके भीतर सहस्रों पक्षाघाती, अपाहिज, राजयक्ष्मावाले और बातरोगी उससे अच्छे हो हो चुके हैं। मैं बाबाके प्रतापसे जीवनभर इसी ओषधिके द्वारा जनता-जनार्दनकी सेवा करना चाहता हूँ।

चोरका पता लगा

पहले मेरे यहाँ सोलह-सत्रह बार चोरियाँ हुईं। चोरोंका पता लगता नहीं था। एक बार दीपमालिका से पहले चोरी हुई। मैंने वृन्दावन जाकर पूज्य बाबाका दर्शन किया। बाबाने पूछा, "तू उदास क्यों है ?" मैंने कहा कि महाराज ! बड़ी-बड़ी चोरियाँ हो गयीं हैं और चोरका पता लगता नहीं है।" वे बोले, "अबकी बार चोरका पता लग जायगा और आगे चोरी भी नहीं होगी।" इसके थोड़े दिनों पश्चात् चोरका पता लग गया। उस चोरकी अपनी स्त्रीके साथ लड़ाई हो गयी। उसने स्त्रीको बहुत पीटा और सब जेवर लेकर अपने सम्बन्धीके यहाँ चला गया। उसने उसे क़त्ल कर दिया और वे सब जेवर स्वयं ले लिये।

नई कोठरियोंकी प्रतिष्ठा

एक दिन रातको स्वप्नमें बाबाने दर्शन दिया और बोले, "फलाहारका प्रबन्ध कर, आज मौनीबाबा आ रहे हैं।" बस, उसी दिन दस-ग्यारह बजे मौनीबाबा आ गये। मैंने उन्हें स्वप्नका सारा हाल सुनाया। वे बोले, "जैसे गाड़ी छूटनेसे पहले तार बाबू आगेको तार दे देता है कि गाड़ी जा रही है, लाइन साफ रखो, उसी

प्रकार बाबाने आगेसे तुम्हें फलाहारका प्रबन्ध करनेकी सूचना दे दी थी।" मैंने कहा, "बाबाने आपके आनेकी सूचना दे दी थी, अब आप बाबाको ले आओ।" वे बोले, "वे तो रास्ता चलते मिल जायँगे।" ऐसा ही हुआ। सीतारामबाबा श्रीहरिबाबाजीको ले आये और बाबा अनूपशहर जा रहे थे, सो मैं जाकर प्रार्थना करके उन्हें ले आया। फिर तो कीर्तन और श्रीरामायणजीका गान होने लगा। आश्रममें कुछ नयी कोठरियाँ बनी थीं। इस प्रकार महापुरुषोंके पधारनेसे उनकी प्रतिष्ठा हो गयी।

पूज्य बाबाके ऐसे ही अनेकों विचित्र चरित्र हैं, उनका कहाँतक वर्णन किया जाय?

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सम्पादक 'कल्याण'

गोरखपुर

पूज्यपाद श्रीउड़िया स्वामीजी यथार्थमें क्या थे, कैसे थे, इस सम्बन्धमें मैं कैसे कुछ कहूँ। मेरी समझसे वे पूर्ण महात्मा थे। मैंने उनका अत्यन्त स्नेह प्राप्त किया था। मुझ पर उनकी बड़ी कृपा थी, इसे मैं अनुभव करता हूँ। मैंने उनसे एकान्तमें अनेक बार बातें कीं—तत्वके सम्बन्धमें भगवत्प्रेम के सम्बन्धमें और रसके सम्बन्धमें भी। व्यक्तिगत बातें भी मैंने उनसे बहुत बार कीं—जिनमें कुछ ऐसी भी थीं जो उनके जैसे सत्पुरुषके सामने, उन्हींके सम्बन्ध में, मुझ जैसे नगण्य व्यक्तिको नहीं करनी चाहिये थीं। पर उन्होंने उनका जो उत्तर दिया, वह अपार स्नेह भरा तो था ही, संतोष-चित्त भी था। उनके उत्तरने मुझे संतोष प्रदान किया और शिक्षा भी तथा सुख भी।

एकबार वे बाँधपर गङ्गास्नान कर रहे थे। उस समय कुछ बच्चे उनपर निस्सङ्कोच पानी उलीचने लगे और स्नान कर लेने पर उनके कौपीन के लिये भी उनमें खींचतान होने लगी। मैंने कुछ प्रतिवाद-सा किया। तब उन्होंने मुझसे कहा—'बताओ, मैं क्या करूँ ?' इनसे लड़ूँ या भाग जाऊँ ? एक ओर जहाँ वे बड़े महान्, ज्ञान के भण्डार, गंभीर तत्वज्ञ थे, दूसरी ओर अत्यन्त सरलतासे बच्चोंके साथ खेलते थे। प्रयागमें कुम्भके अवसर पर एक बार एकान्तमें खानपानके विषयमें मैंने कुछ शिकायत की और

मैंने कहा—ऐसा नहीं करना चाहिये, वैसा नहीं करना चाहिये। वे हँसकर बोले 'तो तुम बताओ, जैसे करूँ, कभी-कभी तो मुझे साठ-साठ घरोंमें भिक्षा करनी पड़ती है। मेरा पेट भर जाता है, मैं खाना नहीं चाहता तो लोग मेरे हाथ पकड़कर जबरदस्ती मेरे मुँहमें भोजन सामग्री ठूँसने लगते हैं। बताओ मैं क्या करूँ। दो एकबार तो मैं चुपकेसे भाग भी गया था पर मुझे पकड़ लाये।

मैं उनसे एकान्तमें संकोच छोड़कर बातें करता था। बड़ा ढीठ हो गया था परन्तु उन्होंने सदा ही स्नेह किया, यहाँ तक कि मेरे सम्बन्धमें कुछ ऐसी बातें वे अपने भक्तोंमें से कुछ-को कह गये जिनसे उनका अत्यधिक स्नेह सिद्ध होता है। मैं तो उनके उन वचनोंको आशीर्वाद मानता हूँ।

उनका स्मरण करके मैं पवित्रताका अनुभव करता हूँ। इस समय भी उनका वह प्रसन्न वदनारविन्द मेरे मानस नेत्रोंके सामने हैं। वे मुसकरारहे हैं और अपना स्नेह-दान दे रहे हैं। ज्ञान तथा भक्तिके निरूपणकी उनकी प्रणाली बड़ी ही विलक्षण थी। उनका व्यवहार बड़ा सरल और स्नेह पूर्ण होता था। इससे सभीको ऐसा लगता था कि वे केवल मेरे ही हैं, मुझपर ही सर्वाधिक स्नेह करते हैं। बाहरी व्यवहारसे उन्हें समझना बहुत कठिन था। उन्हें तो उनकी कृपासे ही समझा जा सकता था।

× खेद है कि श्रद्धेय पोद्दारजीका लेख तब मिला जब पुस्तकके १८ फार्म प्रायः छप चुके थे। इस लिए इस लेख को अनुरूप स्थान पर नहीं दिया जा सका।

पं० श्रीजनार्दनजी चतुर्वेदी, हाथरस

(१)

श्रीमहाराजजी कभी-कभी हाथरसमें आते रहते थे। एकवार वे पधारे। उस समय पण्डितसमाजमें यह प्रवाद प्रचलित हुआ कि उड़ियाबाबा नामके प्रसिद्ध महात्मा आये हैं। वे भोजनका पदार्थ सामने आनेपर उसमेंसे एक ग्रास ले लेते हैं और फुर्र करके सब पदार्थको उच्छिष्ट कर देते हैं। फिर उसी पदार्थको उनके सब भक्त खाते हैं। यह बात सुनकर मेरे मनमें संकल्प हुआ कि देखें सच्ची बात क्या है ? संयोगवश गोखले पुस्तकालयके अध्यक्ष मेरे मित्र श्रीजयनारायणशर्मा ने मुझे आमन्त्रित किया कि आज श्रीउड़िया-बाबाजी महाराज पुस्तकालयमें पधारेंगे, आप भी आवें। मैं तो ऐसा अवसर चाहता ही था। मैं बाबाके आनेसे पहले ही वहाँ पहुँच गया। समयपर बाबा पधारे। उनके लिये एक चौकीपर आसन लगाया गया था। उसीपर वे बैठ गये। प्रेमियोंने चन्दन, पुष्प, माला आदिसे उनका पूजन किया। अन्तमें अंगूर, अनार आदि फलोंसे भरा थाल उनके सामने रखा गया। श्रीमहाराजजीने थालमेंसे दो-चार दाने लेकर दूर जाकर ऊपरसे मुखमें डाल लिये और हाथ धोकर फिर आसनपर आ विराजे। इस दृश्यको देखकर मेरे मनकी जिज्ञासा शान्त हो गयी। मैं मन ही मन कहने लगा, "जिन्होंने ऐसी झूठी अफवाह फैलायी है उन्होंने बहुत बुरा किया है।" इस प्रसंगमें ध्यान देनेयोग्य विशेष बात यह है कि श्रीमहा-

राजजीने मेरे मनकी बात जानकर ही वैसा आचरण किया था। अतः मेरे मनमें यह विचार हुआ कि यदि इन्होंने मेरे मनकी बात जानकर मेरा समाधान करनेके लिये ही ऐसा आचरण किया है तब तो ये अन्तर्यामी सिद्ध होते हैं। और यदि ये अन्तर्यामी हैं तो निश्चय ही कोई महान् विभूति हैं। ऐसी स्थितिमें भक्तोंको इनका महाप्रसाद लेनेमें कोई हानि नहीं हो सकती, अपितु उसे लेना उचित और आवश्यक भी है। परिणाम यह हुआ कि इससे श्रीमहाराजजीके प्रति मेरे मनमें श्रद्धा-भक्तिके भाव उत्पन्न हुए, जो आगे चलकर उनके श्रीचरणोंमें प्रीतिकी उत्पत्तिके कारण हुए। फिर तो ऐसा हुआ कि कई बार मेरे मनमें उनका महाप्रसाद लेनेकी लालसा उत्पन्न होती, पर वे मना कर देते। अन्तमें मेरी विशेष रुचि देखकर वे कृपापूर्वक मुझे महाप्रसाद देने लगे थे। इस सम्बन्ध में सच्ची बात यह है कि श्रीमहाराजजीका महाप्रसाद उनमें श्रद्धा-भक्ति रखनेवाले भक्तगण ही लेते थे, बाहरवाले अन्य व्यक्तियोंको वह कभी नहीं दिया जाता था।

इस प्रथम दर्शनके पश्चात् मेरा चित्त श्रीमहाराजजीकी ओर आकर्षित हुआ। फिर तो कर्णवास, रामघाट आदि अन्य स्थानोंमें भी मैं बराबर उनके दर्शनोंके लिये जाता रहा। यद्यपि मैंने उनके साथ लौकिक वा पारमार्थिक लाभका कोई सम्बन्ध नहीं रखा तथापि उनकी कृपासे मुझे अनेकों लाभ बिना प्रार्थना किये ही हो जाते थे। जब कभी विकट स्थिति आती और मैं उनके दर्शनोंको जाता तो उनके सामर्थ्यसे खेल-खेल हीमें वह समस्या निवृत्त हो जाती थी। जब किसी भयानक परस्थितिके उपस्थित होनेपर मैं उनके चरणोंमें उपस्थित होता तो प्रणाम करते समय सर्व प्रथम

विना पूछे जो वाक्य श्रीमहाराजजी बोलते वही मेरी समस्याको सुलझानेका सर्वोत्तम उपाय होता और उसीसे वह परिस्थिति सुधर जाती।

(२)

एकबार मैं दर्शन करनेके लिये कर्णवास गया। उस समय तक मेरे कोई पुत्र नहीं था, केवल एक लड़की थी। चलते समय उन्होंने प्रसादस्वरूप एक फल दिया। फल हाथमें आते ही मेरे मनमें यह भाव आया कि श्रीमहाराजजीने मुझे प्रसादमें यह पुत्र दिया है। वह फल मैंने अपनी धर्मपत्नीको दिया और कहा कि श्रीमहाराजजीने यह तुम्हारे लिये पुत्र दिया है। पर उसने हँसी समझकर वह फल फेंक दिया। मुझे खेद हुआ। मैंने फिर उठाकर वह फल उसे दिया और उसे दोनोंने मिलकर खाया। उसके दस मास पश्चात् पुत्र उत्पन्न तो हुआ परन्तु प्रसादकी अवज्ञाके कारण एक वर्षके भीतर ही जाता रहा। उसके बाद मैं फिर कर्णवासहीमें श्रीमहाराजजीके पास गया। उस समय विदा होते समय उन्होंने प्रसादमें एक गोला दिया। इस बार भी गोला हाथमें आते ही मुझे यही भाव हुआ कि यह पुत्र ही है। वह गोला लाकर मैंने पत्नीको खिलाया। उसके दस मास पश्चात् जो पुत्र हुआ वह अबतक सकुशल है।

(३)

एक बार मैं कर्णवासमें श्रीमहाराजजीके पास श्रीमद्भागवत की कथा सुना रहा था। साथमें धर्मपत्नी और तीन वर्षकी कन्या भी थी। श्रीमहाराजजी स्वयं पारसभागकी कथा सुना रहे थे। उस समय लड़की मांकी गोदमें बैठी थी। उसे १०३ डिग्रीका ज्वर था।

अकस्मात् वह बोल उठी, "बाबा ! दण्डवत् ।" उसी समय श्रीमहाराजजीने उसे केला और पेड़ा प्रसादमें दिया । लड़कीने उन्हें खा लिया । बस, तभी उसका सारा ज्वर उतर गया । श्रीमहाराज जीमें मैंने तीन सिद्धियाँ देखी थीं—(१) परचित्ताभिज्ञता (दूसरों के मनकी बात जान लेना), (२) शक्तिप्रेरणा (अपनी शक्ति दूसरोंमें प्रविष्ट कर देना) और (३) यत्कामस्तदवसायिता (जिस वस्तुका संकल्प हो उसीका उपस्थित हो जाना) ।

(४)

मुझे भांग पीनेकी आदत पड़ गयी थी । उससे होनेवाली हानि को भी जानता था, परन्तु छोड़ नहीं पाता था । एक दिन मैंने श्रीमहाराजजीसे प्रार्थना की कि मुझे भाँग पीनेकी आदत पड़ गयी है, यह छूटती नहीं है । आप ऐसी कृपा करें जिससे यह छूट जाय । श्रीमहाराजजी बोले, "अरे ! सब अपने आप छूट जायगी ।" मैं हाथरस चला आया । एक दिन एक महापुरुष मेरे पास आये और बोले, "भाँग घोटो ।" मैंने कहा, "आप महात्मा होकर भाँग पीते हैं ।" वे बोले, "संगसे दोष आ जाते हैं ।" मैंने कहा, "संगके प्रभाव को त्यागना चाहिये या उसका पोषण करना चाहिये ?" उस समय मुझे ऐसा लगा मानो मैं श्रीमहाराजजीसे ही बातें कर रहा हूँ और उन महापुरुषके रूपमें स्वयं महाराजजी ही बोल रहे हैं । उनकी शक्तिप्रेरणा मुझे स्पष्ट अनुभव होती थी । मैं कहने लगा, "मैं तो भाँगका पात्र भी नहीं छूता । दूसरे लोग तैयार करके चने बराबर दे देते हैं, उसीको ले लेता हूँ ।" तब महात्माजीने स्वयं घोटकर भाँग तैयार की और बोले, "आज खूब छककर पिओ ।" उन्होंने स्वयं भी पी और मुझे भी डटकर पिलायी । फिर बोले,

"बोलो, क्या चाहते हो ?" मैंने कहा, "बस, यही कि भाँग पीने की आदत छूट जाय।" उन्होंने कह दिया, "कलसे भाँग नहीं पीओगे।" सचमुच दूसरे दिनसे ही मुझे भाँगसे ऐसी घृणा हो गयी जैसी कि किसी भी घोर दुष्कर्मसे हो सकती है। मेरा भंग पीना सर्वथा छूट गया और जिस सङ्गसे यह आदत पड़ी थी वह सङ्ग और वगोवो भी छूट गयी। श्रीमहाराजजीकी ऐसी अद्भुत शक्ति थी। हम उसे नहीं जान पाते थे।

पं० श्रीरामदत्तजी वैद्य, हाथरस

सम्पर्कका सूत्रपात

सन् १६२६ ई० की बात है, मैं सर्व प्रथम श्रीशङ्करलालजी के साथ महाराजजीके दर्शनार्थ रामघाट गया था किन्तु उस समय सामान्य बातचीतके अतिरिक्त उनसे मेरा कोई विशेष सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका। उसके पश्चात् संयोगवश मैंने एक अन्य महात्मासे साधनका उपदेश ग्रहण किया। उन्होंने मुझे प्राणायाम-की प्रक्रिया बतलायी। उसमें मैंने प्रगति तो अच्छी की परन्तु किसी विशेष कारणवश उसका परिणाम यह हुआ कि मुझे नींद बहुत कम आने लगी। जितनी देर नींद आती थी उसमें भी मुझे स्वप्न बहुत अधिक दिखायी देते थे। इस विघ्नके कारण मैं बहुत चिन्तित रहने लगा। उन महात्माजीके सामने यह समस्या रखी तो उन्होंने प्राणायाम बढ़ानेकी ही आज्ञा दी। परन्तु इससे मेरे स्वप्न और भी अधिक बढ़ गये।

एकबार मैं बुलन्दशहरसे एक बरातके साथ लौटा। उस समय श्रीमहाराजजी यहाँ विष्णुदयालके बगीचेमें ठहरे हुए थे। मैं उनके दर्शनार्थ गया और उनके चरणोंमें अपनी मनोव्यथा निवेदन की। पहले तो आप बोले, "भैया! जिनसे उपदेश लिया है उन्हींसे इस विघ्नकी निवृत्तिका भी साधन पूछना चाहिये।" किन्तु फिर मेरी स्थिति देखकर बोले, "तुम प्राणायाम करना छोड़ दो और श्रीमद्-भागवतके एक सौ आठ मासिक पारायण करो। इससे यह

विघ्न दूर हो जायगा ।" मैंने आपकी इस आज्ञाका पालन किया और इससे मेरा वह विघ्न निवृत्त हो गया ।

मेरे जीवनमें ऐसी घटनाएँ अनेकों बार घटीं कि जब मैं कोई प्रश्न लेकर श्रीमहाराजजीके पास जाता तो वे पूछनेसे पहले ही उसका उत्तर दे देते । जीवनमें ऐसे अवसर भी अनेकों बार आये कि मेरे मनमें किसीको भला-बुरा कहनेकी, किसीकी निन्दा-स्तुति करनेकी अथवा किसीके चपत लगानेकी भावना उठती, किन्तु उसी समय श्रीमहाराजजीका यह उपदेश याद आ जाता—

'तेरे भावे जो करो, भलो बुरो संसार ।
'नारायण' तू बैठिके, अपनो भवन बुहार ।।'

कन्याका विवाह सम्बन्ध

और फिर मेरे चित्तसे वह दुर्भाविना निकल जाती ।

मेरी एक कन्या विवाहके योग्य हुई । मैं उसके लिये वरकी खोज में था । परन्तु मेरे मनमें यह संकल्प था कि यदि श्रीमहाराजजीके भक्तपरिकरमें ही कोई योग्य वर मिल जाय तो अधिक अच्छा हो । यह सोचकर मै गुरुपूर्णिमाके अवसरपर श्रीमहाराजजी का पूजन करनेके लिये कर्णवास गया । एक दिन मैंने अपना उपर्युक्त विचार रामघाटनिवासी वैद्य प्यारेलालजीसे कहा । वे बोले, "पं० बाबूराम बगीचीवालोंका एक लड़का तो है, पर वे बड़े आदमी हैं, स्वीकार करें या न करें ?" उसके पाँच मिनट बाद ही उन्होंने पं० बाबूरामको पूजन करने लिये जाते हुए दिखाया । थोड़ी ही देरमें मैंने देखा कि श्रीमहाराजजी ऊपरकी ओर जा रहे हैं । मैं उनके पीछे हो लिया । मुझे देखकर वे बोले, "अरे रामदत्त ! तुमने भोजन कर लिया ?"

मैं—हाँ महाराजजी ! कर लिया ।

महाराजजी—तो जाओ, आराम करो ।

मैं—महाराजजी ! पं० बाबूरामका एक लड़का है……।

महाराजजी—अरे ! तू उससे अपनी लड़कीका सम्बन्ध करना चाहता है ? जा, मैं कह दूँगा । कोई चिन्ता न कर ।

दूसरे दिन आपने बाबूरामजीसे कह दिया । उन्होंने स्वीकार तो किया, किन्तु सोच-विचारकर निश्चित उत्तर देनेके लिये कुछ अवकाश माँगा । उन्हें सात दिनका अवकाश दिया गया । जब मैंने हाथरस आनेके लिये आज्ञा माँगी तब आप बोले, "अरे । कलसे हमारे यहाँ भागवतका सप्ताह है । तू हमारे यहाँका वैद्य है । कोई बीमार पड़ गया तो इलाज कौन करेगा?" मैंने कहा, "महाराजजी ! कुछ आवश्यक कार्य है । यदि आज्ञा हो तो उसे करके कल ही आ जाऊँगा ?" इसपर आपने सहर्ष अनुमति दे दी ।

छः-सात दिन बीतनेपर पं० बाबूरामजीने महाराजजीसे कहा, "आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । और तो कुछ नहीं, बरातमें जो चार आदमी जायँ उनका स्वागत-सत्कार अच्छा हो जाना चाहिए ।" श्रीमहाराजजी बोले, "अरे ! यह ऐसी क्या बात है ? हाथरसमें गणेशीलाल, जानकीप्रसाद, राधेश्याम कई बड़े आदमी रामदत्तके प्रेमी हैं, स्वागत-सत्कार तो अच्छा हो जायगा, तुम्हारी इच्छानुसार रामदत्तसे रुपया भी दिलवा दूँगा । तुम रामदत्तको पत्र लिख देना ।"

उन्होंने श्रीमहाराजजीकी आज्ञाका पालन किया और विवाहका सारा कार्य श्रीमहाराजजीकी कृपासे सुगमतासे सम्पन्न हो गया ।

पुत्रकी प्राणरक्षा

सन् १६३३ की बात है । मेरे ज्येष्ठ पुत्र शिवदत्तके चेचक निकली । बीमारी बड़ी विकट थी । सारे शरीरमें बड़े-बड़े चकत्तोंसे पीप निकलता था । अपने जीवनमें मैंने चेचकका ऐसा रोगी हजारोंमें एक ही देखा होगा । दशा इतनी बिगड़ी कि मुझ उसके जीवनसे निराशा हो गयी ।

उन दिनों श्रीमहाराजजी अलीगढ़में थे । वहाँ नित्यप्रति उनका सत्संग होता था परन्तु लड़केकी बीमारीके कारण मैं जा न सका । आखिर, मैंने सोचा कि यहाँ रहकर तुम लड़के को बचा तो सकोगे नहीं, फिर ऐसा अवसर क्यों खोते हो ? अतः माँ से अनुमति लेकर मै श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ अलीगढ़ चला गया । जाकर उन्हें प्रणाम किया और फिर परिक्रमा करने लगा । मेरी मुखाकृति देख-कर श्रीमहाराजजीने पूछा, "रामदत्त ! तू उदास क्यों है ? मैंने कहा, "महाराजजो ! लड़केकी हालत बहुत खराब है । शायद अब उसका शरीर........।" इतना कहते हुए मेरे नेत्रोंमें आँसू आ गये । मेंरे मुखसे ये शब्द निकलते ही आपने मुझे डाँटते हुए कहा, "अरे! चुप । बावला है ? ऐसा नहीं कहते । जा, अब चला जा ।"

महाराजजी की आज्ञा होनेसे मैं लौटकर घर चला आया । रातके आठ बजे थे । मैंने सोचा, यदि लड़का मर गया होगा तो घरमें रोना-धोना मचा होगा । अतः बाहर ही दरवाजेपर कान लगाकर सुनने लगा । जब कोई आवाज सुनायी न दी तो सोचा— शायद रोते-रोते थक गयी हैं, इसलिये चुप हैं । फिर दस मिनट और भी प्रतीक्षा की । परन्तु फिर भी कोई शब्द सुनायी न दिया ।

तब यह समझकर कि लड़का अभी जीवित है मुझे धैर्य हुआ और आवाज देकर दरवाजा खुलवाया। भीतर जाकर माँ से लड़केका हाल पूछा तो वह बोली, "साढ़े चार बजेसे लल्लाकी हालत सुधरने लगी है। अब तो वह होशमें है।" मैंने स्मरण किया तो मालूम हुआ ठीक साढ़े चार बजे ही मुझे श्रीमहाराजजीने ढाढस देकर भेजा था।

इसके पश्चात् दो-तीन दिनमें ही लड़का पूर्णतया स्वस्थ हो गया। ऐसे रोगी प्रायः बचते नहीं हैं। मैंने तो इसे श्रीमहाराजजीकी कृपाका ही फल माना। उनके साथ मेरा सम्बन्ध केवल संतदृष्टिसे ही नहीं था, वे तो हमारे माता, पिता और बाबा थे।

अस्वादव्रत

एकबार एक ठकुरानी साहिबाके प्रार्थना करनेपर श्रीमहाराजजी उनके यहाँ पधारे थे। साथमें चालीस-पचास भक्त भी थे। मैं भी था। भोजन करते समय घीयाका साग परोसा गया। उसमें नमक नहीं था। एक तो घीयाका साग और उसमें नमक नहीं! पर किसीने भी कुछ कहा नहीं। मैंने ही धीरे से कह दिया, "सागमें नमक नहीं है।" महाराजजी यद्यपि मुझसे काफी दूर थे, तथापि उन्होंने सुन लिया और बड़े जोरसे डाँटा, "कौन है?" मैं सिटपिटा गया। बस, सब लोग भोजन करके उठ गये।

पीछे ठकुरानीजीके आदमी भोजन करनेके लिये बैठे। वे भला, क्यों चुप रहने लगे। बात ठकुरानी साहिबाके कानोंतक पहुँची। वे श्रीमहाराजजीके पास जा हाथ जोड़कर क्षमा प्रार्थना करने

लगीं । आप बोले, "अरे ! साग तो बहुत अच्छा बना था । क्षमाकी क्या बात है ? हमें तो बहुत अच्छा लगा ।" हमारे लिये तो उनकी उस एक डाँटका ही यह परिणाम हुआ कि अबतक यदि सागमें नमक न हो तो मैं यह कभी नहीं कहता कि नमक नहीं है । जैसा भी सामने आ जाता है चुपचाप खा लेता हूँ ।

प्रार्थनास्वीकृति

श्रीमहाराजजी मुझे पुकारते समय नाम न लेकर प्रायः 'वैद्यजी' कहा करते थे । इससे मुझे बड़ा संकोच होता था । इसके लिये मैंने कई बार प्रार्थना भी की कि आप मेरा नाम लेकर ही आज्ञा प्रदान किया करें । परन्तु उन्होंने उसपर ध्यान नहीं दिया । अन्तमें मैंने निश्चय किया कि जब श्रीमहाराजजी 'वैद्यजी' कहकर बोलेंगे तब मैं बोलूँगा नहीं । मेरे हृदयमें ऐसा संकल्प आते ही आप बोले, "अरे रामदत्त ! क्या बात है ? क्या सोच रहा है ? मुझे तेरा नाम याद नहीं रहता था, अबसे 'रामदत्त' कहकर ही बोला करूँगा ।"

श्रीमहाराजजी का आश्रय मिलनेके पश्चात् अबतक मेरे जीवन में इतना लाभ हुआ है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । मेरे जीवनमें जो कुछ सुख-शान्तिकी वस्तु है वह सब उन्हींकी कृपा का फल है ।

श्री गणेशीलाल जी, हाथरस

(१)

सं० १९७७ वि० का आरम्भ ही था, चैत्र या वैशाखका महीना होगा, पूज्य बाबा यहाँ श्रीविष्णुदयालके बागमें ठहरे हुए थे। वहीं एक दिन प्रातःकाल पांच बजे मुझे सर्वप्रथम उनके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय मेरे हृदयपर यह छाप पड़ी कि ये कोई अच्छे महात्मा हैं। उसके पश्चात् जबतक वे वहाँ विराजे मैं नित्य-प्रति दर्शनोंके लिये जाता रहा। जब आप वहाँसे चले गये तो हृदय आपकी ओर इतना आकर्षित रहने लगा कि मैं श्रीमहाराजके दर्शनोंकी इच्छासे ही रामघाट गया। आगे चलकर तो ऐसा हो गया कि महीने-दो महीने या चार-छः महीने बाद अवश्यमेव बाबा-के दर्शनोंके लिये जाने लगा। मालूम तो नहीं पड़ता था कि क्या कारण था, परन्तु उनके दर्शनोंके बिना समय-समयपर चित्त बेचैन हो जाता था। यदि कोई सगा-सम्बन्धी उनके दर्शनार्थ जाना चाहता तो भी उसे रोकनेकी इच्छा नहीं होती थी, प्रत्युत यही भाव मनमें होता था कि अवश्य जाओ। यह दशा मेरी ही नहीं, बाबाके पास जानेवाले प्रायः सभी लोगोंकी थी। जाते एक दिनको, परन्तु चार-छः दिन रहे बिना लौटनेको चित्त नहीं चाहता था।

एकबार मैंने श्रीमहाराजजीसे पूछा कि मैं किस इष्टदेवकी उपासना करूँ? बोले, "तुम्हें जो सबसे अधिक प्रिय हों उन्हींकी उपासना करो।" मैंने कहा, "यह निर्णय मुझसे नहीं हो पाता।" तब कहा, "विचार करो, हो जायगा।" तथापि मुझसे एक निश्चय न

हो सका। आखिर मेरे विशेष आग्रह करनेपर उन्होंने मुझे एक इष्टकी उपासना बता दी। परन्तु वह मुझसे नहीं चली। अन्तमें आप बोले, "मैंने तो पहले ही कहा था कि तुम्हीं निश्चय कर लो।" परिणाममें अपने हृदयके जैसे पूर्व संस्कार थे उन्हींके अनुसार मेरी उपासना रही।

(२)

क्रमशः धीरे-धीरे श्रीमहाराजजीके चरणोंमें मेरी श्रद्धा-भक्ति बढ़ गयी। वे मेरे केवल गुरु ही नहीं, अपितु माता-पिता भी थे। उनसे मेरा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया कि वे मेरे घरके-से हो गये थे। मैं, लौकिक हो अथवा पारलौकिक, प्रत्येक काम उनसे पूछकर करता था। पूज्य बाबासे मिलनेके पहले और अब भी अनेकों महात्माओंके दर्शन किये, उनका सत्संग सुना और अब भी सुनते हैं, परन्तु उनके-जैसी अनुभवपूर्ण एवं हृदयस्पर्शी वाणी सुननेको नहीं मिली। श्रीमहाराजजीके अन्दर मैंने क्रोध कभी नहीं देखा कोई कितना भी अपराध करे, पर उनकी ओरसे क्षमामें कमी नहीं होती थी। मुझे उनसे कभी भय नहीं होता था। एक वंगदेशीया माता सरोजिनी थीं, वे मुझपर बहुत वात्सल्य रखती थीं। एकबार वे श्रीहरिबाबाजीके बाँधसे लौटीं और मुझसे बोलीं, "तुम बाँधपर जाओ, बाबा तुमपर बहुत नाराज हैं। जाकर जल्दी उनकी प्रसन्नता प्राप्त करो।" वे भयभीत-सी हो रही थीं। मैं उनकी बातें सुनकर हँसने लगा। इसपर वे विस्मित-सी हुईं। तब मैंने उन्हें बताया कि बाबाका मेरे प्रति इतना अभयदान है कि वे मुझे कितना ही डरावें मैं भयभीत नहीं हो सकता। मैं उनसे भयभीत हो जाऊँ—यह उनके वशकी बात नहीं हैं।" बाबामें मैंने सबसे बड़ी विशेषता यही देखी

कि उनका किसीसे विरोध नहीं था। प्रायः अच्छे-अच्छे लोगोंमें भी थोड़ा-बहुत राग-द्वेषका भाव देखनेमें आता ही है।

(३)

एकबार हाथरसमें अपने यहाँ श्रीमहाराजजीकी आज्ञासे गोपाल पुरश्चरणका अनुष्ठान था। उसके विषयमें बहुत-सी बातें मैं उनसे पूछ नहीं सका था। अब वे गढ़मुक्तेश्वर चले गये थे। जब कार्य-समाप्तिका समय समीप आया तो मालूम हुआ कि मुझसे भूल हुई। काम बहुत था और बाबासे पूछा था नहीं। समय इतना कम रह गया था कि उनके पास जाकर पूछा नहीं जा सकता था। एकदम चित्त घबड़ाने लगा। कहाँ मण्डप बने? क्या दक्षिणा दी जाय? इत्यादि यज्ञसम्बन्धी कृत्योंके विषयमें अपनी कोई जानकारी नहीं थी। किन्तु रातको सोनेके बाद सभी प्रश्न हल हो गये। बात यह हुई कि दूसरे दिन पं०किशोरीलाल श्रीमहाराजजीके पाससे आये और अपने साथ उनका एक लेखबद्ध सन्देश लाये। उस लेखमें छोटीसे छोटी बातोंसे लेकर बड़ीसे बड़ीतक सभी व्यवस्थाएँ थीं। जैसे कोई वृद्ध-पुरुष अपने अनजान बालकको समझाता है उसी प्रकार सब बातें समझायी गयी थीं। ऐसा विश्वास होता था मानो उन्होंने मेरे सभी प्रश्न हल कर दिये थे। यह उनकी कोई प्रयत्न-साध्य कृति नहीं थी, किन्तु स्वाभाविक थी। उन्हें दूरश्रवण और दूरदर्शन होता था—ऐसा मुझे कईबार ज्ञान हुआ था। भोजनादिके विषयमें तो उनके चमत्कार बहुत लोगोंने देखे थे। परन्तु उनके स्वरूपकी दृष्टिसे तो ये बातें मुझे बहुत तुच्छ जान पड़ती थीं। यह तो महीनों देखा गया कि वे या तो बिल्कुल निद्रा नहीं लेते थे अथवा घंटे-आधा घंटे ही लेट लेते हों क्योंकि रामघाट आदि स्थानोंमें वे कई बार बहुत दिनोंतक चौबीसों घण्टे बैठे देखे गये थे। प्रातःकाल

जब वे आसनपर बैठे होते तब कई बार मुझे उनके मुखमण्डलके चारों ओर एक शान्तिमयी श्वेत प्रभाका गोलाकार मण्डल दिखलायी पड़ता था। वह ऐसा लगता था मानो चन्द्रज्योत्स्नामें मोती कूटकर भर दिये गये हों।

(४)

श्रीमहाराजजीके पास पहुँचनेपर एक-दोकी नहीं, अनेकोंकी ऐसी दशा होती थी कि घरकी सुधि भूल जाते थे। देहकी भी विशेष परवाह नहीं रहती थी। शीत-उष्ण, भूख-प्यास और भूमिशयनादि उनके पास रहनेपर कोई बाधा नहीं पहुँचाते थे। एक बार कठिन ग्रीष्म ऋतुमें हम कई व्यक्ति उनके दर्शनार्थ अमरसा गये। वहाँ जानेके लिये सहावर स्टेशन पर उतरना होता है। जिस समय गाड़ी सहावर पहुँची दोपहरके डेढ़-दो बजे थे। ऊपर सूर्यकी गर्मी नीचे पृथिवी गर्म, वायु गर्म, अधिक क्या सारा वातावरण ही गर्म था। साथमें सामान भी था ही, और कुली कोई मिला नहीं। हम सभी शहरके रहनेवाले थे। ऐसा कठोर ताप सहन करनेका किसी का भी अभ्यास नहीं था। परन्तु श्रीमहाराजजी के दर्शनोंकी चटपटी सभीको लगी हुई थी, किसीको थोड़ा-सा भी विलम्ब सह्य नहीं था। स्टेशनसे अमरसा दो-तीन मील दूर था। आखिर, हम सब उसी समय चलनेको तैयार हो गये। स्टेशनवालोंने शाम-तक रुकनेके लिये बहुत कहा, परन्तु सभी थोड़ा-थोड़ा सामान लेकर उसी समय चल दिये और अमरसा पहुँच गये।

बाबाके सामने पहुँचनेपर चित्तकी शंकाओंका स्वतः समाधान हो जाता था। मनमें कोई प्रश्न उठता और बाबासे पूछनेका सकल्प करके जाते, परन्तु वहाँके शान्त वातावरणमें पहुँचकर मन

संकल्प-विकल्प शून्य हो जाता और हम प्रश्न पूछना ही भूल जाते थे। अथवा वहाँ पहुँचने पर स्वतः ही समाधान हो जाता था बिना प्रश्न किये बाबा अनायास ही उसका उत्तर दे देते थे। उन्हें किसी पद्धति या सम्प्रदायविशेषका भी आग्रह नहीं था। वे जिसे जैसा अधिकारी समझते थे उसके लिये उसी मार्गका विधान कर देते थे।

(५)

एकबार हम कई व्यक्ति महाराजजीके दर्शनोंके लिये मोहनपुर गये। यह भी घोर गर्मीका ही समय था। रातको भी पृथ्वी ठंडी नहीं होती थी। बाबाका एक पुराना भक्त रामदास पनवाड़ी था। एक दिन प्रातःकाल उठकर मैंने किसीसे पूछा, "बाबा कहाँ हैं?" उसने कहा कि अभी उठे नहीं हैं। नौ बजे रामदास गाँवसे आता है तब ताला खोलता है। रातको वह बाबाको कुटीमें बन्द कर जाता है। मुझे बड़ा दुःख और क्रोध हुआ कि रामदास अपने इस स्वार्थके लिये कि बाबा कहीं बिना ही कहे चले न जायँ उन्हें रातको तालेमें बन्द कर देता है! ऐसा भक्त किस कामका? मेरे मनमें यहाँ तक आया कि आज उसे पीटूँगा। बाबा भले ही चले जायँ, परन्तु उन्हें उस प्रकार जबरदस्ती रोककर दुःख देना तो भारी अपराध है। मुझसे अधिक नहीं रुका गया। मैंने अपने एक मित्रसे भी मनकी बात कह दी। सोचा तो यह था कि यह सुनकर वे भी मेरी ही तरह क्षुब्ध होंगे। परन्तु वे तो हँसने लगे। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे इसका रहस्य पूछा तो वे बोले, "प्राणस्पन्दरहित समाधिस्थ पुरुषको शीत-उष्ण नहीं व्यापते।" मुझे यह बात मालूम नहीं थी। सुनकर बड़ा आनन्द और सन्तोष हुआ। नौ बजे रामदास आया। उसने कुटी खोली

तो देखा, बाबा तख्तपर आसन लगाये निश्चलभावसे विराजमान हैं। उस कुटीकी लंबाई-चौड़ाई और ऊँचाई बहुत कम थी, दरवाजा भी इतना ही ऊँचा था कि एक व्यक्ति बैठकर आ-जा सकता था। उसमें एक तख्त डाल दिया गया था, जिसके चारों पायोंके नीचे गड्ढा खोदकर पानी भर दिया जाता था, जिससे चींटे न चढ़ने पावें। मेरे एक मित्रने पूछा, "बाबा! आपको कभी क्रोध नहीं आता?" बोले, "अरे! जिस दिन मुझे क्रोध आ जायगा उस दिन यह शरीर नहीं रहेगा।"

(६)

एक समय बाबा हाथरसमें थे। कहने लगे, "मैं दिल्ली जाऊँगा, वहाँ एक बंगाली मेरा भक्त है।" वे सर्वदा पैदल ही चलते थे और जंगलोंमें रहना ही उन्हें पसन्द था। गङ्गातटको छोड़कर गाँवों और कस्बोंमें भी कम ही जाते थे। इसलिये उनकी इस बातमें मेरा विश्वास नहीं हुआ। यों भी वे बहुत-सी खेल-मेलकी बातें करते ही रहते थे। अतः मुझे यह निश्चय नहीं हुआ कि वे अवश्य दिल्ली जायँगे ही। परन्तु वे दिल्ली पहुँच ही गये और प्रायः डेढ़ मासतक कुदसिया घाटपर ठहरे। वहाँ उनके पास दर्शनार्थी और सत्संगियोंकी भीड़ लगी रहती थी। श्रीआत्माराम खेमका और श्रीबिहारीलालजी पोद्दार आदि अनेकों भक्त नित्य नियमसे उनके पास आते थे। इन दिनों लेजिस्लेटिव एसेम्बलीके एक उच्च अफसर श्रीअतुलकृष्ण गुप्त नई दिल्लीसे चार-पाँच मील पैदल चलकर नित्यप्रति श्रीमहाराजजीके पास आते थे। वे बड़े सज्जन थे। कई वर्ष बाद एक दिन मैंने गुप्ताबाबूसे पूछा कि आपका श्रीमहाराजजीसे कबसे परिचय है? मैं समझता था ये श्रीमहाराजजीके पूर्व परिचित हैं, क्योंकि इस प्रान्तमें आनेसे पहले वे बंगाल

में रह चुके थे। परन्तु यह मेरा भ्रम ही निकला। गुप्ताबाबूने कहा, "जिन दिनों श्रीमहाराजजी दिल्ली पधारे हुए थे उन्हीं दिनों एक दिन अकस्मात् मैं उनके पास पहुँच गया और प्रथम दर्शनमें ही ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया जैसे दो पूर्वपरिचित प्रेमियोंमें पुनर्मिलन होने पर हो जाता है।" श्रीगुप्ताजीका उत्तर सुनकर मुझे स्मरण हो आया कि बाबा हाथरसमें कहा करते थे कि दिल्लीमें मेरा एक बंगाली भक्त है। उनकी वह बात यथार्थ ही थी। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि बाबा अपने पूर्वजन्मसे सम्बन्धित शिष्योंका कल्याण करनेके लिये स्वयं भी उनपर कृपा करते थे, यद्यपि वे आपको जानते भी नहीं थे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसी नाते मुझे अधमपर भी उनकी ऐसी अहैतुकी कृपा थी, क्योंकि उस समय मेरेमें तो ऐसी बुद्धि थी ही नहीं जो सन्तोंके पास जानेमें मेरी लगन हो सके।

(७)

पूज्य श्रीहरिबाबाजीके प्रति भी आपका बड़ा सहज स्नेह था। एकबार आपने मुझसे एकान्तमें कहा था, "अरे गनेशी ! भैया ! हरिबाबाजीके समान दैवीसम्पत्तिवान् साधु बहुत कम देखे गये हैं" मेरा तो निःसन्देह विश्वास है कि श्रीमहाराजजीका श्रीवृन्दावनमें निवास एकमात्र श्रीहरिबाबाजीके कारण हुआ था। यद्यपि इस विषयमें अन्य व्यक्तियोंका मतभेद भी हो सकता है, परन्तु मुझे अपनी मान्यतामें कोई सन्देह नहीं है।

श्रीमहाराजजी भविष्यवक्ता थे। उनकी मुझसे कही हुई बातें अभीतक ज्योंकि त्यों घटित हो रही हैं। एकबार आपने एक व्यक्तिके विषयमें जैसा भविष्य कहा हुआ था उसके विपरीत हुआ। मैंने सरलतावश, क्योंकि आपसे मुझे कोई भय तो था नहीं, एक दिन

एकान्तमें कहा, "बाबा ! आप तो अमुकके विषयमें ऐसा कहते थे, परन्तु हुआ इसके विपरीत ।" इसपर आप बिना किसी प्रकारका क्षोभ प्रकट किये बोले, "अरे ! इसमें क्या है ? बहुत-सी बातें झूठी हो जाती हैं ।" उत्तर सुनकर मुझे बड़ा पश्चाताप हुआ कि मैंने व्यर्थ ही बाबाको झूठा सिद्ध किया । परन्तु उनके मनमें किञ्चित्मात्र भी क्रोध या क्षोभ नहीं हुआ । अन्तमें हुआ वही जैसा बाबाने कहा था ।

(८)

जिस समय द्वितीय विश्व-संग्राम चल रहा था बाबाका यह निश्चय था कि अब अंग्रेज भारतमें नहीं रहेंगे । मेरी तुच्छ बुद्धिमें आता था कि युद्ध लंबा हो जानेपर अंग्रेजोंकी विजय हो सकती है । और हुआ भी ऐसा ही । अंग्रेज विजयी हुए । तब एक दिन मैंने बाबासे कहा कि आप तो कहते थे कि अंग्रेज चले जायँगे, परन्तु इनको तो विजय हो गयो और हमारा देश भो स्वतन्त्र नहीं हुआ । इस पर आपने बहुत बलपूर्वक कहा, "अब अँग्रेज हमारे देशमें नहीं रह सकते ।" मुझे सुनकर आश्चर्य हुआ, परन्तु अन्तमें हुआ वही ।

बाबाके साथ दीर्घकलतक सम्पर्क रहनेके कारण मैंने ऐसी अनेकों घटनाएँ देखी हैं जिनसे उनमें दूरदर्शन, दूरश्रवण और भविष्यज्ञानरूप अनेकों सिद्धियाँ थीं । अन्नपूर्णाकी सिद्धि तो उन्हें निश्चय ही थी । यद्यपि उनके परमार्थज्ञानके सामने इन सिद्धियों-का कुछ भी मूल्य नहीं था । वे पूर्ण आत्मनिष्ठ, भेदभावशून्य और साक्षात् प्रेमकी मूर्ति थे । नहीं तो, ऐसा भला कैसे हो सकता था कि लगातार तीस वर्षोंतक उनके चित्तमें कभी किसीके प्रति लेश-

मात्र भी घृणा या द्वेषका भाव देखनेमें न आवे। विभिन्न विचार-वाले लोगोंकी, जिनका परस्पर विपरीत भाव भी रहता था, बाबामें समान श्रद्धा थी। और बाबाका भी उनपर समान प्रेम था। यह अच्छी तरह मालूम है कि जो लोग बाबाके निजजनों-को सताते थे उनकी वैसी प्रवृत्तिको जानते हुए भी बाबा उनपर अपने भक्तोंके समान ही प्रेम रखते थे। श्रीगङ्गाजीके किनारे कई साल देखनेमें आया कि बाबाके पहुँचते ही वहाँके शिकार खेलनेके अभ्यासी लोग भी बिना किसीके कहे शिकार खेलना वन्द कर देते थे। उनके अन्तःकरणमें स्वयं ही ऐसी वृत्ति जग उठती थी। कर्मकाण्डी, भक्त, वैष्णव, वेदान्ती और आर्य-समाजी आदि सभी प्रकारके लोग आपसे लाभ उठाते थे। बाबाको केवली कुम्भक सिद्ध था। मीलों तेज चलनेपर भी उनका श्वास-प्रश्वास बढ़ता नहीं था। दस-बीस मील चलकर भी वे ऐसे बैठ जाते थे मानो चले ही नहीं।

(६)

एक समय बावा हाथरसमें थे। अमरसामें बलदेव ब्रह्मचारीके यहाँ यज्ञ होनेवाला था। आप यज्ञमें निमन्त्रित ही नहीं, उसके कर्ता, धर्ता और सर्वस्व ही थे। मस्तीमें हाथरसमें ही शाम हो गयी। कलसे यज्ञ आरम्भ होनेवाला है और अमरसा प्रायः पचास मील दूर हैं। किसी भी प्रकारकी सवारीमें आप बैठते नहीं थे। उधर बलदेव ब्रह्मचारी आपमें सखाभाव रखते थे। देर हो जाने-पर उनका प्रणय-कोप उग्र हो जानेकी सम्भावना थी। बस, आप शामको चल दिये और रात-रातमें चलकर सवेरे दस बजेतक अमरसा पहुँच गये। देखते ही बलदेव ब्रह्मचारी उबल पड़े—"अब

क्यों आये ?" इत्यादि। पर आप उनकी बातोंको अनसुनी करके कहने लगे, "जल्दी यज्ञ आरम्भ करो, देरी हो रही है।"

(१०)

एक बालक था। अभी हाल हीमें उसका विवाह हुआ था। नाम प्रकट करनेकी आवश्यकता नहीं है। स्त्री सुन्दरी मिली थी। अतः उसमें उसका राग भी विशेष था। वह बाबाका दर्शन करने आया। आठ-दस दिन रहनेपर भी घर जानेको उसका चित्त नहीं हो रहा था। तब एक दिन वह बाबासे कहने लगा, "बाबा तुम्हें छोड़नेको तो इसी तरह चित्त नहीं चाहता जैसे अपनी स्त्रीको।" उसका यह उदाहरण सुनकर आप अप्रसन्न नहीं हुए, बल्कि हँसने लगे और बोले, "अरे गनेशी ! देखो, देखो, यह लड़का क्या कह रहा है ?" बात यह थी कि उनकी स्वाभाविकी कृपा और प्रेम-पूर्ण हृदयके कारण सभीका चित्त आकर्षित हो जाता था, जिससे और सबकी सुधि भूल जाती थी।

श्रीशंकरलालजी गर्ग, हाथरस

प्रथम दर्शन

सं० १६७२ वि० का वैशाख मास था। दिनके १२ बजे थे। मैं अपनी खद्दरकी दूकान पर बैठा था। अकस्मात् श्रीमहाराजजी दूकानके सामने आकर खड़े हो गये और मेरी ओर देखने लगे। मैंने देखा—एक कौपीन, एक कटिवस्त्र, पुरानी कंथा, नंगे शिर नंगे पैर और हाथ में तूँवा। समझा कोई विरक्त महात्मा हैं। उतरकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की और ऊपर ले आया। परन्तु वे तो जूतों में ही बैठने को तैयार हो गये, क्योंकि पैरों में धूलि लगी थी। मैंने कहा, "ऊपर पधारिये।" बोले, "मैला हो जायगा।" मैंने कहा, "पवित्र हो जायगा।" फिर अन्दर ले जाकर गजी का थान बिछा दिया। फिर भी वे पैर बाहर रखकर ही उसपर बैठे। मैंने देखा संकोच कर रहे हैं, इसलिये जल लाकर बर्तनमें पैर धोये और पौंछ दिये। पूरा पोंछ भी न पाया था कि झट पैर खींचकर सिद्धासन लगा लिया और ध्यानमग्न हो गये। मैंने भिक्षा के लिये प्रार्थना की। बोले, "भिक्षा कर आया।" तथापि मैंने थोड़ा फल और मीठा मँगा कर सामने रख दिया। उसमेंसे थोड़ा अपने बाँये हाथपर रखकर खा लिया। मैंने हाथ धुला दिये और चरणोदक ऊपर भेज दिया।

श्रीमहाराजजी सिद्धासन से विराजमान थे। उनके नेत्र खुले हुए थे। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो हँस रहे हैं। मैंने हाथ जोड़-कर प्रार्थना की, "महाराजजी ! गुरु के क्या लक्षण हैं ?"

तत्क्षण उत्तर मिला—

"दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्याद्वायुः स्थिरो यस्य विना निरोधात् ।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बात् स एव योगी स गुरुः स सेव्यः ।।"*

ऐसा स्पष्ट उत्तर मैंने पहले कभी नहीं सुना था। मैं काम-काज करना भूल गया और सत्संग में लग गया। योगविषयक बहुत-सी बातें हुईं, पर अब याद नहीं हैं। शाम के पांच बज गये। मैं उन्हें विष्णुदयालके बगीचेमें ले गया और मन्दिरके आगे चबूतरेपर आसन डालकर बैठा दिया। मुझे फिर भी लगा कि वे हँस रहे हैं। तूँबेमें जल भरकर पास रख दिया। थोड़ी देर बाद वे उठे तूँबा उठाकर नित्यकर्म से निवृत्त होने के लिए जंगलकी ओर चले गये। मैं कन्थाकी तह करने लगा तो उसके एक ओर कुछ कड़ा मालुम हुआ। देखा तो एक पाकेट बुक थी। उसमें देवनागरी और उड़िया लिपिमें बहुत-से श्लोक लिखे थे। थोड़ा पढ़ा भी, परन्तु फिर पश्चात्ताप हुआ कि उनकी आज्ञा लिये बिना क्यों पढ़ा? इतनेमें ही वे आ गये। मैंने जल्दी से वह पाकेट बुक कंथामें रख दी। उनको ओर देखा तो वही मुसक्यान। मेरे मनमें आया कि इन्हें मालूम हो गया है। मैंने हाथ-पैर धुलाये। फिर सबसे पहला काम उन्होंने यही किया कि पुस्तक कंथा में से निकाल कर मेरे हाथ में देकर कहा, "पढ़ो।" मैंने इधर-उधर पढ़कर कहा, "बहुत अच्छी है।" फिर दोनों हाथोंसे जब उसे सामने किया तो बोले, इसे तू ही ले ले। मैं संकोच में पड़ गया। परन्तु उन्होंने फिर कहा, "नहीं, नहीं, इसे तू ही ले ले।"

* जिसकी दृष्टि बिना दृश्यके स्थिर है, वायु बिना निरोध किये स्थिर है और चित्त बिना अवलम्बके स्थिर है वही योगी है और वही गुरु है। उसीकी सेवा करनी चाहिये।

"मैंने पुस्तक पास रख ली। फिर छतपर जाकर आसन लगाया और रात्रिके दूधका प्रबन्ध करके घर लौट आया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जाकर देखा तो उसी प्रकार सिद्धासनसे बैठे हुए थे। इसी प्रकार नित्य रातको बैठे छोड़कर आता और प्रातःकाल बैठे हुए ही पाता। इससे रातको वहीं रहने की इच्छा हुई। कई रातें रहा, किन्तु जब देखता तब बैठे ही दिखायी देते। मुझे संकोच तो था ही नहीं, पूछा, "महाराजजी! आप सोते क्यों नहीं हैं?" बोले, "बेटा! जब सत्त्व बढ़ जाता है तो निद्रा नष्ट हो जाती है। निद्रा तो तमोगुण है।" मैं आपकी चन्दन-पुष्पादि से पूजा करता था। यह देखकर दूसरे लोग भी पूजन करने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे मेरी उनमें श्रद्धा बढ़ गयी। फिर तो उनको छोड़कर और किसी महात्मा के प्रति वैसा आकर्षण ही नहीं रहा। इस बार आप सत्ताईस दिन हाथरस में बिराजे। घर-में भिक्षा के लिये जाते रहे। मेरे घर से तो ऐसा सम्बन्ध हो गया मानो अपने परम आत्मीय ही हैं।

न हसन्ति मुनीश्वराः

एक दिन स्कूल के कुछ छात्र बाग में आये और महाराजजी से कहने लगे, "महाराज! हँसने से बहुत लाभ होता है। शरीर में खून बढ़ता है, इससे बलकी भी वृद्धि होती है और फेफड़ा मजबूत होता है। इसमें आपकी क्या सम्मति है?" इस पर श्रीमहाराजजी बोले, "भैया! हमारे यहाँ तो लिखा है—

'चक्षुर्भ्यां हसते विद्वान् दन्तौष्ठैश्च मध्यमाः।
अधमा अट्टहासेन न हसन्ति मुनीश्वराः॥'

अर्थात् विद्वान् केवल नेत्रोंसे हँसता है, सामान्य पुरुष दाँत और

ओठोंसे हँसते हैं तथा निम्न कोटिके पुरुष खिलखिलाकर हँसा करते हैं। परन्तु मुनीश्वर तो कभी नहीं हँसते।"

उन दिनों हाथरसके अनेकों सत्संगी आपके पास आते और बड़े आनन्दसे प्रश्नोत्तर किया करते थे। उस समय श्रीस्वामीजीमें अन्तर्यामित्वका भाव विशेष रूपसे देखा जाता था। आप लोगोंके मनोभावको जानकर बिना पूछे ही उत्तर दे देते थे।

अद्भुत विवाह

मेरे घरमें चार लड़कियाँ विवाहके योग्य हो गयी थी। मैं तीन वर्षों से लड़कोंकी खोजमें था, परन्तु योग्य वर नहीं मिल रहे थे। इससे मुझे बड़ी चिन्ता थी। सं० १९८३ के ज्येष्ठ मासमें मैं श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ रामघाट गया। तीसरे पहर वे कुटीसे निकले, मैं उनका कमण्डलु लेकर साथ हो लिया। बोले, "तू जायगा नहीं ?" मैं आश्चर्यचकित हुआ। अभी तो आया हूँ, फिर यह प्रश्न कैसा ? मेरी आँखोंमें आँसू भर आये। आप जाकर गंगाजीकी रेतीमें बैठ गये और मेरी ओर देखकर बोले, "अच्छा, कल चले जाना। चिन्ता क्यों करता है ? चारों लड़कियाँ चार विद्यार्थियोंको अर्पण कर देना और एक-एक कटोरा चावल भरकर दे देना। विवाह हो गया।" मैं मन ही मन विचार करने लगा कि इतने दिनोंसे तो लड़के ढूँढ़ रहा हूँ, लड़कियाँ भी पढ़ी-लिखी हैं, पर वर मिलते ही नहीं। क्या किया जाय ? दूसरे दिन मुझसे फिर बोले, "अरे ! गया नहीं ?"

मैं उसी समय चल दिया। हाथरस जंकशनपर मुझे पं० राधाकृष्णजी मिले। बोले, "कहाँ से आ रहे हैं ?" मैंने कहा, "स्वामीजीके पाससे ?" तब वे बोले, "तुम भी स्वामीजी बन जाओ। चार

लड़कियाँ विवाहयोग्य घरमें हैं, पर तुम्हें कोई चिन्ता ही नहीं है।" मैंने उत्तर दिया, "मैं क्या करूँ ?" वे बोले, "मेरे साथ चलो और जबतक लड़के निश्चित न हो जायँ घर मत लौटो।" मैं उनके साथ हो लिया। एक सप्ताहके भीतर ही चारों लड़के मिल गये। जिस लड़के को देखते उसीको चार रुपये भेट कर देते। लड़कोंके पिता कहते, "अभी लड़की तो देखी नहीं है, कैसे निश्चय करें ?" तथापि मान जाते। मैंने समझ लिया, यह सब श्रीमहाराजजीकी कृपा है। मैं लौटकर घर आया। लड़की देखनेवाले आकर लड़कियाँ देख गये और विधि भी मिल गयी। चारों विवाह एक ही तिथिमें होने निश्चित हुए।

अब विवाहोंकी तैयारी होने लगी। एक धर्मशालामें चार मण्डप बने और एक धर्मशाला चारों बारातोंके जनवासेके लिये निश्चित की गयी। मैंने विवाहके अवसरपर हाथरस पधारनेके लिये पूज्य श्रीमहाराजजीसे प्रार्थना की और उन्होंने समयपर पहुँच जानेका वचन दे दिया। पीछे यद्यपि मैं उन्हें विवाहकी तिथिसे सूचित नहीं कर सका, क्योंकि उस समय यह पता नहीं लग सका कि वे कहाँ हैं, तो भी ठीक भट्टी खुदनेके दिन वे स्वयं हाथरस आ गये। मैं जाकर उन्हें आदरपूर्वक लिवा लाया और विवाहमण्डपोंके बीचमें एक चौकीपर विराजमान करा दिया। उस समय लड़कियोंसहित समस्त कुटुम्बने आपका पूजन किया, आरती उतारी तथा लड्डू और दहीका भोग लगाया। आपने बड़े प्रेमसे भोग लगाया और फिर बगीचेको चले गये। मुझे आज्ञा दी कि जबतक विवाह का सम्पूर्ण कार्य समाप्त न हो मेरे पास मत आना।

चार जगहसे चार बारातें आयीं। उन्हें एक ही धर्मशालामें ठहराया गया। जब चढ़त हुई तो उसमें बाजा नहीं था। शंख-घड़ियालोंसे बारातें निकलीं। चारों दूल्हे घोड़ोंपर सवार थे। उनके आगे राम, लक्ष्मण, कृष्ण और बल्देवकी चार कागजकी मूर्त्तियाँ थीं। यही थी उस बारातकी फुलवाड़ी। उनके आगे साढ़े तीन सौ बराती पैदल चल रहे थे। लोग बड़े कुतूहलसे यह अद्भुत बारात देख रहे थे। समझते थे कि यह ठाकुरजीका विवाह है क्या? बिलकुल नयी बात थी न।

अस्तु! चार मण्डपोंमें एक साथ ही विवाहकार्य सम्पन्न हुआ। कार्यकर्ता थे पं० तुलसीरामजी। शहरकी स्त्रियाँ आ-आकर वरों को तिलक और भेट करती थीं। मना करनेपर भी मानती नहीं थीं। बरातियोंको दो-दो रुपये, चार-चार लड्डू तथा गीता और रामायणकी पुस्तकें भेटमें दी गयीं। सम्पूर्ण कार्य बड़े आनन्द से सम्पन्न हुआ और श्रीमहाराजजीकी कृपासे मैं एक बड़ी चिन्तासे मुक्त होगया।

अपमानमें अक्षुब्ध

एक बार आप नरवर पाठशालापर पधारे। साथमें केवल आनन्द ब्रह्मचारी थे। और भक्तोंको पीछे छोड़ दिया था। वहाँ पण्डितस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजीको 'ॐहरिः' करके नीचे बैठ गये। वे स्वयं तख्तपर बैठे थे। विश्वेश्वराश्रमजीने बहुत-सी उल्टी-सीधी बातें कहकर फटकारना आरम्भ किया—"कीर्तन कराता है। शाङ्कर सम्प्रदायका साधु होकर उसके विपरीत आचरणका पोषक बनता है। रासमें लड़के नचाता है।" इत्यादि। आप अपनी स्वाभाविकी शाम्भवी मुद्रासे शान्त बैठे रहे। इनके शान्त रहनेसे वे

और भी चिढ़ गये तथा इन्हें कुटियासे बाहर निकाल आये। तब आप उन्हें पुनः 'ॐ हरिः' कहकर रामघाट चले आये।

इस समय नरवर विद्यालयके संस्थापक पं० जीवनदत्तजी बाहर गये हुए थे। लौटनेपर उन्हें सब हाल मालूम हुआ तो वे रामघाट आये और बोले, "महाराजजी! स्वामीजीसे जो जैसा कह देता है वैसा ही वे मान लेते हैं। उनका स्वभाव तो आप जानते ही हैं। उनके कहनेका आप बुरा न मानें, क्रोध न करें।" आपने कहा, "पण्डितजी! वे तो ठीक ही कहते हैं। मैं भ्रष्ट हो गया। क्रोध तो मुझे किञ्चिन्मात्र भी नहीं है। जिस दिन मुझे क्रोध आयेगा, मेरा शरीर नहीं रहेगा।"

इसके कुछ काल पश्चात् पण्डितस्वामी बीमार पड़े। उनका शरीरपात होनेकी सम्भावना हो गयी। तब उनके हृदयमें श्रीमहाराजजीके प्रति किये अपमानका पश्चात्ताप जाग्रत् हो उठा। वे बहुत दुःखी हुए और सन्देश भेजा कि महाराज दर्शन दें। श्रीमहाराजजीने कहा, "उनसे कहना, मैं अवश्य आऊँगा।" उन दिनों मैं भी वहीं था। मेरे सामने ही आपने कहा था, "अच्छा है, स्मृतिमें जाने दो।" परन्तु जिस दिन उनका शरीरान्त हुआ उसी दिन कुछ देरसे आप नरवर पहुँच गये थे। बड़े उत्साहसे कीर्तन कराते हुए उन्हें गङ्गाजीमें जलसमाधि दिलायी और स्वयं ही वहाँ रहकर उनका निर्वाणोत्सव कराया।

उपदेश वाक्य

प्रश्न—साधु कौन है?

उत्तर—जो इतना छिपे कि उसे कोई साधु न समझे—

'अन्धवज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत् ।'

आप नीचे लिखे वाक्यों को प्रायः बोला करते थे—

१. "यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।"

२. "साधू ऐसा चाहिये, दुखै दुखावै नाहिं ।
फूल पात तोड़े नहीं, रहे बगीचे माहिं ।।

३. "मैं न बन्दा न खुदा था, मुझे मालूम न था ।
दोनों इल्लतसे जुदा था, मुझे मालूम न था ।।

४. वजह मालूम हुई तुमसे न मिलनेकी सनम ।
मैं ही खुद पर्दा बना था मुझे मालूम न था ।।

५. आप ही आप हूँ यहाँ फायल व मफऊल है कौन ?
मैं जो आशिक हूँ कहा था मुझे मालूम न था ।।"

साधकोंके लिये आपका कथन था—'कार्यं साधयेद्वा शरीरं पातयेद्वा ।" अर्थात् ऐसा दृढ़ संकल्प लेकर साधनमें लगे कि या तो कार्य पूरा करले, नहीं तो शरीर को नष्ट कर डाले ।

श्रीराधेश्यामजी सेकसरिया, हाथरस

मेरे पूज्य पिता श्रीकन्हैयालालजी महाराजजीके प्रेमी थे । वे उनके दर्शनोंके लिये प्रायः गंगातटपर जाया करते थे । जीवनके अन्तिम समयपर जब वे रुग्णावस्थामें थे श्रीमहाराजजी उन्हें दर्शन देनेके लिये हाथरस पधारे थे । उसी समय सबसे पहले मुझे आपके दर्शन हुए । पिताजीने मेरा हाथ श्रीमहाराजजीके हाथमें पकड़ाकर उनसे प्रार्थना की कि यह बालक आपका ही है, इस पर सदैव कृपादृष्टि रखें और इसे अपना ही समझें । तबसे श्रीमहाराजजीने मेरे ऊपर वही भाव रखा । उसी समयसे क्रमशः धीरे-धीरे मेरी भी उनके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-भक्ति बढ़ती गयी । मैं सत्संग के लिये समय-समयपर अनेकों बार उनके पास जाता रहता था । इससे परमार्थमें भी मेरी रुचि हो गयी । आपके दर्शन होनेके पहलेसे ही मैं श्रीरामचन्द्रजीकी उपासना और उन्हींके मन्त्रका जप किया करता था । श्रीमहाराजजीने भी मेरे लिये इसी साधनकी पुष्टि की । एक बार मैंने उनसे प्रार्थना की कि मैं तो अपने मनसे ही मन्त्रजप करता हूँ, किसी गुरुसे तो मुझे मन्त्र प्राप्त हुआ नहीं है । अतः कृपा करके आप मुझे मन्त्रोपदेश कर दीजिये । मैंने सुना है कि मनमुखी मन्त्र जपनेसे सिद्धि नहीं मिलती । तब आप हँसकर बोले, "तेरा मेरे प्रति जो भाव है वही क्या कम है ? उसीसे सब कुछ हो जायगा । तू जो कुछ करता है, वही ठीक है, वैसा ही करता रह ।" श्रीमहाराजजी मुझे प्रायः यही उपदेश किया करते थे कि ये सब वस्तुएँ नाशवान् हैं, इनमें आसक्ति नहीं करनी

चाहिए। याद रखो, वस्तुके भोगमें उतना सुख नहीं है जितना उसके त्यागमें है। स्वादिष्ठ पदार्थ खानेमें वह आनन्द नहीं है जो दूसरेको उसे खिलानेमें है।

श्रीमहाराजजीके उपदेशोंसे मुझे जीवनमें बहुत लाभ हुआ है। मुझे भंग पीना, ताश खेलना, सिनेमा देखना और व्यर्थ वार्तालाप करना आदि अनेकों दुर्व्यसन थे। आपकी कृपा और सत्संग के प्रभावसे वे सभी छूट गये। इसके सिवा सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मेरे हृदयमें शोक-मोहादि जैसे पहले व्यापते थे वैसे अब नहीं व्यापते। अब तो कैसी ही परिस्थिति आ जाय उनकी कृपासे चित्त में शान्ति और धैर्य बने रहते हैं।

श्रीमहाराजजीमें मुझे सबसे बड़ी विशेषता यह दिखायी दी कि वैराग्यवान् होते हुए भी उनमें अपनत्वका भाव विशेष था। वे किसीको भी दुःखमें पड़ा नहीं देख सकते थे। किसीको दुःखी देखते ही व्याकुल हो जाते थे और जैसे बने तन-मन-वचनसे उसका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करते थे। उनमें सेवाभाव भी बहुत था। अपने बड़प्पनको त्यागकर वे किसी भी प्रकारकी सेवा करनेको तैयार रहते थे। उनमें अपनी सेवा करानेकी तनिक भी वासना नहीं थी। जो उनकी सेवा करना चाहते थे उन्हें भी वे मना ही करते रहते थे। बड़ी से बड़ी समस्याएँ जो हमसे अपने-आप नहीं सुलझ पाती थीं, उनकी कृपासे बातकी बातमें हल हो जाती थीं। वे कोई ऐसा उपाय बता देते थे कि सारी चिन्ता मिट जाती थी। उनमें एक बहुत बड़ा गुण यह था कि चाहे कैसी भी विषम परिस्थिति हो उन्हें क्रोध कभी नहीं होता था। वे सदैव शान्त और स्वरूपनिष्ठामें अविचलभावसे स्थित रहते थे। वे भक्तोंके लिये

भक्त और ज्ञानियोंके लिये ज्ञानी थे। जिसकी जैसी निष्ठा होती उसे उसीमें दृढ़ कर देते थे। उनकी दृष्टिमें ज्ञान और भक्तिका समान आदर था और अधिकारिभेदसे वे दोनों ही का जोरदार प्रतिपादन करते थे। मुझे स्वप्नमें भी अनेकों बार उनके दर्शन हुए हैं, किन्तु कभी कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। यों भी उनसे प्रश्न करनेकी मुझे कभी आवश्यकता नहीं पड़ती थी, वे बिना पूछे स्वयं ही मेरे मनमें उठे प्रश्नका उत्तर दे देते थे।

(१)

एक बार मुझे संग्रहिणीकी बीमारी हो गयी। धीरे-धीरे शरीर मरणासन्न अवस्थाको पहुँच गया। मैं मृत्युकी आशंकासे भयभीत रहने लगा। उससे घबड़ाकर मैं श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ अमरसा गया। मेरे मानसिक भयको जानकर आप कहने लगे, "भैया! मृत्यु तो सभीकी अवश्यम्भावी है, उससे डरनेसे क्या लाभ? देखो, एक बार एक मनुष्य जंगलमें एक सिंहके सामने पड़ गया। पहले तो वह बहुत डरा, किन्तु फिर उसने सोचा कि अब यह मुझे खा तो जायगा ही, फिर क्यों डरूँ? यह विचारकर वह निर्भयता-पूर्वक डटकर उसके सामने खड़ा हो गया। उसकी निर्भयतासे प्रभावित होकर सिंह उसपर आक्रमण न कर सका और वह मृत्युके मुखसे बच गया। इसी प्रकार जब एक दिन मृत्यु होना निश्चित ही है तब उससे डरनेसे क्या लाभ?" श्रीमहाराजजीके इस उपदेश से मेरे मनसे मृत्युका भय निकल गया और तभीसे क्रमशः मेरा स्वास्थ्य भी सुधरने लगा। यहाँ तक कि कुछ दिनोंमें मैं पूर्णतया स्वस्थ हो गया।

(२)

यों तो श्रीमहाराजजी जब कभी हाथरस पधारते थे तो उनका आगमन ही उत्सवका रूप धारण कर लेता था। तथापि आपके तत्त्वावधानमें मेरे यहाँ चार उत्सवोंका भी आयोजन हो चुका है। इन उत्सवोंमें अखण्ड हरिनामसंकीर्तन, कथा, सत्संग, प्रवचन और साधु-ब्राह्मणोंकी सेवा तथा नगरकीर्तन आदिका बड़ा आनन्द रहा। प्रथम उत्सव श्रीरामनवमीके उपलक्षमें हुआ था। उसके अन्त में जो नगरकीर्तन हुआ था उसकी शोभा बड़ी ही अलौकिक थी। उसमें सहस्रों नर-नारी कीर्तनानन्दमें मत्त हो रहे थे। उसमें परिकरसहित श्रीमहाराजजीके अतिरिक्त पूज्य श्रीहरिबाबाजी, बाबा रामदासजी, बाबा रघुनाथदासजी, श्रीजयरामदासजी 'दीन' श्रीकृष्णानन्दजी बंबईवाले आदि और भी अनेकों महापुरुष पधारे थे। दूसरा उत्सव शीतकालमें हुआ था। उसमें उपर्युक्त सम्पूर्ण आयोजनोंके अतिरिक्त श्रीरासलीलाका भी आयोजन किया गया था। तथा पण्डितसभा और कविसम्मेलन भी होते थे। प्रायः पन्द्रह दिनतक उत्सव सानन्द चलता रहा, किन्तु फिर एक विघ्न उपस्थित हो गया। मेरा एकमात्र पुत्र, जिसकी आयु केवल एक वर्ष की थी, चेचककी बीमारीसे चल बसा। मृत्युसे पूर्व मैंने बालक को उत्सवमें पधारे हुए सभी महापुरुषोंके दर्शन कराये थे। उसकी मृत्यु हो जानेसे सर्वत्र सन्नाटा छा गया। सभीके मुख उदास हो गये। समागत संतोंमें से कई जहाँ-तहाँ चले गये। जब बालकके मृत कलेवरको यमुनाजीमें प्रवाहित कर हम सायंकालमें श्रीमहाराजजीके पास पहुंचे तो पूछा कि आपने उत्सव बन्द क्यों कर दिया। आप बोले, "मैंने बन्द नहीं किया, लोगोंके चित्त खिन्न हो गये,

अतः वे स्वयं ही चले गये हैं ।" परन्तु श्रीमहाराजजी अन्ततक बिराजे रहे ।

इस दुर्घटनाके कारण लोगोंको तो चर्चाका एक प्रसंग मिल गया । नगरमें यह अपवाद होने लगा कि अच्छा उत्सव हुआ, लड़का ही मर गया । एक दिन श्रीमहाराजजीके आगे इस अपवाद की चर्चा हुई तो आप बोले, "लड़का मर गया तो कोई बात नहीं एक वर्ष के भीतर फिर यही लड़का तुम्हारे यहाँ जन्म लेगा ।" आपकी यह वाणी सर्वथा सत्य हुई । एक वर्षके भीतर ही पुनः पुत्रका जन्म हुआ और वह अभीतक जीवित है । पुत्रके विषयमें हमारे यहाँ कुछ ऐसा योग रहा है कि मेरे पिताजीके भी आठ सन्तानें हुई थीं, किन्तु उनमें एक पुत्री ही जीवित रही थी । मैं दस वर्षकी आयुमें उनकी गोद आया था ।

कुछ समय बीत जानेपर मैंने श्रीमहाराजजीसे पूछा, "भगवन् ! आपकी उपस्थितिमें उत्सवमें ऐसा विघ्न क्यों आया ?" सुनकर आप चुप रह गये । परन्तु जब दुबारा आग्रहपूर्वक पूछा तो बोले, "श्यामलाल खण्डेलवालके लड़के मोहनलालकी तुझमें प्रीति और मुझमें श्रद्धा थी । उसकी आयु प्रायः बाईस साल की थी । वह हरिबाबाजी तथा और भी बड़े-बड़े महात्माओंके, जिनका नाम उसने सुन रखा था, दर्शन करना चाहता था । परन्तु पिताकी आज्ञा न मिलनेके कारण वह जा नहीं पाता था । वह संतसेवामें रुपया भी खर्चना चाहता था, किन्तु पिताके अनुदार स्वभावके कारण उसकी यह लालसा भी पूर्ण नहीं होने पाती थी । एक बार वह लड़का तुम्हारे साथ एतमादपुर मेरे दर्शन करनेके लिये गया था । चलते समय उसने बड़े प्रेमसे मुझसे पूछा था,

"महाराजजी ! अब मुझे आपका दर्शन कहाँ होगा ?" उस समय मेरे मुँहसे निकल गया—

'करे खान-ए-बदोशोंकी खुदा खुद कार सामानी ।
नया मंज़िल नया ख़ाना नया दाना नया पानी ।'*

दैवयोगसे लौटनेके एक सप्ताह पश्चात् ही ज्वर आकर उसकी मृत्यु हो गयी । उसका मुझमें राग था, संत-महात्माओंके दर्शनों की लालसा थी और तुम्हारे प्रति प्रीति थी ही । अतः उसीने मर कर तुम्हारे यहाँ जन्म लिया था । वह संतसेवामें खर्च करना चाहता था । इसीसे उसके निमित्त तुमने यह उत्सव किया और जिन-जिन महात्माओंके वह दर्शन करना चाहता था उन्हें बुलाकर अन्त समय उनके दर्शन भी कराये । इस संकल्पके पूर्ण होते ही वह शरीर छोड़कर चला गया ।"

(३)

एकबार मेरे मनमें एक दुर्वासनाने जोर पकड़ा । परन्तु मैंने किसीसे भी उसकी चर्चा नहीं की । एक दिन मेरे मनकी बात जानकर श्रीमहाराजजी कहने लगे, "अरे ! क्या तुम मुझसे भी छिपाकर ऐसा करना चाहते हो ? क्या मुझसे यह बात छिपी रह सकती है ? आगे कभी ऐसा विचार नहीं करना ।" श्रीस्वामी जीके इन शब्दोंमें उनकी प्रबल संकल्पशक्तिका योग था । अतः इन के प्रभावसे मेरा वह कुसंस्कार निर्मूल हो गया और उसके पश्चात् फिर कभी उसने सिर नहीं उठाया । इस प्रकार समय-समय पर हमारे बिना कहे ही वे हमारी रक्षा किया करते थे ।

* 'जो अनिकेत महात्मा हैं उनके योग-क्षेम की व्यवस्था स्वयं भगवान् करते हैं । उनका नया विश्राम स्थान होता है, नया घर होता है तथा नया खाना-पीना होता है ।' इस कथनसे श्रीमहाराजजीका तात्पर्य यह था कि यह कहा नहीं जा सकता कि मैं कब कहाँ रहूँगा ।

श्रीजगन्नाथप्रसाद जालान, हाथरस

प्रथम दर्शन

मैं अभी बच्चा ही था। उस समय मेरी रुचि भगवान् शंकर-की उपासनामें थी। मैं यथासाध्य उन्हींका भजन-चिन्तन करता था। सन् १९३२ की बात है। मैंने एक दिन रात्रिमें स्वप्न देखा। हाथमें वीणा लिये देवर्षि नारदजी आये हैं। मैंने उन्हें प्रणाम किया। वे बोले, "वत्स ! आज तुम्हारे यहाँ भगवान् शंकर भिक्षुक के रूपमें आवेंगे। इसलिये आज तुम किसी अभ्यागतका अनादर मत करना।" इतना कहकर देवर्षि अन्तर्धान हो गये। फिर स्वप्नमें ही मैंने बड़ी प्रसन्नता से भगवान् शंकरकी पूजा एवं भोग-रागकी सामग्रियाँ तैयार कीं और उनके शुभागमनकी प्रतीक्षा करने लगा। मनमें बड़ी प्रसन्नता, बड़ा उल्लास था कि आज मुझे भगवान् शंकरके दर्शन होंगे।

पहले एक बुढ़िया आयी और बोली, "मुझे खानेके लिये आटा, दाल, घी दो। मैं तो इस प्रतीक्षामें ही बैठा था। तुरन्त उसकी इच्छानुसार सब सामान दे दिया और वह प्रसन्नतापूर्वक चली गयी। उसके पश्चात् भिक्षुकके रूपमें भगवान् पधारे। उनके शरीर में जहाँ-तहाँ अनेकों पट्टियाँ बँधी थी। वे कुछ पद गुनगुना रहे थे और उनके नेत्र बड़े सुन्दर थे। मैं उनके चरणोंमें गिर गया और बोला, "आप स्वयं भगवान् हैं, आप भीतर पधारिये।" उन्होंने कहा, "नहीं भाई ! मैं तो भिक्षुक हूँ।" तथापि मेरे प्रेमपूर्ण आ-ग्रहसे वे भीतर आ गये, मैंने उन्हें एक सुन्दर आसनपर विराज-

मान कराया और गन्ध-पुष्प आदिसे उनकी पूजा की। फिर जब चरणोंमें प्रणाम किया तो देखा कि उनका स्वरूप दिव्य हो गया है। उनके श्रीअंगके चारों ओर प्रकाशपुञ्ज है, मस्तक कण्ठ और भुजाओंमें सर्प हैं तथा हाथमें एक विशाल त्रिशूल है। इस रूपको देखकर मैं डर गया, मेरे नेत्र बन्द हो गये और मैंने प्रार्थना की कि आपके इस रूपको देखकर मैं भयभीत हो रहा हूँ। इन सर्पोंसे मुझे डर लगता है। तब वे मुसकाये और वे सर्प तत्काल अदृश्य हो गये। उन्होंने मेरे सिरपर हाथ रखकर कहा, "तू क्या चाहता है?" मैंने इतना ही कहा, "आपके चरणोंमें मेरा प्रेम हो।" वे बोले, "आजसे तीसरे दिन तुम्हें एक ऐसे महात्मा मिलेंगे जो मेरे ही स्वरूप हैं। उनकी सेवा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा।" इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये। उस समय मुझे अन्तर्हित होती ज्योति दिखायी दी। फिर मेरा स्वप्न भंग हो गया, परन्तु मुझे उसकी पूरी स्मृति बनी रही।

अब मैं उत्सुकतापूर्वक तीसरे दिनकी प्रतीक्षा करने लगा। यह बात किसी पर प्रकट नहीं की। ठीक तीसरे दिन पिताजी बोले, "आज एक महात्मा आये हैं, चल, तुझे दर्शन करा लाऊँ।" सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं उनके साथ विष्णुदयालके बगीचेमें पहुँचा। उसी समय श्रीमहाराजजी गुफाकी छतपरसे उतरे। उनके दर्शन करनेपर स्वप्नकी बातको स्मरण करते हुए मैंने साक्षात् शिवबुद्धिसे उन्हें प्रणाम किया। आप आकर आसनपर विराज गये। फिर मुझसे कहा, "तू कोई प्रार्थना सुना।" मैंने "शरणागत-पाल कृपालु प्रभो! हमको एक आश तुम्हारी है।" यह प्रार्थना गाकर सुनायो। तब श्रीमहाराजजीने प्रसाद स्वरूप सबको एक-

एक ओर मुझे दो पेड़े दिये तथा मुझे प्यार भी किया। उसी दिनसे मेरा चित्त उनकी ओर आकर्षित हो गया। धीरे-धीरे उनके श्री-चरणोंमें मेरी श्रद्धा-प्रीति बढ़ती गयी। अब तो ऐसी दशा हो गयी कि उनके दर्शनोंके बिना रहा नहीं जाता था। पिताजी मेरी इस प्रवृत्तिसे अप्रसन्न थे और मुझे पीटते भी थे, तथापि किसी न किसी प्रकार मैं उनके पास चला ही जाता था।

मन्त्रोपदेश

एक दिन श्रीगणेशीलालजी गुरुपूर्णिमाका पूजन करनेके लिये रामघाट जा रहे थे। मैंने भी जाना चाहा, पर पिताजीने मुझे बाँधकर उल्टा लटका दिया और खूब मार लगायी। कहने लगे, "साधुओंके पास क्यों जाता है, साधु हो जायगा।" उसी दिन रात्रि में श्रीस्वामीजीने मुझे दर्शन दिया और बोले, "बेटा! तू डरना नहीं, मैं तो सदैव तेरे साथ हूँ। कल चले आना।" मैं दूसरे दिन मौका पाकर रामघाट पहुँच गया और रोने लगा। इसपर श्रीमहा-राजजीने मुझे बहुत प्यार किया। ऐसा प्यार तो जीवनमें कभी नहीं मिला। मेरा सारा दुःख जाता रहा। मैंने प्रार्थना की, "महा-राजजी! मुझे शंकरजीका मन्त्र बता दीजिये।" आप बोले, "शंकरजीकी कृपा तो तेरे ऊपर है ही। अब तू भगवान् कृष्णकी उपासना किया कर।" इसके पश्चात् आपने कुटिया बन्द करा दी और कुछ ऐसी रहस्यपूर्ण बातें कहीं जिनसे उन्हींमें मेरी इष्टबुद्धि हो गयी और मैं भगवद्भावसे उन्हींकी उपासना करने लगा।

निर्भयता

रामघाटमें एक दिन श्रीमहाराजजी तख्तपर विराजमान थे। वे ध्यानावस्थित थे और मैं पंखा झल रहा था। इतने ही में एक

लम्बा काला सर्प वहाँ ग्रा पहुँचा। रामघाटमें कुटियाके ग्रास-पास बहुत सर्प रहते थे। उस सर्पको देखकर मैं चिल्ला उठा, "महाराजजी ! सर्प !" वे बोले, "चुप रह, डरे मत। यह कोई महात्मा है, दर्शनोंके लिये ग्राया है।" सर्प तख्तके पास ग्राकर फन उठाकर खड़ा हो गया। तब महाराजजीने उसके ग्रागे कुछ पेड़े डाल दिये। सर्पने दो-तीन वार पेड़ोंपर फन मारा। फिर महाराजजीने चुटकी बजायी ग्रौर हँसकर कहा, "भाग जा।" तव वह सर्प चुपचाप वहाँसे चला गया। रामघाटमें सर्पोंकी ऐसी ग्रनेकों घटनाएँ हुग्रा करती थीं।

इष्टरूपमें दर्शन

एकबार बाँधपर बड़ा विशाल उत्सव हुग्रा। वहाँ ग्रनेकों सन्त पधारे थे। 'कल्याण' के सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भी ग्राये थे। एक दिन मनमें ऐसी भावना उठी कि श्रीमहाराजजी तो सर्व-समर्थ हैं, वे मुझे श्रीकृष्णरूपमें भी दर्शन दे ही सकते हैं। यह सोचकर मैंने उनसे प्रार्थना की कि ग्राप श्रीकृष्णरूपमें दर्शन दें। बोले, "तू बड़ा मूर्ख है, भजन कर, भजन करनेसे ही भगवान्के दर्शन होते हैं।" पर मैं तो उनमें भगवद्भाव रखता था। ग्रतः ग्रपनी टेकपर ग्रटल रहा ग्रौर निश्चय कर लिया कि जबतक मुझे कृष्णरूपमें दर्शन नहीं देंगे, मैं ग्रन्न ग्रहण नहीं करूँगा। श्रीमहाराजजीका यह स्वभाव था कि यदि किसी कारणसे कोई भोजन नहीं करता था तो वे ग्रत्यन्त व्याकुल हो जाते थे। फिर तो किसी न किसी प्रकार उसे भोजन कराते ही थे।

दूसरे दिन ग्रापने श्रीहनुमानप्रसादजीसे कहा, "भैया ! यह भी मारवाड़ी बालक है, तुम इसे समझा दो, यह ऐसा हठ छोड़ दे।"

हनुमानप्रसादजी मुझे समझाने लगे, "महात्माओंसे ऐसा हठ नहीं करते। इससे उन्हें कष्ट होता है। यह तो तुम्हारी निष्ठापर निर्भर है। भजन करो, भजनसे ही भगवद्दर्शन हो सकता है।" पर इन बातोंसे मेरा कोई सन्तोष नहीं हुआ। मैंने उनसे कहा, "भाईजी ! महाराजजीसे मेरा आन्तरिक भावसम्बन्ध है। वे निश्चय ही मेरी अभिलाषा पूर्ण कर सकते हैं। इस बीचमें आप कुछ न कहें।" अब उन्होंने हँसते हुए श्रीमहाराजजीसे कहा, "यह तो बड़ा हठी है, समझता नहीं। इसे तो आप ही समझा सकते हैं।"

तीसरे दिनकी बात है। रात्रिके दो बजेका समय था। मैं सदाकी भाँति श्रीमहाराजजीके तख्तके पास चरणोंकी ओर बैठा था। वे एकाएक उठ बैठे और बोले, "तू हठ क्यों नहीं छोड़ता ? अच्छा, अब नेत्र बन्द कर ले।" उसी क्षण मेरे नेत्र बन्द हो गये और सामने ही मुझे मुरली बजाते हुए श्रीकृष्णके दर्शन हुए। उसके पश्चात् उसी समय श्री कृष्णरूपमें आपके भी दर्शन हुए। मेरी भावना पूर्ण हो गयी। मै चरण पकड़कर बहुत देरतक रोता रहा। शरीरका अनुसन्धान नहीं रहा। श्रीमहाराजजीने मुझे उठाया और प्रसाद दिया।

पं० श्रीवंशगोपालजी तिवारी, ड्राइंग मास्टर हाथरस

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीका दर्शन मुझे सबसे पहले यहाँ विष्णुदयालके बगीचेमें ही हुआ था। उस समय वे सिद्धासनसे बड़ी शान्त मुद्रामें विराजमान थे। कोई प्रश्न करता तो संक्षेपमें समाधानकारक उत्तर दे देते और पुन: मौन हो जाते थे। मैं कई दिनोंतक बराबर जाता रहा, परन्तु कभी कोई बातचीत नहीं की। धीरे-धीरे उनमें मेरी श्रद्धा बढ़ गयी और फिर तो कई बार हाथरससे बाहर भी उनके दर्शनार्थ गया।

एक बार चन्द्रग्रहणका अवसर था। हम कई मास्टर बाबाके दर्शनार्थ रामघाटको चले। मार्गमें हमारे हैडमास्टर श्रीव्रजमोहनलालजी बोले, "मुझे तो बड़ी भूख लग रही है।" मैंने कहा, "यह कैसे हो सकता है? उधर तो चन्द्रग्रहण लगा हुआ है, इस समय भोजन कैसे किया जा सकता है?" थोड़ी देरमें हम बाबाके पास पहुँच गये। ग्रहण शुद्ध हुआ। पर हमने खाने-पीनेके विषयमें किसीसे कोई चर्चा नहीं की। थोड़ी ही देरमें गर्म-गर्म पूड़ियोंकी एक झाल और साग आया। बाबा मुझसे बोले, "इधर आओ, तुममें कौन भूखा है? उसे भोजन करा दो।" मैंने कहा, "हैडमास्टर साहबको बहुत भूख लगी है।" फिर तो उनके साथ और कईने भी प्रसाद पाया।

श्रीमहाराजजी मुझे प्रायः यही उपदेश दिया करते थे कि कहीं रहो, मनको संकल्परहित और वासनाओंसे मुक्त रखना परम आवश्यक है। यही सब साधनोंका सार है। मुझे क्रोध अधिक आता था, इससे मैं लड़कोंको प्रायः पीट-पाट देता था। साथ ही मेरी स्मरणशक्ति बहुत मंद है। बाबाने मुझसे कहा, "यदि तुम क्रोध छोड़ दो तो तुम्हारी स्मरणशक्ति बढ़ सकती है। इसके लिये गीता का पाठ किया करो।" मैं उनके आदेशानुसार गीताका स्वाध्याय करने लगा। इससे स्वतः ही मेरा क्रोध शान्त हो गया। अब वैसा क्रोध कभी नहीं आता। मेरे चित्तमें यदि कोई चिन्ता होती और मैं बाबाके पास चला जाता तो उनके दर्शनमात्रसे मेरी चिन्ता शान्त हो जाती थी। उनके पास जानेपर तो मुझे कुछ पूछने-पाछने का भी स्मरण नहीं रहता था।

मुझे कई बार शंकरजीके रूपमें बाबाके दर्शन होते थे। जब मैंने उनसे यह बात कही तो बोले, "भैया! तेरी भावना प्रबल है, इसीसे ऐसा दिखायी देता है।" एकबार दुर्गानवमीके अवसरपर मैं कर्णवास आपके पास गया। वहाँ सब भक्तोंके साथ श्रीमहाराजजी देवीजीके दर्शनोंके लिये गये। बड़े समारोहके साथ देवीजीका पूजन हुआ और फिर 'जय दुर्गे जय दुर्गे दुर्गे जय दुर्गे जय श्रीदुर्गे' का कीर्तन प्रारम्भ हुआ। कीर्तन आरम्भ होते ही मैंने नेत्र मूँद लिये बीचमें जब नेत्र खोले तो देखा कि श्रीमहाराजजी अपने आसनपर नहीं हैं। उनके स्थानपर वहाँ सिंहवाहिनी श्रीदुर्गाजी विराजमान हैं। मैं आश्चर्यचकित हो बड़ी देर तक उनके दर्शन करता रहा। फिर अकस्मात् दुर्गाजी अन्तर्धान हो गयीं और पूर्ववत् श्रीमहाराज

जी दिखायी देने लगे। मैं मन्त्रमुग्धकी भाँति यह लीला देखता रहा। यहाँ तक कि कीर्तन समाप्त होनेपर सब लोग चले गये और मुझे कुछ भी पता न चला। पीछे बाबाने आदमी भेजकर मुझे बुलाया। जब आनन्दविभोर हुआ मैं इस प्रसंगकी चर्चा करने लगा तो मुझे रोककर बोले, "चुप, ऐसी बात नहीं कहते।" ऐसी थी उनकी अद्‌भुत लीला।

श्रीमती अन्नपूर्णादेवी, हाथरस

कुछ विचित्र घटनाएँ

(१)

मेरा बड़ा लड़का जगदीशनारायण अभी छः सात वर्षका ही था; उसे निमोनिया हो गया। उसकी स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक थी, आँखें उलटी हो जाती थीं। तथापि उस दिन हम बेनीरामके बागमें, जहाँ श्रीमहाराजजी का नित्यप्रति सत्संग होता था, चले गये। हमारे पीछे लड़केको पढ़ानेवाले मास्टर साहब घरपर आये। लड़केकी हालत खराब देखकर वे कहने लगे, "यहाँ लड़केकी आँखें उलटी हुई हैं और ये लोग भक्ति करने गये हुए हैं। तिलाञ्जलि दे देनी चाहिये ऐसी भक्तिको।" बस वे स्वयं उसकी सेवा-सुश्रूषामें लग गये। हम रातको सत्सङ्गसे लौटे और साथमें बाबाका चरणोदक तथा प्रसादी केला लाये। हृदयमें बालकके जीवनकी ओरसे निराशा हो चली थी। आकर उसके मुखमें प्रसादी केला और चरणोदक दिया। उसने जैसे-तैसे केला गलेके नीचे उतारा और चरणोदक गुटक लिया। बस, उसी समय से धीरे-धीरे उसकी अवस्था सुधरने लगी और चार-पाँच दिनमें वह स्वस्थ हो गया।

(२)

एक बार रात्रिको स्वप्नमें मुझे बाबाने दर्शन दिया और बोले, "मैं आ रहा हूँ, तुम्हारे यहाँ ही भिक्षा करूँगा।" जागनेपर मैंने मास्टर साहबसे कहा, "आज बाबा यहाँ आ रहे हैं।" वे कहने लगे, "आज कलतो बाबाका कहीं पता नहीं है। वे वृन्दावनमें भी नहीं हैं। यहाँ कैसे आ जायेंगे ?" मैंने प्रातःकाल उठकर सारा घर धोया

और भिक्षाकी सामग्री तैयार करने लगी। थोड़ी ही देर में जगन्नाथ दौड़ा हुआ आया और कहने लगा, "पण्डितजी बाबा आ गये हैं।" मास्टर साहब बोले, "अच्छा, इसको भी सिखा दिया है।" जगन्नाथने कहा, 'नहीं, पंडितजी ! मैं विष्णुदयालके बागमें बाबाको देख आया हूँ।" तब तो मास्टर साहबने भी जाकर दर्शन किया। बाबा बोले, "तिवारीजी ! आज तुम्हारे यहाँ ही भिक्षा करेंगे।" इसके पश्चात् बाबा आये और मेरे यहाँ ही भिक्षा की। तब मास्टर साहब को मेरी स्वप्नकी बातपर विश्वास हुआ।

(३)

यह उस दिनकी बात है जब हम बागला कालेजके बोर्डिंग हाउसमें रहा करते थे। रातके समय हम भैंसको बाहर बाँध देते थे। लड़कोंने कहा कि रातमें बाहर बाँधने से भैंस को कोई खोल ले जायगा, इसलिये इसे कमरेमें ही बाँध दीजिये। तब हम उसे कमरेमें बाँधने लगे। फिर उन्हीं लड़कोंने हैडमास्टरसे जाकर शिकायत कर दी कि तिवारी साहबकी भैंस कमरेमें बाँधी जाती है, इससे कमरा खराब होता है। हैडमास्टरने उनसे कह दिया कि अच्छा, कल हम इसकी जाँच करेंगे। दूसरे दिन प्रातःकाल स्वप्नमें बाबाने मुझे दर्शन दिया और बोले, "बेटी ! आज हैडमास्टर निरीक्षणके लिये आवेगा।" फिर क्या था, मैंने अँधेरेमें ही उठकर नौकर को बुलाया और पन्द्रह-बीस बाल्टी जल से धुलवाकर सारा कमरा साफ करा दिया। सूर्योदय के पश्चात् हैडमास्टर साहब निरीक्षण करनेके लिये आये और कमरे को सर्वथा स्वच्छ देखकर शिकायत करने वाले लड़कोंको ही डाँटने लगे।

(४)

एक बार किसी विशेष कारणसे मेरी और मास्टर साहबकी

कुछ अनबन हो गयी। इससे मास्टर साहबने अपना मासिक वेतन घरमें नहीं दिया। कुछ दिनों पश्चात् चौकेमें घी आदि किसी घरेलू वस्तुकी कमी हुई। परन्तु न तो मेंने मास्टर साहबसे रुपया माँगा और न उन्होंने ही पूछा। मेरे चित्तमें चिन्ता अवश्य हुई। अकस्मात् मेरी दृष्टि श्रीमहाराजजीके चित्रपटकी ओर गयी तो उसपर कोई कागज-सा हिलता दिखायी दिया। पास जाकर देखा तो दस रुपयेका नोट था। उस रुपये से मैंने आवश्यक वस्तु मँगा ली। स्कूलसे लौटनेपर मास्टर साहबने पूछा कि सामान कहाँसे मँगाया है ? मैंने कहा, "श्रीमहाराजजीने रुपया दिया है, उसीसे मँगा लिया है।" इसके पश्चात् जब श्रीमहाराजजी विष्णुदयालके बागमें आये और मास्टर साहब उनके दर्शनोंको गये तो उन्होंने कहा, "तिवारीजी ! एक रजाई तैयार करा लाओ।" वहाँ बैठे हुए कई सज्जनोंने आग्रह किया कि हम करा लायेंगे। परन्तु उन्होंने मना कर दिया। मास्टर साहबने शंकरलालजीसे कहा कि रजाई आप तैयार करा दें, उसका रुपया मैं दे दूँगा। जब रजाई तैयार होकर घर आयी और उसकी लागत पूछी तो मालूम हुआ कि पूरे दस रुपये लगे हैं। वह रजाई श्रीमहाराजजीके पास पहुँचा दी गयी। उन्होंने वह किसीको ओढ़नेके लिये दे दी। वे स्वयं रजाई कभी नहीं ओढ़ते थे।

(५)

सन् १९४१ में बाबाको भगन्दर हो गया था। उसके आपरेशन की तैयारी हो रही थी। उन्हीं दिनों सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० वैद्य-नाथजी अग्निहोत्री यहाँ आये। उन्हें हमने बाबाकी जन्मपत्री दिखायी। उसे देखकर वे बोले, "यह जन्मपत्री जिसकी है वह या

तो राजा होगा या कोई महापुरुष। परन्तु यह बात समझमें नहीं आ रही है कि उसे सवारीका सुख नहीं होगा। यह कैसे सम्भव है?" तब हमने उन्हें बाबाका परिचय दिया और ओपरेशन की भी बात कही। पण्डितजी बोले, "उनकी मृत्युका योग शस्त्रसे है इसलिये ओपरेशन नहीं कराना चाहिये। सम्भव है, मृत्यु हो जाय।" अतः उस समय ओपरेशन रोक दिया गया और होमियोपैथिक दवासे उन्हें लाभ हो गया।

उसके कई वर्षों बाद पण्डितजीका पत्र आया और उन्होंने वाणीसे भी कहा कि इस वर्ष (सं० २००५ में) बाबाका मृत्युयोग है। यदि इस वर्ष वे बच गये तो सालभरके लिये निश्चिन्त। संवत्सरकी समाप्तिके दस-पाँच दिन पूर्व हम लोग सोच रहे थे कि इस बार तो बाबाका मृत्युयोग टल गया। परन्तु समाप्तिके दिन ही सूचना मिली कि एक दिन पूर्व उनका निर्वाण हो गया।

यहाँ प्रसङ्गवश बाबा की जन्मकुण्डली दी जाती है।

श्रीगणेशायनमः। अथ श्रीशुभ संवत् १९३२ विक्रमी तत्र भाद्र कृ० ७ चन्द्रवासरेष्टम् १६।०६।०३० लग्न ८ सूर्य ०४।०७ कृत्तिकाभे प्रथमचरणे श्रीमान् महाराज मिश्र वासुदेवजी तस्यात्मज भारद्वाज-गोत्रोत्पन्न श्रीवैद्यनाथमिश्रगृहे पुत्रजन्मः। नाम आर्तत्राणः जन्मराशिः १ मेष स्वामी भौमः।
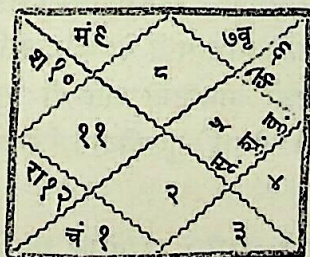
बाबू मिश्रीलालजी एडवोकेट, अलीगढ़

प्रातःस्मरणीय ब्रह्मविभूति श्रीउड़िया बाबाजी सिद्ध महात्मा थे, योगी-संन्यासी थे परमहंस-ज्ञानी थे, भक्त-शाक्त थे, शैव-महापुरुष थे, देवदूत-देवता थे अथवा अवतार—इसे तो जो वैसा ही महात्मा या महापुरुष हो वह जान सकता है; हमको तो वे सब कुछ जान पड़ते थे। उनकी नित्य समाधि रहती थी। उन्हें देहज्ञानका नितान्त अभाव रहता था और 'मैं' अथवा 'मेरा' जैसे शब्द तो उनके मुखसे निकलते कभी सुने ही नहीं गये। वे निरन्तर अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए भी जनसमाजमें व्यस्त-से प्रतीत होते थे। इतने व्यस्त कि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जिसका उन्हें ध्यान न रहे। उनके सेवक और भक्त स्त्री-पुरुष उन्हें सर्वदा घेरे रहते थे। वे कब सोते थे और कब विश्राम लेते थे—यह भी कहना कठिन है। हमें तो ऐसा प्रतीत होता था कि वे सदैव तुरीय अवस्थामें ही रहते थे। उनके लिये जागृत और सुषुप्तिमें कोई भेद नहीं था। वे सदैव शान्तचित्त और प्रसन्नवदन दिखायी पड़ते थे। जनसमाजमें व्यस्त रहना उनकी लीलामात्र थी। उनकी अनेक लीलाओं को देखकर अज्ञानी लोग बाबाका असली मूल्य नहीं आँक पाते थे और इसीसे इन अज्ञानियों के मुखसे उनके सम्बन्धमें मनमानी बातें भी सुनायी पड़ती थीं। परन्तु उनके विषयमें तो गोसाईं तुलसीदासजीके ये वचन चरितार्थ होते हैं—

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥'

ऐसे परमविभूतिसम्पन्न श्रीउड़िया बाबाजीके दर्शनका सौभाग्य सबसे पहले मुझे सन् १९१५ के लगभग प्राप्त हुआ था। अलीगढ़ नगरसे प्रायः दस मील पूर्व ग्राण्ड ट्रंक रोड के सहारे एक गाँवमें वे पधारे थे। वहाँके जमीदारने मुझे सूचना देकर बुलाया। मैंने बाबाका नाम और यश तो पहले ही सुन रखा था, अतः सूचना पाते ही तुरन्त वहाँ गया और उनके दर्शन किये। उनका शरीर हल्का था और स्वास्थ्य अच्छा। वे शान्तिकी मूर्त्ति जान पड़ते थे। उन्होंने बड़े प्रेमसे मुझसे देरतक बातें कीं। इसके कई वर्ष पश्चात् जब एक दूसरे गाँवमें मैंने दूसरी बार दर्शन किये तो उन्होंने मुझे तुरन्त पहचान लिया और प्रथम बार मिलनेके स्थान तथा बातोंको भी दुहराया। उनके प्रति मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। परन्तु इधर वकालतके कार्यमें मैं इतना व्यग्र और अलब्धावकाश रहता था कि उनसे अधिक सम्पर्क बढ़ानेका सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हो सका। उनके अधिक सम्पर्कमें आनेका अवसर तो मुझे सन् १९४४ के अन्त और १९४५ के आरम्भमें मिला जब कि उन्होंने अपने वृन्दावनस्थ आश्रम 'श्रीकृष्णाश्रम' की प्रबन्ध समिति का नियमबद्ध संगठन कराकर सरकार द्वारा उसे रजिस्टर्ड करानेका विचार किया। उस कार्यके लिये मुझे अलीगढ़से बुलाया गया और यह सेवा मुझे ही सौंपी गयी। इस सेवाके अवसरमें बाबासे विशेष वार्तालाप करनेसे मुझे यह प्रतीत हुआ कि बाबा केवल 'बाबा' ही नहीं थे। ट्रस्टका संगठन बनानेमें उन्होंने मुझे अनेक ऐसे सुझाव दिये जो एक साधारण पुरुषको नहीं सूझ सकते थे। इससे उन्हें दूरदर्शी कहना भी व्यर्थ ही है, क्योंकि वे तो सर्वदर्शी थे। वे ज्ञानी ही नहीं, विज्ञानी भी थे।

मुझे खेद है कि बाबाके संसर्गमें रहकर आध्यात्मिक लाभ उठानेका मुझे विशेष अवसर नहीं मिला। सौभाग्यसे जो कुछ समय मिला उसका भी मैं यथेष्ट उपयोग नहीं कर पाया और न मुझसे कोई साधन ही हो सका। इस ओर यदि किसी अंशमें मेरे भीतर कोई भावना हो तो उसे बाबाकी अहैतुकी कृपाका फल ही समझना चाहिये। आज बाबाका भौतिक विग्रह हमारे बीचमें नहीं है, तथापि उनकी आत्माका परम अनुग्रह अब भी संसारके अन्धकारमें दीपकका कार्य कर रहा है। भाग्यवान् हैं वे पुरुष जो इस प्रकाश-द्वारा दीखनेवाले आध्यात्मिक पथको ग्रहण कर अपने जीवनको सार्थक करनेमें संलग्न हैं।

सन् १९४५ में मुझे जो दस दिनतक पूज्य बाबाके पास रहनेका सुअवसर मिला था उस समय बाबासे मुझे जो उपदेश मिले उनका सार इस प्रकार है—'आत्मा साक्षी है। अतः दृश्यपदार्थोंमें आसक्ति न करे, क्योंकि ज्ञेय या दृश्यपदार्थोंसे उनके ज्ञाता या साक्षी आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनमें आत्मत्वका अभ्यास करनेपर ही जीव सुख-दुःख भोगता है, अन्यथा नहीं। आत्मा और अनात्माका विवेक हो जानेपर ही जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। ऐसा पुरुष समस्त कर्मोंको गुणोंका खेल समझते हुए स्वयं निःसंग होकर विचरता है। देहमें अनात्मबुद्धि हो जानेपर सभी वस्तुओंसे असङ्गता हो जाती है, क्योंकि उनका सम्बन्ध तो देहके कारण ही भासता है। कर्म, उपासना और ज्ञान—ये साधनाके तीन मार्ग हैं। इनमें कर्मका सम्बन्ध मुख्यतः देहसे, उपासनाका मनसे और ज्ञानका बुद्धिसे है। गुरुमें भगवद्बुद्धि और उनके वचनोंमें श्रद्धा—ये सिद्धि प्राप्त करनेके लिये परम आवश्यक हैं। जब पत्थरकी मूर्तिमें ईश्वरभाव होनेसे

भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है तो माता, पिता या गुरुमें भगवद्भाव होनेसे सफलता प्राप्त हो—इसमें तो सन्देह ही क्या है। ज्ञानोकी दृष्टिसे ज़ीवन्मुक्त और विदेहमुक्तमें कोई अन्तर नहीं है। दूसरोंकी दृष्टिमें भले ही इनमें भेद हो। इसीप्रकार बन्ध और मोक्षका भेद भी दूसरोंकी ही दृष्टिमें है, ज्ञानी तो दोनोंहीको कल्पित देखता है। ध्यानमें शरीर, नेत्र, प्राण और मन चारोंहीको स्थिर रखना चाहिये। मनकी वृत्ति द्वारा शरीरको अपनेसे पृथक् और मृतवत् देखो; प्राणोंको बिना प्रयास स्वतः चलने दो, वे धीरे-धीरे स्वतः ही स्थिर हो जायँगे। यही केवली कुम्भक है। यदि मन स्थिर न हो तो प्रणवका जप करो और मन स्थिर होनेपर ऊपर लिखे प्रकार से ध्यान करो। प्राणायाम अधिक नहीं बढ़ाना चाहिये। तथापि ध्यानके पूर्व साधारण प्राणायाम कर लेनेसे ध्यानमें सुविधा रहती है। फिर ध्यानका अभ्यास भी धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये।'
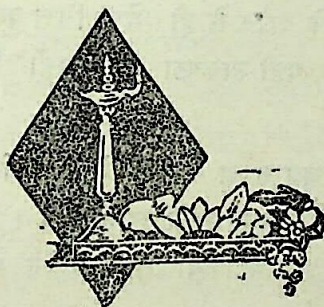
श्रीरामस्वरूपजी केला, अलीगढ़

प्रथम दर्शन

मैंने सुना था कि श्रीउड़ियाबाबा नामके एक त्यागी महात्मा हैं और वे उत्तरप्रदेशके प्रसिद्ध संत हैं। अतः उनके दर्शनोंकी लालसा मेरे मनमें थी। परन्तु मुझे श्रीमहाराजजीका दर्शन उस समय हुआ जब हम लोग किसी दूसरे ही कार्यसे जा रहे थे। सन् १९२९ ई० में मैं भाई साहबके[1] साथ किसी आवश्यक कार्यवश हाथीपर कलकत्ती जा रहा था। जिस समय हाथी नरवर पाठशाला के सामने पहुँचा ठीक उसी समय चार-छः भक्तोंके साथ पाठशाला से नीचे उतरते हुए श्रीमहाराजजीके दर्शन हुए। मानो मेरी चिर-आकांक्षाको जानकर ही उसे पूर्ण करनेके लिये उन्होंने कृपा की हो। किसी ने कहा, "ये श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज हैं।" मैंने ऊपरसे ही हाथ जोड़कर प्रणाम किया। यद्यपि मेरा हाथी आगे बढ़ चला, परन्तु उस क्षणभरके दर्शन से ही मेरा चित्त कुछ ऐसा आकर्षित हो गया कि रातभर यही उत्कण्ठा बनी रही कि फिर कब उनके दर्शन करूँ।

इसके पश्चात् जब बाबा कर्णवासमें चातुर्मास्य कर रहे थे तब मैंने परिवारसहित जाकर उनके दर्शन किये। इस बार जब मैंने उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया तो उन्होंने मेरे सिर पर अपना

---

१. इनके बड़े भाई श्रीमक्खनलाल केला उन दिनों जिला बुलन्दशहरमें डिप्टी कलक्टर थे।

करकमल फिराया। उस समय मैंने अनुभव किया कि श्रीमहाराजजीने मुझे अपना लिया है। उन्होंने मुझे महामन्त्रका अधिकसे अधिक जप करनेकी आज्ञा दी। वहीं मुझे ब्रह्मचारी श्रीकृष्णानन्दजी (गणेशजी), ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी और कशमीरी बाबाके भी दर्शन हुए।

अलीगढ़ का उत्सव

सन् १९३३ में श्रीमहाराजजी अमरसा नामक ग्राममें श्रीबलदेव ब्रह्मचारीके स्थानपर थे। मैंने वहाँ जाकर आपके दर्शन किये और अलीगढ़की हरिनामसंकीर्तन सभाकी ओर से होनेवाले उत्सवमें पधारनेके लिये श्रीचरणोंमें प्रार्थना की। आपने उसे स्वीकार कर हमें प्रोत्साहित किया और आशीर्वाद दिया कि यह उत्सव अद्वितीय होगा। साथ ही यह प्रेरणा की कि इस उत्सवको व्यवस्था का सम्पूर्ण भार ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजीको सौंप दो। अतः श्रीचरणोंकी आज्ञानुसार हम ब्रह्मचारीजी को सारा भार सौंपकर उनकी आज्ञानुसार कार्य करने लगे।

यह उत्सव मई मासमें आरम्भ हुआ। इसमें इस प्रान्तके अनेकों बड़े-बड़े सन्त महात्मा और वैष्णव पधारे थे। वृन्दावनस्थ श्रीराधारमणजीके सेवाधिकारी गोस्वामी श्रीबालकृष्णजी इस उत्सवके सभापति थे। उनके साथ थे गोस्वामी श्रीकृष्णचैतन्यजी और विजयकृष्णजी। इनके अतिरिक्त पूज्यपाद श्रीमहाराजजी, श्रीहरिबाबाजी, ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी, शिष्यमण्डलसहित स्वामी श्रीएकरसानन्दजी, श्रीभोलेबाबाजी, श्रीजयरामदासजी 'दीन', श्रीकृष्णानन्ददासजी मण्डलीवाले और श्रीकृष्णप्रेमभिखारीजी आदि

अनेकों महापुरुषोंने पधारकर इस उत्सवकी शोभा बढ़ायी थी । इस महोत्सवमें चौबीसों घण्टे अखण्ड हरिनामसंकीर्तन होता था । प्रातः-काल सामूहिक रूपसे प्रभाती कीर्तन और फिर ८ से ११ बजेतक कथाका कार्यक्रम था । मध्याह्नमें भोजनादिके लिये अवकाश रहता था । फिर १ से ६ बजेतक कथा-प्रवचन आदि होते थे । सायंकाल में पुनः सामूहिक कीर्तन होता था और रात्रिमें भगवत्लीलाओंका दर्शन कराया जाता था । इस प्रकार कई दिनोंतक अलीगढ़की श्रद्धालु जनताने सन्त-महात्माओंके दर्शन और उनके सदुपदेशसे लाभ उठाया । समाप्तिके दिन बड़े समारोहसे नगरकीर्तन हुआ, जिसमें महापुरुषोंने सम्मिलित होकर जनताको दर्शन दिया ।

इस महोत्सवकी सफलताके विषयमें इससे अधिक क्या कहा जाय कि अनेकों सन्त-वैष्णव आजतक इस उत्सवको ही अपने भगवत्प्रेमका आधार मानते हैं । पूज्य बाबाके शुभाशीर्वाद और श्रीब्रह्मचारीजीके पुरुषार्थसे इस महोत्सवमें जैसी सफलता मिली वैसी तो किसीको आशा भी नहीं थी । मुझे श्रीमहाराजजीने यह कहते हुए एक फूलमाला प्रदानकी कि ले बेटा ! तू अपना इनाम ले । आपके करकमलोंसे प्राप्त वह पुष्पमाला अभीतक मेरी बहु-मूल्य सम्पत्ति है ।

कुछ विशेष घटनाएँ

(१)

एकबार बाँधसे श्रीमहाराजजी कहीं अज्ञात स्थानको चले गये थे । उन्हीं दिनों हमलोग गङ्गास्नान करनेके लिये राजघाट गये ।

वहाँ गङ्गाजीमें गोता लगानेसे पूर्व मेरे मनमें संकल्प हुआ कि यदि इस समय श्रीमहाराजजीका दर्शन हो जाता तो कितना अच्छा होता ? इसके पश्चात् गोता लगाकर ज्यों ही मैंने सामने देखा श्री-महाराजजी सामने खड़े थे। बड़े सम्भ्रममें हम लोगोंने उनका पूजन किया और फिर भिक्षा करायी।

(२)

एकबार वृन्दावन्में मेरे बड़े भाई साहबने आपसे प्रश्न किया कि दिनभर भगवान्का भजन करना और भिक्षाका अन्न खाना—यह क्या अकर्मण्यता नहीं है ? इसका उत्तर देते हुए आपने कहा कि यह अकर्मण्यता नहीं, परम पुरुषार्थ है। जीवका जब भगवान्के चरणोंमें परम विश्वास और प्रेम होता है तभी वह सर्वस्व त्याग-कर भगवान्का पथिक बनता है। साधु-संत गृहस्थोंमेंसे ही तो आते हैं। यदि ये घरमें ही रहते तो दूसरोंकी तरह इनके पास भी धन, धरती, घर और कुटुम्ब आदि होते ही। परन्तु इन्होंने इन वस्तुओं को तुच्छ समझकर इनके मोहसे मुक्त हो श्रीभगवान्को अपनाया है, अतः गृहस्थोंकी अपेक्षा तो इनका पुरुषार्थ बहुत बढ़ा-चढ़ा है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

'यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्यजायन्तनाहुषगयादय ऐकपत्यम्।
राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष सीदन्ति ते नु पदवीं त इहास्थिताः किम्॥

(१०।६०.४१)

अर्थात् हे कमलनयन ! आपकी प्राप्तिकी लालसासे अंग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि सम्राटोंने अपने एकच्छत्र राज्योंको त्यागकर वनमें जा अनेक प्रकारके कष्ट सहे, सो वे क्या इन तुच्छ

भोगोंमें कोई आस्था रखते थे। सोचो तो सही, ये सब लोग क्या अकर्मण्य थे ? उनके समान पुरुषार्थ भी आज किसमें है ? श्रीरामायणजी की यह चौपाई भी प्रसिद्ध ही है—

'मुनिवर जतन करहिं जेहि लागी। भूप राज्य तजि होहिं भिखारी।
सोइ कोशलाधीश रघुराया। आये करन तोहि पर दाया॥'

अतः निश्चय मानो, परमात्माकी महान् कृपासे जब विवेकवती बुद्धि प्राप्त होती है तब बड़े-बड़े सम्राटोंको भी ऐसा अनुभव होता है कि सच्चा पुरुषार्थ तो श्रीभगवान्‌को प्राप्त करनेमें ही है, घर-बार तो जीवको मोहमें ही फँसानेवाले हैं। तभी वे सब कुछ छोड़कर भगवद्भजनमें लगते हैं।

(३)

एकबार मुझे एपेण्डीसाइटीज़ १ हो गया। ज्वर बना रहताथा और उदरमें असह्य शूल होता था। लोगोंने मुझे ओपरेशन करानेकी सलाह दी। मैं दिल्ली गया और डाक्टरसे ओपरेशन करानेका निश्चयकर आवश्यक तैयारीके लिये घर लौट आया। इस बीचमें श्रीमहाराजजी अलीगढ़ आ गये। उन्हें जब मालूम हुआ कि मैं ओपरेशन करानेके लिये दिल्ली जा रहा हूँ तो वे मुझसे बोले, "दिल्ली जा रहे हो ? अच्छा......तो......जाओ।"

---

१. 'एपेण्डिस' कहते हैं आन्त्रपुच्छ (आन्तोंके अन्तिम भाग) को। उसमें विजातीय द्रव्य रुक जानेसे उदरमें अत्यन्त तीव्र शूल होने लगता है. उसे 'एपेण्डीसाइटीज (Apendicitese) कहते हैं।

मैंने कहा, "महाराजजी ! आप कह तो जानेके लिये रहे हैं, परन्तु मुझे ऐसा लग रहा है मानो मना कर रहे हों।" तब आप बोले, "नहीं,......मैं......मना......नहीं करता,......जाओ ।" मैंने कहा, "मेरे मनमें तो वही भाव और भी पुष्ट हो रहा है। फिर आप कुछ न बोले। मैंने उनकी अरुचि देखकर ओपरेशन कराने का विचार छोड़ दिया। किन्तु आश्चर्य और प्रसन्नताकी बात यह हुई कि तबसे आजतक मुझे वह बीमारी फिर नहीं हुई।

पूज्य बाबाके चरणोदकका भी मैंने जीवनमें दो बार अद्भुत प्रभाव अनुभव किया। उसने दो बार मुझे महान् कष्टसे बचाया। परन्तु ऐसा अनुभव हुआ उन्हीं भावुकोंको है जिन्हें बाबाने ऐसा अनुभव करनेका अवसर दिया था।

उनका उपदेश और प्रधान गुण

मेरे लिये श्रीमहाराजजो यही उपदेश देते थे कि सचाई और ईमानदारीसे सात्त्विक जीवन बितानेकी चेष्टा करो। जबसे उन्होंने मुझे सिनेमा देखनेको मना किया तबसे वह मुझसे बिलकुल ही छूट गया। पान, बीड़ी, सिगरेट तथा और भी अनेकों दुर्व्यसनोंसे छुटकारा मिल गया। तथा उनकी कृपासे ही भगवान्की ओर मेरे चित्तकी यत्किञ्चित् प्रवृत्ति हुई है।

श्रीमहाराजजीमें मैंने सबसे बड़ा गुण यह देखा कि वे जिसे एकबार अपना लेते थे उसका त्याग फिर कभी नहीं करते थे, भले ही उसमें कोई दोष आ जाय अथवा वह स्वयं अश्रद्धा करने लगे, पर वे अपनी ओर से उसके प्रति कभी दुर्भावना नहीं करते थे। मेरे यहाँके एक प्रतिष्ठित सज्जन पहले बाबामें बड़ी श्रद्धा रखते

थे। परन्तु जीवनके अन्तिम दिनोंमें उनमें कुछ अश्रद्धाका भाव आ गया था, अतः उन्होंने बाबाके पास जाना भी छोड़ दिया था। श्रीमहाराजजीसे उनकी यह बदली हुई मनोवृत्ति छिपी नहीं थी। तथापि मैं जब कभी उनके पास गया मैंने उक्त सज्जनके प्रति उनका तनिक भी दुर्भाव नहीं देखा, प्रत्युत सर्वदा उनके प्रति प्रेम और दयाका भाव ही देखनेमें आया। उनमें श्रीगोसाईंजी की यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती थी—

'रहत न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सौ बार किये की ॥'
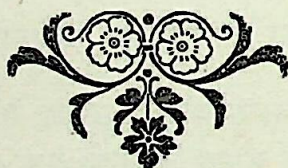
पं० श्रीभूदेव शर्मा, अलीगढ़

प्रथम मिलन

सन् १९२४–२५ ई० में मैं दूसरी वार अनूपशहर हाईस्कूलमें सैकण्ड मास्टरके स्थानपर नियुक्त होकर आया। यहाँ कई संत-महात्माओंके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। बुलन्दशहर-निवासी श्रीब्रह्मानन्दजी वकीलके छोटे भाई स्वामी राम मेरे सह-पाठी रह चुके थे। उनकी प्रेरणासे मैंने एकबार श्रीगीता और रामायणका आद्योपान्त पाठ किया। वे सगुणोपासक थे। किन्तु मैं अँग्रेजीमें स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थकी पुस्तकें तथा हिन्दी-में लोकमान्य तिलकका गीतारहस्य पढ़ चुका था। अतः मेरी रुचि थी अद्वैतवादमें। अतः स्वामी रामने ही मुझे श्रीअच्युत मुनिजीसे उपदेश लेनेका आदेश दिया। मैंने उनके द्वारा पञ्चदशीका श्रवण और मनन किया। गुरुदेवकी कृपासे अध्यात्ममें मेरी रुचि बढ़ी। बस, छुट्टियोंका सारा समय उन्हींके सत्सङ्गमें व्यतीत होने लगा। वहाँ आते समय मार्गमें स्वामी श्रीउग्रानन्दजीसे भी भेट होती थी। वे तितिक्षा और वैराग्यकी मूर्त्ति थे तथा श्रीगुरुदेव थे साक्षात् विवेक-स्वरूप। असङ्गभावना और केवली कुम्भक का अभ्यास ही उनके अमोघ शस्त्र थे। जब मैंने पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी को देखा तो उन्हें साक्षात् उपरतिस्वरूप पाया। अनूपशहरमें मेरे एक मित्र थे ला० प्यारेलाल। वे श्रीउड़िया बाबाजीके अनन्य भक्त थे। उनकी नोटबुकमें बाबाके कुछ उपदेश लिखे हुए थे। उन्हें पढ़कर मेरे मनमें पूज्य बाबाके दर्शनोंकी लालसा जाग्रत् हुई और मैं उन्हींके साथ

बैलगाड़ीद्वारा श्रीचरणोंके दर्शनार्थ रामघाट गया । उस समय वहाँका जो दिव्य और अलौकिक वातावरण देखा वह तो अनुभवका ही विषय था । बस, प्रथम दर्शनमें ही मेरा श्रीचरणोंसे जो अटूट सम्बन्ध हुआ वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया ।

विशेषताएँ

श्रीमहाराजके गुण और सिद्धियोंके विषयमें शब्दोंद्वारा क्या वर्णन किया जाय । उनके प्रेमपाशमें बँधकर अनेकों भक्त कृतार्थ हो गये । सबको बस यही जान पड़ता था कि महाराजकी सबसे अधिक कृपा मुझपर ही है । आपमें सबसे बड़ी विशेषता तो मुझे यह जान पड़ी कि किसी भी सम्प्रदाय या मतविशेषका व्यक्ति वहाँ अपने ही विचारोंका समर्थन पाता था और सबके साथ समन्वयकी भावना पैदा करके राग-द्वेषसे मुक्त हो जाता था । उनके त्याग, तप और उत्सर्गकी कला साधक और जिज्ञासुओंके लिये उत्साहके स्रोत थे । उनके संसर्गमें आनेसे ही आत्मनिष्ठाके लिये छटपटाहट पैदा हो जाती थी । विद्यार्थियोंमें ब्रह्मचर्यका और ग्रामीणोंमें सादा जीवन एवं मादक वस्तुओंके त्यागका प्रचार करनेमें भी आपको अच्छी सफलता मिली थी । इस प्रकार एक निवृत्तिनिष्ठ संतसे जनताको जिस प्रकारके लाभकी आशा की जा सकती है वह सभी आपसे प्राप्त था ।

कार्यक्रम एवं उत्सवादि

श्रीमहाराजजीके सत्सङ्गका मुझे अनेक बार सुअवसर प्राप्त हुआ । कभी-कभी पूरे सप्ताहभर रहनेका सुयोग हुआ और एक दो बार महीनेभर भी रहा । ब्राह्ममुहूर्तमें तत्त्वविचार, स्नानके

पश्चात् गीताकी कथा, दोपहर पीछे रामायण, सायंकालमें शङ्का-समाधान और रात्रिमें कीर्तनादिका मनोरञ्जक कार्यक्रम रहता था। यह व्यवस्था सभी श्रेणीके साधकोंके लिये अपने-अपने मार्गमें सहायक होती हुई उनकी आध्यात्मिक प्रगतिका सर्वोपरि साधन थी। परन्तु आकर्षणका मुख्य विषय तो महाराजका आत्मीयता का व्यवहार था, जो माता-पिता और सौ सम्बन्धियोंकी यादको भी भुला देता था तथा वियोगके समय रुला देनेमें भी समर्थ था। महाराजका सत्संग मैंने रामघाट, कर्णवास, अनूपशहर, अलीगढ़, अतरौली आदि अनेकों स्थानोंमें किया। उनमें से प्रत्येकका वर्णन पुस्तकका एक-एक अध्याय बन सकता है। इतना अवसर इस स्थानपर कहाँ है। अतः इसके लिये तो कभी अलग ही प्रयत्न करना होगा।

कभी-कभी विभिन्न स्थानोंपर उत्सवरूपमें भी सत्संगोंकी योजना होती थी। ऐसे कुछ प्रसंगोंपर भी मुझे उपस्थित होने का अवसर मिला था। खाँड़ेमें ब्रह्मसत्र हुआ था। उसमें स्वामी श्रीकरपात्रीजी स्वामी निर्मलानन्दजी, श्रद्धेय पंडितस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजी और परमहंस श्रीरामदेवजी आदि कई बड़े-बड़े महात्मा और विद्वान् पधारे थे। एक बार हाथरसके बाहर भी महाराज एक मास ठहरे थे। उस समय वहाँ सत्संगकी गङ्गा बहा दी थी। श्रीहरिबाबाजीके बाँधपर तो होलीके अवसरपर प्रतिवर्ष ही विराट महोत्सव होता था। उस अवसरपर दो-तीन बार मुझे भी जानेका अवसर प्राप्त हुआ था। एक बार कर्णवासमें आपकी सन्निधिमें श्रीजयदयाल गोयन्दका और हनुमानप्रसादजी पोद्दारका सत्संग हुआ था। उस अवसरपर उनके अनेकों सत्सङ्गी वहाँ एकत्रित हुए थे। एकबार रामघाटमें साधनानुष्ठान हुआ। उसमें छः मास तक ब्रह्मचारी रमा-

कान्त और श्रीरामदासजी आदि कुछ प्रमुख साधक विशेष नियम-पूर्वक सम्मिलित हुए थे। गड़ियावली तहसील अतरौली मेरे पूर्वजों-की जन्मभूमि है। वहाँ अपने पूज्य गुरुदेव श्रीअच्युतमुनिजीकी स्मृतिमें मैंने पन्द्रह दिनोंके सत्सङ्ग-समारोहकी योजना की थी। उस समय आपने अपने करकमलोंसे अच्युतसाधनालयका उद्घाटन किया था। इसी प्रकार और भी अनेकों उत्सवोंमें मुझे आपके सत्सङ्गसुखका रसास्वादन करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था।

प्रवचन

अन्तमें श्रीमहाराजके एक सारगर्भित प्रवचनका सूक्ष्मांश देकर मैं पाठकों से क्षमा चाहता हूँ, क्योंकि यहाँ तो समय और स्थान दोनोंहीका अभाव है, नहीं तो वर्षोंको लम्बी कहानो भला दो-चार पृष्ठोंमें कैसे पूरी हो सकती है ?

ठीक स्मरण तो नहीं, किन्तु सम्भवतः रामघाटका ही प्रसङ्ग है, श्रीमहाराजने इस आशयका प्रवचन किया था, जिसका भाव अबतक मेरे हृदयपर अंकित है—"सर्वज्ञता, ईश्वरता और सिद्धि आदि सब वृत्तिजनित ही हैं। संसारकी सत्यता मानकर विश्वासपूर्वक अनुष्ठान करनेसे ही ये प्राप्त होते हैं। आत्मज्ञान तो वृत्तिका प्रकाशक है। वह वृत्तिजनित अनुभवका विषय नहीं है। उसके विषयमें 'है' या 'नहीं', ज्ञान या अज्ञान, बनना या बिगड़ना, प्राप्ति या अप्राप्ति कुछ नहीं कहा जाता। वह विलक्षण अनुभूति स्वसंवेद्य है। उपासक अथवा योगी बाह्य आकृतिसे भी जाना जा सकता है, किन्तु तत्त्ववेत्ताका परिचायक कोई चिह्न नहीं है। साक्षीवृत्ति भी वृत्ति-साक्षीको नहीं जान सकती। वहाँ तो द्वैतका भी पता नहीं है।

माया और मन भी खो जाते हैं। अहन्ता और ममताका बीज नष्ट हो जाता है। यहाँ पर वैराग्य और पराभक्तिसे पूर्ण विशुद्ध आत्मानुभूति अर्थात् स्वात्मनिष्ठा नित्य प्राप्त है। कर्त्तव्य, समाधि और ईश्वरदर्शन आदि सब वृत्तिके खिलौने हैं। ये शून्यरूप तथा मरुमरीचिका, रज्जु-सर्प और आकाश-कुसुमके समान मिथ्या हैं। शरीर, जीव और संसार आदि सभी प्रपञ्च आकाशरूप है।"

उपसंहार

निषेध अभ्यास के लिये यह कैसी स्पष्ट गर्जना है। इसी पर श्रीमहाराजका जोर था। विधिमुखसे वे संसारको आत्माकी चमक तथा आकाशके तिरमिरोंके समान समझनेका उपदेश करते थे। योगके तो विशेषज्ञ थे ही। एक रात्रिको अपनी बाहु मेरे हाथसे स्पर्श करके स्पष्ट दिखा दिया कि प्राणसंयमके द्वारा नितान्त निष्क्रियता और निश्चेष्टता प्राप्त हो सकती है। प्रेमके वे अवतार थे। 'हरि-आशिकका मग न्यारा है' यह उनका प्रिय भजन था। हमें उनके बताये हुए मार्गपर चलकर ही अपनी श्रद्धाञ्जलि उनके पवित्र चरणोंमें अर्पित करनी चाहिये।

ब्राह्मणपुरी, अलीगढ़
१८–५–५४

श्रीसाहिबसिंहजी वैद्य, अलीगढ़

सर्वप्रथम मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शन सेठ पन्नालालजी माहेश्वरी अलीगढ़के बगीचेमें हुए थे। वहाँ असंख्य जनसमाज एकत्रित होता था। उस समय आपका शरीर अत्यन्त गठित, सुडौल और साधारणतया कुछ कृश-सा था। मुझे उनमें एक महान् योगीका भान हुआ। मुझमें योगके संस्कार पहले हीसे थे। मैं एक सद्गुरु की खोजमें था। मेरे हृदयमें श्रीमहाराजजीके प्रति श्रद्धा और आकर्षणका भाव जाग्रत् हुआ। परन्तु उनकी लोक-प्रतिष्ठा और अलौकिक तेज देखकर मेरा चित्त संकुचित हो जाता था। मुझे भय था कि मुझ तुच्छको ये कैसे अपनायेंगे।

मैं जहाँ रहता था उसी स्थानपर श्रीद्वारकाप्रसादजी गोस्वामी रहते थे। प्रसङ्गवश मैंने अपनी इच्छा उनके सम्मुख रखी। उन्होंने विश्वास दिलाया कि यदि तुम्हारी श्रद्धा पूर्ण है तो यह असम्भव है कि श्रीउड़ियाबाबा तुम्हें न अपनायें। बस, मैंने मन-ही-मन बाबा को गुरुरूपसे वरण कर लिया। आप तो कुछ दिनोंमें चले गये। मैं उसके कुछ काल पश्चात् स्वयं ही योगाभ्यास करने लगा। योग-सम्बन्धी कुछ ग्रन्थ भी संग्रह कर लिये।

जब मेरा प्राणायाम कुछ बढ़ने लगा तो मैं श्रीमहाराजजीका पता पूछकर कर्णवास पहुँचा। उन दिनों श्रीमहाराजजी प्रातःकाल ९ बजे कुटियासे बाहर निकलते थे। अवसर पाकर मैंने अपनी योगसम्बन्धिनी उत्कण्ठा आपके समक्ष रखी। उत्तर मिला कि मैं

योग नहीं जानता। आज-कल का समय योगाभ्यासके प्रतिकूल है। सन्ध्योपासन तथा गायत्रीजप करना चाहिये। मैंने योगाभ्यासियों को प्रायः रोगी देखा है। इसमें ब्रह्मचर्यकी बड़ी आवश्यकता है।

मैंने एक सप्ताहका अनशन कर दिया। उस समय कार्तिक मास था। गुरुवारको मेरा अनशन पूरा हुआ। उस दिन श्रीमहाराजजी अपने आसनपर आकर बिना वस्त्र ओढ़े बैठ गये। मैंने रोरी-चावलका तिलक किया, नवीन वस्त्र ओढ़ाया, सामने मिष्टान्न रखा और साष्टांग प्रणाम करके प्रसाद पा लिया। इसके पश्चात् जब भी मैं आपके पास गया मुझे समय मिलता और प्रश्न करनेपर यथोचित उत्तर भी।

पूज्य श्रीमहाराजजीके विषयमें अपने परिकरकी प्रायः ऐसी धारणा सुनी जाती है कि वे भक्ति और ज्ञानका ही उपदेश देते थे, योगका अभ्यास उन्होंने नहीं किया। मेरा अनुभव है कि यह धारणा सर्वथा भ्रममूलक है, वे महान् योगी थे। मैंने अभ्यास-कालमें उनके उपदेशानुसार चलकर मिनटों और घंटोंमें योगाङ्गोंका फल पाया था। हठयोगके उन्हें अनेकों ग्रन्थ उपस्थित थे। उनके किये हुए योगसूत्रोंके अर्थोंमें भी बड़ी विचित्रता रहती थी। मुझे विश्वास है कि उनकी उपदेश की हुई योगप्रक्रियाके समान सरल और प्रत्यक्ष फलदायिनी कोई दूसरी प्रक्रिया अब खोजनेपर भी मिलनी कठिन है। मैंने उनकी देख-रेखमें निरन्तर चार वर्ष अभ्यास किया है। योगका विषय कुछ गोपनीय माना गया है; अतः इतना ही पर्याप्त है कि श्रीमहाराजजी योगसम्बन्धी कठिनसे कठिन ग्रन्थियोंको बात की बातमें सुलझा देते थे। यहाँ गङ्गा किनारे श्रीहीरादासजी एक प्रसिद्ध योगी थे। श्रीमहाराजजी उनसे मिले थे। एकबार कुण्ड-

लिनीजागृतिका प्रसङ्ग चलनेपर आपने कहा था कि मैंने जो विधि बतायी है श्रीहीरादासजीका भी ऐसा ही मत था। इस योगक्रियाको जाननेवालोंकी खोजमें श्रीमहाराजजी बहुत घूमे थे। मुझे एकबार श्वासका रोग हो गया। वह बिना दवाके उनके कथनमात्रसे दूर हो गया था। अभ्यासकालके आरम्भ में मुझे अर्शका रोग था। श्रीमहाराजजीने बताया कि गौके एक छटाँक घृतको गरम करके उसमें एक तोला हल्दीका चूर्ण डालकर दो-तीन दिन पी लेना। तीन दिन सेवन करनेसे ही मेरा यह रोग निर्मूल हो गया। इसके लिये कुछ दिनों अश्विनी मुद्राका अभ्यास करना भी बताया था। यह मुद्रा घेरण्डसंहितामें लिखी है।

मेरे जीवनमें श्रीमहाराजजीके मिलनेसे क्या परिवर्तन हुआ यह बात कैसे लिखूँ। नीचे के दो पद्योंके भावसे ही पाठक समझ लें—

'आपकी अनुकम्पासे नाथ ! बसा मेरा सारा संसार,
कहाँसे लाऊँ अभिनव भेंट, सोचकर हो जाता लाचार।
भरा था प्राणोंमें भरपूर, पुत्रवत् किया आपका प्यार,
करो गुरुदेव इसे स्वीकार, स्वयं ही हो आया साकार॥

अथवा

जो मिला मुझे कुछ जीवनमें तव मूर्त्तिमान गुरुदेव ! सीख।
मेरी झोलीमें कभी-कभी प्रभु रहो डालते प्रेम-भीख॥

श्रीमहाराजजीके संसर्गसे मुझे मनुष्यत्व मिला, बुद्धि मिली, और सांसारिक ज्ञान मिला। यदि मैं ऐसे महान् गुरुदेवको न पाता तो आज मनुष्य कहलानेके भी योग्य न होता। मैं क्या कहूँ ? अपने जीवनफलसे मैं सन्तुष्ट हूँ। श्रीमहाराजजीसे मुझे दुष्प्राप्य वस्तु मिली है। अधिक कहना तो आत्मश्लाघा होगी।

मैंने आरम्भमें तो श्रीमहाराजजीको गुरुरूपमें पाया था; कुछ समय पश्चात् उनमें मेरी निष्ठा पितारूपमें हो गयी और अन्तिम दिनोंमें मैं उन्हें प्रत्यक्ष भगवान्[1] पहचान चुका था। श्रीमहाराजजी

---

१. गुरुदेवको भगवान् समझना केवल भावुकतासे ही सम्बन्धित नहीं है, यह उत्कृष्ट मनकी बोधगम्य् अनुभूति है। साधकको जब शुद्ध बोध होता है तब उसे सिद्धोंकी तथा भगवान्की मानसिक दिव्य झाँकियाँ होती हैं। शुद्ध शिष्य का गुरुदेवको तत्त्वरूपमें पहचानना या पाना शब्दोंसे बतानेकी बात नहीं है। भगवद्रूपताका तात्पर्य यह भी नहीं है कि उनमें अनेकों सिद्धियाँ थीं। ये चमत्कार तो योगियोंमें प्रायः होते ही हैं। श्रीभगवान् तो सम्पूर्ण सिद्धियोंके अधिष्ठान हैं। मुझे जो श्रीमहाराजजीमें साक्षात् भगवद्रूपताका बोध हुआ था उसमें निम्नलिखित प्रसंग भी कारण था—

एकबार मैंने श्रीमहाराजजीसे आत्मबोधके सत्यस्वरूपके विषयमें जिज्ञासा की तो उन्होंने कहा, "शरीरको पृथक् होकर देखो।" उसी समय मुझे शरीर पृथक् और निजत्व पृथक् दीखने लगा। उस स्थितिमें शरीर पृथक् प्रतीत हो रहा था और एक आकाशरूप या केवल ज्ञानमात्र अपनत्व पृथक्। उससे भिन्न और कोई ज्ञान नहीं था, केवल शरीरकी भिन्नताका ही बोध था। वह अवस्था कितने समयतक रही—इसका निश्चय नहीं। वहाँ श्रीमहाराजजीके समक्ष ही हट गयी।

साधनकालकी चमत्कृतियोंका अनुभव कराना भी श्रीमहाराजजीके प्रति भगवद्भावका बोधक हुआ। कुण्डलिनी-जागृति का वर्णन करते हुए प्रायः ग्रन्थ भी अबतक यही कहते हैं कि शक्तिका स्रोत सुषुम्नामें या उसके अन्तर्गत ब्रह्म नाड़ीके भीतर है, जो रीढ़की हड्डीके अन्तर्गत हैं। किन्तु श्रीमहाराजजीने कहा था कि सुषुम्ना नाड़ी उससे मिली हुई, किन्तु अलग है। उसमें उन्होंने चक्रोंका बोध भी कराया था। यह विषय साधारण साधकके लिये उपयोगी नहीं है, अतः यहाँ लिखना अनावश्यक है। यदि श्रीगुरुकृपा हुई तो इस विषयमें एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखनेका विचार है।

के विषयमें मैं शब्दोंद्वारा कुछ कहनेमें असमर्थ हूँ, मेरा हृदय तथा प्राण उनके सद्गुणोंसे उत्फुल्लित और पुलकित है तथा मन उनका संयोग होनेसे अपनेको कृतकृत्य मानता है। यह मेरी भावुकता न समझें, मैं यह सब सत्यके नाते कह रहा हूँ। मुझे शंका है कि ज्ञान-धारावाले व्यक्ति कहीं अपनी अपूर्णतामें ही न डूब जायँ। इससे मेरा यह आशय न समझें कि मैं ज्ञानको ही जीवनका सर्वोपरि फल नहीं समझता। परन्तु यह कहते हुए भी मुझे संकोच नहीं है कि जो साक्षात् ज्ञानमूर्त्तिको नहीं पासके वे ज्ञानसे भी कदाचित् वंचित रह जायँ। शुद्ध गुरुबुद्धि हुए बिना वास्तविक ज्ञानप्राप्तिमें मुझे सन्देह ही है। मैंने भी ज्ञानके लिये ही प्रयत्न किया था। श्रीगुरु-देवके प्रति शिष्यकी भावुकता साधकके लिये साध्यको आत्मसात् करानेमें सहायक होती है।

श्रीमहाराजजी मेरे जन्मस्थान ल्हौसरा बिसावन भी गये थे। यह गाँव अलीगढ़से चार मील दूर खैरवाली सड़कपर है। वहाँ आप दो दिन ठहरे थे। उनका प्रसाद, जो वे मुझे दे गये हैं, प्रिय पुत्री नारायणीदेवी है, जिसने श्रीमहाराजजीके सामने हठपूर्वक, उनके बार-बार समझाने पर भी, आजन्म अविवाहिता रहनेका व्रत लिया था। आज उसकी आयु तीस वर्षके लगभग है। श्रीमहाराजजीके चरणोंकी कृपासे वह बड़े सुन्दर प्रकारसे पूर्ववत् अपने अभ्यासमें तत्पर है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसकी तपश्चर्या सफल है। उसका साधन ही नहीं सम्पूर्ण जीवन ही पूज्य श्रीमहाराजजीके ऊपर निर्भर है।

मुझे स्वप्नकालमें ही नहीं, प्रत्युत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से अब भी श्रीमहाराजजीसे अभिलषित साधन एवं उपाय प्राप्त

होते रहते हैं। मैं उन्हें एक मासमें चार-छः बारतक पाता रहा हूँ। अभी अन्तमें मुझे निर्विकल्प समाधिके स्वरूपमें कुछ शंका थी, उसका समुचित उत्तर मिला है। मैं जब आर्त्तत्राण[1] महाकाव्य के तृतीय सर्गमें श्रीमहाराजजीके बालस्वरूपका वर्णन करते हुए पद्यरचना कर रहा था उसी रातको मुझे ज्योतिर्मयरूपमें उस स्वरूप का दर्शन हुआ। तात्पर्य यह है कि स्वप्नमें मुझे कई बार श्रीमहाराजजीका दर्शन होता रहता है और लौकिक कठिनाई उपस्थित होनेपर उनका स्मरण करनेसे भी सहायता मिलती है।

श्रीमहाराजजीके विषयमें मेरी जो धारणा है वह इस पद्यमें वर्णित है—

'ब्रह्मचारी शास्त्रज्ञ बलिष्ठ पदाति वेदान्ती अभ्रान्त,
तपस्वी तान्त्रिक योगी यती ज्योतिषी पण्डित सिद्ध महान्त।
देखता हूँ पद पदमें पूर्ण किंतु कहते संकोच नितांत,
आपमें धर्म महान्[2] निविष्ट कहूँ क्या मेरे संत प्रशांत॥

जय जय गुरुदेव !

---
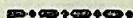
१. पूज्य श्रीमहाराजजीका पूर्वाश्रमका नाम 'आर्त्तत्राण मिश्र' था।

२. श्रीमहाराजजीमें 'महान् धर्म' निविष्ट था। महान् धर्म ईश्वरमें ही होता है।

बहिन श्रीनारायणीदेवी, अलीगढ़

प्रथम दर्शन

बहुत दिनोंकी बात है बाबा अलीगढ़के समीप मेरे गाँव ल्हो-सरामें पधारे थे। वहींपर मैंने पिताजी (श्रीसाहिबसिंहजी वैद्य) के साथ आपका दर्शन किया था। मैं उस समय बालक ही थी। पाँच-छः वर्षकी आयु होगी। पिताजीने महाराजजीका पूजन किया तो मैंने भी माताजीके साथ उनकी पूजा की। बाबा तीन दिन गाँव में ठहरे। उसी समय मेरी दादी का देहान्त हो गया। वे मुझे बहुत प्यार करती थीं। मैं रो-रोकर बारम्बार कहती थी कि उन महा-त्माजीको बुला लाओ, वे दादीको जिला देंगे। उस समय मेरी बुद्धि भोली थी। मैं समझती थी कि बाबा सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न हुए हैं और इसके अन्ततक रहेंगे। ये सब कुछ कर सकते हैं।

कौमार व्रत

इस बार बाबा चले गये और फिर कई वर्षोंबाद अलीगढ़में उनके दर्शन हुए। इस बीच मैं पिताजी से पूछकर राम नामका जप और रामायणका पाठ करने लगी थी। भजनमें मेरा मन लगता था। मेरी आयु प्रायः तेरह सालकी हो गयी थी। विवाह करनेकी मेरी बिल्कुल रुचि नहीं थी। माता-पिता विवाहके लिये आग्रह करते थे। एक दिन पिताजीने जाकर महाराजजीसे भी कहा कि नारायणी विवाह करनेको मना करती है। बाबाने उत्तर दिया,

"हम घरपर ही चलकर उससे पूछेंगे।" बाबा आये और बोले, "बेटा ! तू विवाह क्यों नहीं करती है ?"

मैं—आपने विवाह क्यों नहीं किया ?

बाबा—बड़ी पागल है। महात्मा कहीं विवाह करते हैं ? महात्माओंसे ऐसा नहीं कहते। तू विवाह नहीं करेगी तो खायगी कहाँ से ?

मैं—भिक्षा माँग लूँगी।

बाबाने मुझसे विवाहके लिये बहुत कहा। परन्तु मैं अपनी हठ-पर अटल रही। अन्तमें मेरे माता-पिता भी मान गये। परन्तु इसके दो वर्ष पश्चात् उन्होंने फिर बाबासे पूछा, "नारायणीके विवाहके लिये क्या करें ?" बाबाने कहा, "यदि तुम उसका विवाह कर दोगे तो वह गार्हस्थ्यका भार सहन नहीं कर सकेगी। अब तो तुम्हें उसे अपने घरपर ही रखना पड़ेगा।"

मेरा साधन

श्रीमहाराजजीने मुझसे पूछा, "तू क्या भजन करती है ?" मैंने कहा, "भगवान्‌का नामजप और श्रीरामायणजीका पाठ करती हूँ।" बोले, "जो करती है वही करती रह।" फिर भगवान् श्रीराम का एक चित्रपट-स्वरूप देकर कहा, "इनका ध्यान किया कर और विनयपत्रिकाका यह पद याद कर ले—

'कबहिं दिखाइहौ हरि चरन।
समन सकल कलेस कलिमल, सकल मंगलकरन ।। १ ।।
सरदभव सुन्दर तरुनतर, अरुन बारिज-बरन।
लच्छिलालित ललित करतल, छबि अनूपम धरन ।। २ ।।
गंगजनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपट-बटु बलि छरन।

विप्रतिय, नृग, बधिकके दुख दोष दारुन दरन ॥ ३ ॥
सिद्ध-सुर-मुनिवृन्द-वन्दित, सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं, जन होत तारन-तरन ॥ ४ ॥
कृपासिन्धु सुजान रघुवर, प्रणत-आरति-हरन ।
दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥ ५ ॥'

इसके पश्चात् आपने पूछा, "तू किस भावसे भगवान्‌का पूजन करेगी ?" मैं चुप रह गयी । तब आप बोले—"त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव । त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव" यही तेरा भाव होना चाहिये ।

बाबाकी कुछ बातें

बाबा दूसरोंके आन्तरिक भावको जान लेते थे । जब मैं पिता जीके साथ उनके दर्शनोंको जाती तो जबतक मेरी लौटनेकी इच्छा न होती वे पिताजीको जानेकी आज्ञा नहीं देते थे । जब देख लेते कि इसे रहनेकी विशेष उत्कण्ठा नहीं है तभी जानेकी आज्ञा देते थे । एक बार की बात है कि पिताजी लौटनेको तैयार हो गये, किन्तु मेरी इच्छा बिल्कुल नहीं थी । वे बाबासे टिकट (विदाईका प्रसाद) लेनेके लिये पहुँच गये, परन्तु मैं चुपचाप बैठी रही । तब बाबाने टिकट दिया ही नहीं, कह दिया, "फिर जाना ।"

मैंने बाबामें एक विशेष गुण यह देखा कि वे अपने आदमियोंको अपना करके मानते थे । ब्राह्मण-क्षत्रिय, भंगी-चमार, धनी-निर्धन सभीसे आत्मीयकी तरह बर्ताव करते थे । उनका जितना प्रेम ब्राह्मण-क्षत्रियोंपर था उतना ही अपने भंगी-चमार भक्तोंपर भी था ।

एक बार बाँधपर बाबाने मुझे आज्ञा दी थी कि तू अपने बर्तन

स्वयं ही साफ कर लिया कर और अपने कपड़े भी दूसरोंसे न धुलवाकर स्वयं ही धो लिया कर। वृन्दावनमें उन्होंने मुझे जीवन-पर्यन्त चार काम करते रहनेका आदेश दिया—१. निरन्तर जप, २. ध्यान, ३. आसक्तिका त्याग और ४. स्वाध्याय। मैंने कहा, "और भी कुछ बताइये।" तब आप बोले, "इससे अधिक मैं नहीं जानता।"

एक बार माताजी अकारण ही मुझसे चिढ़ गयीं और बुरा-भला कहने लगीं। तब बाबाने स्वप्नमें मुझसे कहा, "कोई तेरी निन्दा करके तेरे साधनको बिगाड़ नहीं सकता।" इसीप्रकार दूसरे समय स्वप्नमें ही आपने कहा था, "मैं सदैव तेरे पास हूँ।" एक बार मैंने बाबासे पूछा था कि मुझे भगवान् कब मिलेंगे? उन्होंने कहा, "तू जब बुलायेगी तभी मिल जायँगे" उसके कई वर्ष पश्चात् एक दिन जब मैं आसनपर बैठकर ध्यान कर रही थी तब ध्याना-वस्थामें मुझे भगवान्के दर्शन हुए।

बाबाने लीला संवरणके पश्चात् भी मुझे कई बार स्वप्नमें दर्शन दिये हैं। मैं जब कभी दुःखी होती हूँ तब वे अवश्य ही धीरज बँधाते हैं और मेरी रक्षा करते हैं।" मेरे बड़े भाईकी आयु अधिक हो गयी थी, तथापि उनका विवाह नहीं हुआ था। एक रात्रिको दुःखित चित्तसे इसीका चिन्तन करते हुए मैं सो गयी। तब बाबाने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा, "तू दुःखी मत हो, उसका विवाह हो जायगा।" उसके तीसरे ही दिन लड़कीवाले आये और एक महीना के भीतर उनका विवाह हो गया। यह सब कैसे हुआ—यह तो वे ही जानें। मैं तो इसे उनकी कृपा ही मानती हूँ।

श्रीऋषिजी, अलीगढ़

अब से प्रायः तीस वर्ष पूर्व अपने गाँव आँबा मदापुरमें मैंने पहली बार श्रीमहाराजजीके दर्शन किये थे। मैं उनमें भगवद्बुद्धि रखता हूँ। मुझे स्वप्नमें उनकी अनेकों अद्भुत लीलाओंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है तथा जाग्रत्में भी उनकी अनेकों चमत्कारपूर्ण लीलाएँ देखी हैं। उनमेंसे दो-चारका यहाँ वर्णन करता हूँ—

(१)

एक वार श्रीवृन्दावनमें गुरुपूर्णिमा होनेवाली थी। उस समय मेरे पिताजीका स्वास्थ्य खराब था। उनकी सेवामें घरपर मेरे सिवा और कोई नहीं था। गुरुपूर्णिमापर श्रीमहाराजजीके दर्शन करनेकी मेरी इच्छा तो बहुत थी, परन्तु पिताजीकी बीमारीके कारण मैं जा न सका। इसलिये उस दिन अपने घरपर ही उनके पूजनका आयोजन किया। एक छोटी चौकीपर आसन बिछाकर पूजनकी सामग्री लेनेके लिये मैं घरके भीतर गया। वहाँ से लौटकर आया तो देखा कि सरकार आसनपर विराजमान हैं। उनके दर्शन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करके चौकीके समीप ही बैठ गया। किन्तु दो-तीन मिनटके बाद ही श्रीमहाराजजी अन्तर्धान हो गये। मैं उन्हें ढूँढ़ने लगा। सारे गाँवमें और कदमखण्डीमें, जहाँ वे ठहरा करते थे, ढूँढ़ा, परन्तु कहीं भी पता न लगा। अन्तमें यह उनकी महिमा समझकर सन्तोष कर लिया।

(२)

इसी प्रकार एक दूसरी गुरुपूर्णिमा आयी। वह भी वृन्दावनमें

ही मानायी जानेवाली थी। मैं उस समय अलीगढ़ में फुल्लौर साहबके मन्दिरमें ठाकुरजीकी सेवा-पूजा करने लगा था। चतुर्दशीके दिन मैंने सोचा कि ठाकुरजीकी पूजाके लिये कोई ब्राह्मण पुजारी मिल जाय तो मैं गुरुपूजनके लिये कल श्रीवृन्दावन जाऊँगा। परन्तु कोई तैयार न हुआ। आखिर एक मित्रसे कहा और उन्होंने स्वीकार भी कर लिया। परन्तु रात्रिको साढ़े नौ बजे उन्होंने सूचित किया कि किसी आकस्मिक घटनाके कारण कल मेरी ड्यूटी लग गयी है, इसलिये मैं नहीं आ सकूँगा।

अब मैं निराश और खिन्न हो गया कि इस पुण्यपर्वपर मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शन नहीं हो सकेंगे। मैंने निराश होकर रात्रिके दस बजे अपने परिचित फौजके कमाण्डिङ्ग ऑफीसर श्रीचक्रवर्तीजीको मथुरा फोन कराया कि फौजमेंसे किसी ब्राह्मण पुजारीको भेज दें। उन्होंने उत्तर दिया कि यहाँ ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है। कल मैं अपनी जीपकार भेज दूँगा। वह ठाकुरजीकी पूजा के उपरान्त तुम्हें वृन्दावन पहुँचा देगी और वहाँ पूजन करके प्रसाद पा लेनेके बाद फिर अलीगढ़ पहुँचा आवेगी। मैंने इसे श्रीमहाराजजीकी कृपा ही माना, क्योंकि कहाँ मैं एक छोटा-सा व्यक्ति और कहाँ वह इतना बड़ा अफसर।

दूसरे दिन एक मेजर कार लेकर आया और मुझे बिठाकर ले गया। वे दयालु अफसर भी मथुरासे श्रीमहाराजजीके लिये फल-फूल लेकर चले। ठीक बारह बजे हम लोग पहुँचे। अबतक अलीगढ़के भक्तोंने कई बार पूजनका प्रयत्न किया था, परन्तु श्रीमहाराजजीने उन्हें रोक दिया था। हमारे पहुँचते ही तुरन्त अलीगढ़की पार्टीको पूजनके लिये आज्ञा हुई। हम सबने मिलकर सानन्द पूजन

किया और प्रसाद लिया। श्रीमहाराजजीने फौजी अफसरपर भी कृपादृष्टि की। चार बजेतक हम वहीं रहे। उस आनन्दको छोड़कर मेरी इच्छा आनेकी नहीं थी, परन्तु श्रीमहाराजजीने हमारे अफसरको बुलाकर कहा, "ऋषिको जबरदस्ती जीपमें बिठाकर अलीगढ़ पहुँचाओ।" और मुझसे बोले, "खबरदार, ठाकुरजीकी सेवा-पूजा कभी न छोड़ना।" ऐसी थी उनकी विचित्र लीला।

(३)

एकबार श्रीमहाराजजी कर्णवासमें विराज रहे थे। मैं श्रीठाकुरजीकी सेवा-पूजाका समुचित प्रबन्ध कर अलीगढ़के सुप्रसिद्ध वकील बाबू चुन्नीलालके साथ दर्शनोंके लिये गया। वकील साहबका नियम था कि वे जब दर्शनोंको जाते थे कमसे कम दो रुपये के पेड़े भेट के लिये अवश्य ले जाते थे। आश्विनका महीना और एकादशी तिथि थी। हाथरस और खुर्जाके अनेकों सेठ दर्शनोंके लिये उपस्थित थे। समष्टि पूजन हो रहा था। लोग अपने साथ बढ़िया मिष्टान्न लाये थे। उसी अवसरपर फलों का एक पार्सल भी खोला गया, जो सेठ बाबूलाल जटियाने मँगवाया था। ऐसे अवसरपर मैं ही भला क्यों किसीसे पीछे रहता। अपने अंगोछेमें दो पैसेकी सैंदें बाधे हुए श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ डटा हुआ था। और आश्चर्य यह कि उन कृपासिन्धुकी कृपादृष्टिने विजय भी मेरी ही करायी। उस भीड़में श्रीमहाराजजीकी दृष्टि एकाएक मुझ गरीबपर पड़ी और वे तुरन्त बोल उठे, "ऋषि! तू मेरे लिये क्या लाया है?" मैं वहाँ बड़े-बड़े फलोंके टोकरे और अँगूर तया पेड़ोंसे भरे थाल देखकर सकपका गया और सैंदें खोलनेकी मेरी हिम्मत न हुई। उन्होंने स्वयं मेरा अँगोछा ले लिया और खोलीं। उनमेंसे दो-दो सैंदें प्रत्येक महात्माको

बाँटीं और शेष दो अपनी चादरके खूँटमें बांधते हुए बोले, "ये दो मेरे लिये हैं ।"

खुरजावाले सेठ बाबूलालजीने कहा, "महाराजजी ! कृपा करके इन फलों को भी स्वीकार कीजिये ।" श्रीमहाराजजी मुसकराते हुए बोले, "भैया ! हमें बढ़िया फल कहाँ मिलते हैं ?" तब सेठजीकी प्रार्थनापर आपने थालसे कुछ अँगूर उठाये और महात्माओंको बाँट दिये ।

ऐसी-ऐसी उनकी अनेकों लीलाएँ हैं । उनका कहाँतक वर्णन किया जाय ? स्वप्न के प्रसङ्ग तो अकथनीय हैं । कई बार मुझे ऐसे स्वप्न हुए जिनसे मालूम हो जाता था कि इस समय श्रीमहाराजजी कहाँ हैं । निःसन्देह वे स्वप्न उनकी कृपासे ही होते थे । उनकी अब भी अपार कृपा है ।
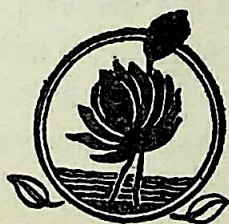
श्रीमिश्रीलालजी मुंसरिम, अलीगढ़

सबसे पहले मैंने अलीगढ़में ही बाबा का दर्शन किया था। प्रथम दर्शनमें ही मुझे अनुभव हुआ कि बाबामें सन्तोंके अनेक गुण विद्यमान हैं। अतः विश्वास हुआ कि इनका आश्रय ग्रहण करनेसे अवश्य ही सब कामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं।

एक बार मैंने बाबासे पूछा कि मैं विभिन्न मन्दिरोंमें भिन्न-भिन्न देवताओंके दर्शन करनेके लिये जाता हूँ। अतः स्वभाविक ही मेरे मनमें यह प्रश्न उठता है कि मैं किस-किसकी पूजा करूँ ? भगवान् श्रीकृष्णकी, श्रीरामकी अथवा महादेवजीकी ? इसपर बाबाने पूछा, "तुम यह बताओ, तुम्हारे इष्टदेव कौन हैं ?" मैंने कहा, "मेरे इष्ट तो श्रीराधाकृष्ण हैं।" तब बोले, "तुम श्रीराधा-कृष्णकी ही पूजा किया करो तथा अन्य सभी देवताओंके रूपमें उन्हींको समझो। अर्थात् वे ही श्रीराम हैं और वे ही शिवजी भी हैं।" इस उत्तर से मेरा समाधान हो गया।

बाबाकी एक विशेष बात मुझे याद है। जब उनके पास कोई बीमार या दुःखी मनुष्य पहुँचता तो वे कहते, "मुझे तो ऐसा मनुष्य ही अच्छा लगता है, क्योंकि अब इसके दिन फिरे हैं, अब यह भजन करेगा।" वे अपने आचरणद्वारा हम सबको यह उपदेश देते थे कि जैसे मैं समस्त कर्मोंको करते हुए भी सदैव अपने आत्म-स्वरूपमें स्थित रहता हूँ उसी प्रकार तुम लोगोंको भी समस्त कार्य करते हुए बाहर-भीतर सबको आत्मस्वरूप देखने से कभी किसी के प्रति घृणा नहीं होगी।

❀❀❀

भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा

परम पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय अनन्तश्रीविभूषित श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी पूर्णानन्दजी तीर्थ उपनाम श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज बड़े ही उच्च कोटिके संत थे। वे विश्वकी महान् विभूति और भक्ति, ज्ञान, योग और वैराग्यकी साक्षात् दिव्य मूर्ति थे। ऐसा महापुरुष इस कलिकालमें होना बड़ा ही कठिन है। मुझे श्रीभगवान्की कृपासे बीस वर्षतक निरन्तर आपके सत्संगका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपके साथ मैंने सैकड़ों मील पैदल यात्रा की थी और अनेकों बार खूब खुलकर बात करनेका भी अवसर मिला था। कल्याण, स्वदेश, सत्संग आदि धार्मिक पत्रोंमें आपके सदुपदेश भी मैं लिखकर भेजता था। मुझे आपको अपने स्थान पिलखुवा ले जानेका और आपकी चरणाजसे अपना घर पवित्र करनेका भी सुअवसर प्राप्त हुआ था। बाबा जब मुझे अपना पुत्र समझकर मेरे सिरपर हाथ फेरते और वात्सल्यपूर्ण दृष्टिसे देखकर प्यार करते थे तो मेरा हृदय गद्गद हो जाता था। उस समय का अद्भुत आनन्द स्मरण करके आज भी मुझे रोमाञ्च हो जाता है। भारतमें कथा, कीर्तन, सत्संग और सदुपदेशादिके द्वारा सनातनधर्मका जितना प्रचार बाबाके द्वारा हुआ वैसा किसी औरके द्वारा सुननेमें नहीं आया। आपके भीतर एक अद्भुत शक्ति थी। आपके पास यदि कोई नास्तिक भी आ जाता तो वह भी आपके दर्शन और उपदेशोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। हमने अनेकों नास्तिक और आर्यसमाजियोंको भी देखा कि आपके श्री-

चरणोंका दर्शन करनेके पश्चात् वे आस्तिक और मूर्त्तिपूजक हो गये। यही नहीं, अनेकों व्यभिचारी सदाचारी हो गये, धर्मद्रोही धर्मरक्षक बन गये और शराबी-कवाबी इन दुर्व्यसनोंसे छूटकर श्रीकृष्णप्रेम का प्याला पीकर मतवाले हो गये। इस प्रकार आपने हजारों जीवोंको घोर नरकसे बचाकर उनका उद्धार कर दिया। ऐसी अनेकों घटनाएँ हमने अपनी आँखोंसे देखी थीं। अब हम बाबाके जीवनकी कुछ आँखों देखी सत्य घटनाएँ नीचे देते हैं।

मन्त्रजपद्वारा नरकसे उद्धार

एकबार पूज्यपाद श्रीमहाराजजी पतितपावनी श्रीगङ्गाजीके तटपर श्रीगढ़मुक्तेश्वरमें पधारे। मुझे जब मालूम हुआ तो मैं आपके दर्शनार्थ पिलखुवासे वहाँ गया। मैंने आपसे पिलखुवा पधारने और अपने परमपवित्र श्रीचरणोंसे मेरा घर पवित्र करनेके लिये प्रार्थना की। तब आपने आज्ञाकी कि अच्छा तुम पिलखुवा जाओ, मैं पैदल चलकर दो-चार दिनोंमें वहाँ पहुँचूँगा। मैं घर लौट आया। आप पैदल चलकर पिलखुवाके पास सिकेड़ा नामक गाँवमें आकर ठहरे। जब मुझे यह समाचार मिला तो मैं सिकेड़ा जाकर आपको पिलखुवा ले आया।

उन दिनों श्रीगान्धीजी द्वारा प्रचारित शास्त्रविरुद्ध अछूतोद्धार की बहुत धूम थी। अनेकों उच्च वर्णके लोग चमार-भंगियोंके हाथसे खाकर धर्मभ्रष्ट हो रहे थे और लाखों वर्षोंसे चली आयी मन्दिरोंकी मर्यादाको उनमें अस्पृश्य लोगोंको घुसाकर नष्ट किया जा रहा था। बाबाके पिलखुवा पधारनेपर सभी प्रकारके दर्शनार्थी आते थे। उनमें बहुत-से कांग्रेसी भी होते थे। एक दिन एक ग्रामीण

जाट भी आपके दर्शनोंके लिये आया। वह इससे पहले अछूतोंके हाथ का खा-पी चुका था। वह जब चरणस्पर्श करनेके लिये आगे बढ़ा तो बाबाने उसे रोकते हुए कहा, "नहीं, नहीं, वहीं बैठ, हमें मत छू।"

वह वहीं बैठ गया। परन्तु बाबाका ऐसा व्यवहार देखकर सब चकित रह गये। कोई न समझ सका कि बात क्या है। परन्तु आप तो अन्तर्यामी थे, घट-घटकी जानते थे। थोड़ी देर पश्चात् पूछा—'अरे ! क्यों तू काँग्रेसी है ?"

जाट—हाँ, महाराज !

बाबा—क्या तू चमार-भंगियोंके हाथका खा-पी चुका है !

जाट—हाँ, महाराज !

बाबा—तो तू हमें मत छू, तू तो भ्रष्ट हो गया।

जाट—महाराजजी ! अछूतोद्धार कैसा है ?

बाबा—बावले ! यह अछूतोद्धार नहीं, घोर नरकका मार्ग है। यह सब घोर पाप है, शास्त्रोंके सर्वथा विरुद्ध है।

जाट—महाराजजी ! मैंने इन काँग्रेसियोंके चक्करमें फँसकर चमार-भंगियोंके हाथका खा-पी लिया है।

बाबा—तुमने बहुत बुरा किया, अब तुम नरकमें जाओगे।

जाट—अब बाबा ! नरकसे कैसे बचें ?

बाबा—प्रायश्चित्त करो और प्रतिज्ञा करो कि अब किसीके भी बहकावे में आकर ऐसा शास्त्रविरुद्ध काम नहीं करोगे।

जाट—महाराजजी ! अब मैं ऐसा काम कभी नहीं करूँगा।

बाबा—हम तुम्हें एक मन्त्र बतलायेंगे, तुम उसका जाप करना। याद रखो परलोकमें ये गान्धी आदि कोई तुम्हारा साथ नहीं देंगे, केवल तुम्हारा धर्म ही तुम्हारे साथ रहेगा।

फिर पूज्य बाबाने उसे एकान्तमें ले जाकर मन्त्र बता दिया। जाट अपने घर गया और बाबाकी आज्ञानुसार मन्त्र जपने लगा। तीन-चार दिन जप करनेके पश्चात् एक दिन वह आधी रातके समय भागा हुआ बाबाके पास आया। बाबा उसके हल्ला-गुल्लासे जग गये। तब उसने कहा, "महाराजजी ! मैंने आपकी बतलायी विधिके अनुसार जप किया। अभी और शेष भी है, सो मैं पूरा करूँगा। परन्तु आज मुझे बड़ा भयानक दृश्य दिखायी दिया है। मैंने प्रत्यक्ष देखा कि बड़े-बड़े भयानक यमदूत खड़े हैं और वहाँ मैं तथा आप भी हैं। पर वे यमदूत मुझे न मारकर बड़े जोरसे आपको मार रहे हैं और कहते हैं कि तुमने हमारे एक आदमीको, जिसे हम नरकमें ले जाते, मन्त्र बताकर बहका लिया है।"

तब बाबाने मुसकाकर कहा, "जा, तू घोर नरकसे बच गया। परन्तु अभी इस मन्त्रको छोड़ना मत। इसमें बड़ी अद्भुत शक्ति है। और भूलकर भी कभी इन पापियोंके चक्करमें मत फँसना; नहीं तो फिर नरक का मार्ग तैयार है।"

जाट बोला, "बाबा ! आपने मुझे नरकसे बचा लिया, मेरे साथ बड़ा उपकार किया, मैं जन्मभर आपको नहीं भूलूँगा।"

यह मेरी आँखों देखी घटना है। बाबाने इसी प्रकार न जाने कितने जीवोंका नरकसे त्राण किया है।

मानापमानमें समान

बाबा सर्वदा पैदल ही यात्रा करते थे। वयोवृद्ध होते हुए भी उनके लिये दिनमें २०-२५ मील चल लेना सामान्य-सी बात थी। एकबार जब वे ऋषिकेशसे पैदल वृन्दावनके लिये चले तब मैंने भी आपके साथ चलनेका निश्चय किया। रास्तेमें आपकी अनेकों अद्‌भुत लीलाएँ देखीं और कथा, कीर्तन एवं सत्संगका दिव्य सुख लूटा। अद्‌भुत त्यागमय जीवन था वह। पत्तोंपर खाना और वृक्षोंके तले सोना!

एक दिनकी बात है। हम सब बारह मील चलकर आये और एक गाँवके समीप वृक्षोंकी छायामें ठहर गये। सबने बैठकर थकान उतारी और फिर नहरमें स्नानकर अपनी-अपनी पाठ-पूजादिमें लग गये। पूज्य बाबाने नित्यकी भाँति श्रीमद्भागवद्‌गीताकी कथा कही और फिर सब भगवन्नामकीर्तनमें विभोर हो गये। बाबाने कहा "आज हम समीपके गाँवमें माधूकरीके लिये जायँगे, तुम सब यहीं बैठकर भजन करो।" मुझे यह सुनकर बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने सोचा, 'भारतके जिन संतशिरोमणिके लिये अनेकों सेठ-साहूकार तरह-तरहके व्यञ्जनोंसे सुसज्जित थाल लिये खड़े रहते हैं, वे गाँवमें घर-घर जाकर कैसे भिक्षा माँगेंगे? यह तो आज देखना चाहिये।' बस, बाबा हाथमें एक अँगौछा लेकर चले तो मैं और दो-चार अन्य व्यक्ति पीछे हो लिये। बाबाने सबको फटकारा और कहा, "हमारे साथ कोई नहीं चलेगा, हम अकेले ही जायँगे। तुम सब यहीं रहो।" इसपर और सब तो लौट आये, किन्तु मैं एक बार कुछ पीछे फिरकर पुनः धीरे-धीरे उधर ही चलने लगा। जब

महाराजजी घूमकर देखते तो मैं वृक्षोंको ओटमें हो जाता । परन्तु गाँवमें घुसते समय आपने मुझे देख लिया । तब बोले, "बेटा रामशरण ! तू आ गया ? अच्छा, तू मेरे साथ रह ।" अब मैं निश्चिन्त हो गया । इसके पश्चात् बाबाने एक गाँववालेसे पूछा, "यह सामनेवाला घर किसका है ?" उसने कहा, 'ब्राह्मणोंका ।" बाबाने वहाँ जाकर 'नारायण हरि' आवाज लगायी । इतनेमें भीतर से घरका मालिक एक बूढ़ा ब्राह्मण निकला और मूढ़ेपर आकर बैठ गया । उसने बाबासे पूछा, "अरे ! क्या है ? क्यों खड़ा है ?"

बाबा—भिक्षा लेंगे, रोटी लेनी है ।

ब्राह्मण—कहाँसे आ रहा है ?

बाबा—हरिद्वारसे आ रहा हूँ ।

ब्राह्मण—जायगा कहाँ ?

बाबा—श्रीवृन्दावन जाना है ।

ब्राह्मण—कुछ पढ़ा-लिखा भी है या नहीं ।

बाबा—न, कुछ नहीं ।

ब्राह्मण—कुछ भी नहीं पढ़ा तो तू साधु क्यों हो गया । क्या तुझसे कमाकर नहीं खाया जाता ? और तेरे साथ यह गृहस्थका लड़का कैसे है ?

बाबा—यह मेरे साथ है ।

ब्राह्मणने मेरी ओर मुँह करके पूछा, "क्यों रे ! तेरा क्या नाम है और तू कहाँ रहता है ?

बाबा—इसका नाम रामशरण है, यह पिलखुवा रहता है ।

ब्राह्मण—अरे ! क्या इसे बहँका लाया है ? इसे साधु बनायेगा । आप तो माँगता डोलता है, क्या इसे भी माँगना सिखायेगा।

बाबा—नहीं माँगता तो मैं ही हूँ, यह नहीं माँगता । मैं तो साधु हूँ ।

ब्राह्मण—अरे ! जो साधु होते हैं वे क्या माँगते हैं ? उन्हें क्या तेरी तरह घर-घर मारे-मारे फिरना होता है ? देख, कर्णवास में एक बड़े भारी सिद्ध महात्मा उड़िया बाबाजी हैं । उनके पास हजारों लोग स्वयं ही थालपर थाल लेकर पहुँच जाते हैं । तेरी तरह उन्हें भटकना थोड़ा ही पड़ता है । तू साधु बनाकर इस लड़केको भी बिगाड़ेगा ।

बाबा—तुमने उड़ियाबाबा देखा है ?

ब्राह्मण—हमने नहीं देखा तो क्या, और लाखों ने देखा है । बड़ा पहुँचा हुआ सिद्ध महात्मा है । हमारे भला ऐसे भाग्य कहाँ हैं जो श्रीउड़िया बाबाजीके दर्शन हों । अच्छा, बैठ जा, रोटी लाते हैं ।

ब्राह्मण इतनी देर ऊपर बैठा बातें बनाता रहा और बाबा नीचे खड़े रहे । अब उसके कहनेसे नीचे ही बैठ गये । मैं अद्भुत लीलाको देखकर हँस रहा था और उस ब्राह्मणसे कहना ही चाहता था कि ये उड़िया बाबाजी ही हैं, कि बाबा समझ गये । उन्होंने मुझे संकेतसे मना कर दिया । ब्राह्मणने इतनी भली-बुरी सुनानेके पश्चात् दो रोटियाँ लाकर दीं । बाबा उन्हें लेकर और घरोंमें भी गये और फिर हम दोनों गाँवसे लौट आये ।

सायंकाल हुआ । अब उस ब्राह्मणका भाग्योदय हुआ । पूज्य बाबा बोले, "बेटा रामशरण ! चल, उस ब्राह्मणसे फिर मिल

आवें। बस, "मैं और बाबा फिर गाँवमें पहुँचे। वह ब्राह्मण सामने आया तो बोला, "अरे बाबा ! अभी तू गया नहीं ?

बाबा—नहीं तो।

ब्राह्मण—अभी और माँगकर इकट्ठा करेगा ?

बाबा—नहीं इकट्ठा क्यों करेंगे ?

ब्राह्मण—अब क्यों आया है ? रोटी अब नहीं है।

बाबा—तुम्हें उड़िया बाबाका दर्शन करानेके लिये आया हूँ।

ब्राह्मण—तू करावेगा, तेरे हाथमें है ?

मैंने झटसे उसके पास जाकर कहा, "महाराजजी ! यही तो पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी हैं, आप किस भूलमें हैं ?

बस, इतना कहना था कि फिर क्या था। जहाँ पहले ब्राह्मण ऊपर बैठा था और बाबा नीचे, वहाँ अब सारा गाँव नीचे बैठा था और बाबा ऊपर विराजमान थे। ब्राह्मणने हुक्केको एक ओर फेंका और बाबाके श्रीचरणोंमें पड़ गया। घरवालोंके नाम ले-लेकर बड़ी जोरसे आवाज देने लगा, "अरे दौड़ो, दौड़ो, हमारे बड़े भाग्य जो उड़िया बाबाजी हमारे घरपर आये।" बातकी बातमें सारा गाँव इकट्ठा हो गया। तख्तोंपर आसन लगाये गये और बाबाको उसपर बिठाकर सबलोग घेरकर नीचे बैठ गये। ब्राह्मण हाथ जोड़कर बार-बार क्षमा माँगने लगा और बोला, "धन्य महाराज ! बड़ी कृपा की, हमारे बड़े पुण्य उदय हुए। आजकी रात तो यहीं विश्राम करो।" गाँवमें मुनादी करा दी गयी। रात्रिको सब दूध लेकर आये और संकीर्तनमें सहयोग दिया।

रात्रिको सब वहीं रहे। प्रातःकाल होते ही बाबा चुपचाप

उठकर चल दिये, नहीं तो गाँववाले आने नहीं देते। बाबाकी यह अद्‌भुतलीला देखकर उस दिन बड़ा कौतूहल रहा। उनके नाम का जादू आज प्रत्यक्ष देखा। इस घटनासे हमने तो यही शिक्षा ली कि गृहस्थको चाहिये अपने द्वारपर आये हुए किसी भी साधुका तिरस्कार न करे। पता नहीं इसी प्रकार कब शुकदेव, वामदेव, दत्तात्रेय आदि कोई सिद्ध संत, जो सदा अमर हैं, भिक्षुकरूपमें चले आवें और हमसे उनका अपमान हो जाय।

सन्तसेवी बालक

एक अद्‌भुत घटना पूज्यपाद बाबाने हमें स्वयं अपने श्रीमुखसे सुनायी थी। वह हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

गर्मीके दिन थे और मध्याह्नका समय, पूज्य श्रीबाबा हाथमें काष्ठका कमण्डलु लिये ब्रह्मानन्दकी मस्तीमें झूमते जिला बदायूँके किसी गाँवमें होकर जा रहे थे। उनका विचार था आगेके गाँवमें जाकर विश्राम करनेका। अकस्मात् पीछे से 'बाबा-बाबा'की आवाज सुनायी दी। पर आपने उसपर कोई ध्यान न दिया, आगे बढ़े चले गये। कुछ देर पश्चात् आवाज बन्द हो गयी और पीछेसे आकर किसीने आपका हाथ पकड़ लिया। आपने मुड़कर देखा तो हाथमें डंडा लिये ग्वालेका एक लड़का दिखायी दिया। वह बाबाके श्रीचरणोंमें गिर गया और हाथ जोड़कर बड़े विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगा, "बाबा! यहाँ पास ही मेरी झोपड़ी है, कृपा करके वहाँ पधारो। थोड़ी देर आराम करो और स्नान तथा भोजन करके दासको कृतार्थ करो। जब दो पहर ढल जाय तब चले जाना।" बाबा बालकका ऐसा भाव देखकर चकित हो गये और बोले,

"भाई ! हमें आगे जाना है, अब तो जाने दे, फिर कभी देखा जायगा।"

बालक—बाबा ! क्या मुझ पतितपर कृपा नहीं होगी ?

बाबा—बच्चे ! क्या तू कुछ पढ़ा है ?

बालक—नहीं, साधुसेवा करना और राम नाम लेना–बस, यही पढ़ा हूँ। और मैं कुछ नहीं जानता।

बाबा—अच्छा, अब हमें जाना है, देर हो रही है।

बालक—मैं आपको छोड़ूँगा नहीं, जब तक आप मेरे साथ चलकर भोजन नहीं करेंगे।

बाबा—अच्छा, तू नहीं मानता तो चल।

बस, बालकने बाबाके चरण छोड़कर हाथ पकड़ लिया और बाबा उसके प्रेमके बन्दी बने उसके पीछे-पीछे चल दिये। प्रेमके बन्धनमें तो स्वयं भगवान् भी बँध जाते हैं, फिर अन्योंकी तो बात ही क्या है ? वह बाबाका हाथ पकड़े उन्हें अपनी झोपड़ी पर ले गया और उन्हें वृक्षोंके नीचे हवामें बिठा दिया। फिर एक डोल पानी भरकर ले आया और बोला, "बाबा ! आप स्नान करो, मैं अभी गाँवसे रोटी लाता हूँ। आप कहीं चले मत जाना। आप संत हैं, "आपको मेरी सौगन्ध है।" तब बाबाने कहाँ, "जा, तू विश्वास रख हम कहीं नहीं जायँगे।"

बालक थोड़ी दूर चला और फिर लौटकर बोला, "बाबा ! धोखा मत देना, चले मत जाना, रोटी लाता हूँ, खाकर जाना।"

बाबा—जाओ, जाओ, हम नहीं जायँगे ।

बालक दौड़ा-दौड़ा अपने घर पहुँचा और अपने माता-पितासे गिड़गिड़ाकर बोला, "माँ ! आज तो हमारी झोपड़ीपर एक बाबाजी कई दिनोंका भूखा-प्यासा आया है, उसे खानेके लिये रोटी दे दे, बड़ा पुण्य होगा ।"

माँ—चल भाग यहाँसे, रोज साधुओंके लिये रोटी ले जाता है, किसीको एक दिनका भूखा बताता है और किसी को दो दिनका । हम नहीं देंगे, भाग जा ।

बालक माँके पैरोंमें पड़ गया और बोला, "माँ ! आज तो दे ही दे, फिर भले ही मत देना । यह बाबा बहुत दिनों का भूखा है । इसे कई दिनोंसे रोटी नहीं मिली ।"

बालकके इस प्रकार बहुत अनुनय-विनय करनेपर माँने मोटी-मोटी रोटी बनाकर उसे दे दीं । वह रोटियाँ और बेलाभरी छाछ लेकर बालक बाबाके पास आया । उसके साथ ही उसका पिता भी झोपड़ीपर पहुँच गया । उसने बाबासे पूछा, "क्यों महाराज ! आप कितने दिनोंके भूखे हैं ?"

बाबा—मैंने तो रात ही एक गाँवमें रोटी खायी थी, मैं तो भूखा नहीं हूँ ।

पिता—आपने इस बालकसे कहा था कि हम कई दिन के भूखे हैं ?

बाबा—नहीं, मैं तो चला जा रहा था, यह मुझे जबर-दस्ती पकड़ लाया और बोला कि रोटी खाये बिना नहीं जाने दूँगा ।

पिता—इसने मुझसे झूठ बोला और कहा कि बाबा बहुत दिनोंका भूखा है।

ऐसा कहकर उसने बालकके मुँहपर ऐसा चपत लगाया कि वह लाल हो गया और कहा कि तू नित्य झूठ बोलता है, भला इस तरह झूठ बोलकर साधुओंको रोटी खिलाना कोई अच्छी बात है ?

बाबा—क्यों बच्चे ! तू झूठ क्यों बोलता है ?

बालक—बाबा ! बिना झूठ बोले ये मुझे रोटी देते नहीं, तब मैं क्या करूँ ?

बाबा—क्या झूठ बोलना ठीक है ?

बालक—झूठ बोलनेसे क्या होता है बाबा !

बाबा—पाप होता है।

बालक—फिर उससे क्या होता है !

बाबा—नरकमें जाना पड़ता है।

बालक—नरकमें क्या होता है ?

बाबा—बड़ी घोर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।

बालक—बाबा ! यदि नरकमें जाकर और नारकीय यातनाएँ भोगकर भी सन्तसेवा हो सके तो फिर क्या कहना है ? मैं झूठ बोलनेके कारण भले ही नरकमें जाऊँ पर मुझसे सन्तसेवा कभी न छूटे—यही मेरी अभिलाषा है। मैं अपने लिये तो झूठ बोलता नहीं हूँ, सन्तसेवाके लिये बोलता हूँ। सो, मैं नरक जानेके लिये तैयार

हूँ, किन्तु संतसेवा नहीं छोड़ सकता । यदि नरकके भयसे संतसेवा छूट जाय तो वह सेवा ही क्या हुई ?

बालककी यह अद्भुत बात सुनकर बाबा चकित हो गये, दङ्ग रह गये और आश्चर्यमें डूब गये । ऐसा संतसेवी बालक आपने देखा तो क्या सुना भी नहीं था । यह आपके जीवनका पहला ही अनुभव था । पिटने और नरक जानेकी भी परवाह न करके जो संतसेवामें संलग्न था ऐसा अद्भुत बालक देखकर आप गद्गद हो गये । उसके पिताने बताया कि महाराज, यह आज नहीं, बचपनसे ही जिस साधुको देखता है उसे हाथ जोड़ता है, अनुनय-विनय करके बुला लाता है और झूँठी-सच्ची बातें बनाकर माँसे रोटी ला उसे भोजन कराता है । इसे अपने खाने-पीनेकी कोई चिन्ता नहीं है, बस, केवल सन्तसेवाका शौक है ।

बाबा—भैया ! यह तेरा पुत्र तो पूर्वजन्मका कोई योगी है । तेरा बड़ा भाग्य है जो तुझे ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ । ऐसा बालक पाकर तेरी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जायेंगी । तुम इसे अब कभी भूलकर भी मत मारना और न इसकी साधुसेवामें ही विघ्न डालना ।

बस, अब बालकने बाबाको भिक्षा करायी और आप उससे बिदा होकर चल दिये ।

बालयोगी

ऐसी ही एक और घटना हमने पूज्य बाबाके मुखसे सुनी थी । यह बात उड़ीसा प्रान्तकी थी । बाबा एक घरके पास होकर निकले तो पीछेसे किसीने आपका वस्त्र पकड़ लिया । आपने मुड़कर देखा

तो तीन-चार वर्षका एक बालक था। उसने अपने मुँह और हाथोंसे आपका वस्त्र पकड़ा हुआ था। बाबाने छुड़ानेका प्रयत्न किया, किन्तु वह कोई सामान्य शिशु तो था नहीं जो छोड़ देता। वह बाबाको अपनी ओर खींच रहा था। अन्तमें बालस्वभाव बाबा भी उसके साथ हो लिये। वह घरके भीतर ले जाकर अपनी माँसे बोला, "माँ! पू, माँ! पू," बाबा उसका कोई आशय नहीं समझ सके। तब उसकी माँने कहा, "महाराज! यह बालक किसी भी भँगवा वस्त्रधारी साधुको देखता है तो उसे पकड़कर ले आता है और जबतक उसे कुछ खिला-पिला नहीं लेता तबतक जाने नहीं देता। यह 'माँ! पू, माँ! पू,' कहकर उसे पूड़ी बनानेके लिये कह रहा है।"

बस, माँने पूड़ियाँ बनायीं और बालकने बाबाको भिक्षा कराकर विदा किया। चलते समय बाबाने कहा, "तुम इस बालककी खूब सेवा करना। यह कोई योगी ही तुम्हारे घरमें जन्मा है, तुम्हारे बड़े भाग्य हैं।"

अन्नपूर्णाकी सिद्धि

पूज्य बाबाके साथ जब मैं ऋषिकेशसे वृन्दावनकी यात्रामें आ रहा था तो मार्गमें कस्बा बक्सर आया। तब बाबाने कहा कि यहाँसे स्याना होकर चलेंगे। स्यानेसे तीन-चार कोसकी दूरीपर बुगरासी है। वहाँ मेरी बहिन पार्वती विवाही थी। अतः मैंने बाबासे हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि यदि आज्ञा हो तो मैं मोटर-द्वारा बुगरासी जाकर पार्वती को स्याना ले आऊँ। आपने मुझे आज्ञा दे दी। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं मोटरद्वारा

स्याना जाकर वहाँसे बुगरासी आया। पार्वतीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। रात-भर तरह-तरहके पकवान बनते रहे और सबेरे सब सामान बैलगाड़ीमें रखकर हम स्याना आये। हमारे साथ बुगरासी के और भी कई आदमी बाबाके दर्शनार्थ चले आये। बाबा बागमें ठहरे हुए थे। भोजनका समय हुआ तो हमारे छक्के छूट गये। हमने तो केवल उतने ही लोगोंके लिये भोजन बनवाया था जितने बाबाके साथ थे। परन्तु यहाँ तो आस-पासके भी बहुत भक्त एकत्रित हो गये थे। हमें चिन्ता हुई कि अब हमारी सब इज्जत-आबरू मिट्टीमें मिल जायगी और कई लोग भूखे रह जायेंगे। इस प्रकार हम तो संकोचसे सकपकाये हुए थे, किन्तु बाबाने सभीको भोजन करनेके लिये बिठा दिया। आश्चर्य तो यह हुआ कि सबके भोजन कर लेनेपर भी कुछ सामान बच रहा। इस प्रकारकी अन्नपूर्णा-सिद्धिकी बाबाके बिषयमें और भी कई घटनाएँ सुनी थीं और यह तो स्वयं अपनी आँखों देखी घटना है।

उपसंहार

इसप्रकार प्राय: बीस वर्षोंतक मुझे प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके सत्सङ्गका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे जो सुख उनके श्रीचरणोंमें प्राप्त हुआ वैसा और कहीं नहीं मिला। भगवान्ने मुझे धन, वैभव, मान सभी कुछ दिया है, परन्तु सच्चा सुख तो मुझे गङ्गाजीकी रेतीमें पूज्य बाबाके श्रीचरणों में बैठकर ही प्राप्त होता था। उन चरणोंके समीप जाते ही पाप-ताप सब भाग जाते थे और एक अद्भुत आनन्द एवं शान्तिका अनुभव होता था; चित्त सात्त्विक सुखसे भर जाता था, श्रीकृष्णप्रेमकी मस्ती-सी चढ़ जाती थी और मन प्रभुप्रेममें रोनेके लिये मचलने लगता था। कैसा था

वह विलक्षण अपूर्व आनन्द ! आज उसकी याद आते ही हृदय भर आता है। वास्तवमें बाबा बाबा ही थे ! ऐसे विलक्षण सन्त संसार-में ढूँढ़नेपर भी नहीं मिल सकते। आपको खोकर भारत अनाथ हो गया, भक्तोंका सहारा छिन गया और सनातनधर्मका तो मानो सूर्य ही अस्त हो गया। बाबा भक्ति, ज्ञान, योग और वैराग्यकी दिव्य मूर्त्ति थे, बड़े-बड़े तत्त्ववेता आपके दर्शन करके कृतकृत्यताका अनुभव करते थे और बड़े से बड़े विद्वान् भी आपके चरणोंमें बैठकर शास्त्रों-का रहस्य हृदयङ्गम करते थे ; अधिक क्या कहें बाबा तो साक्षात् शङ्कर ही थे,
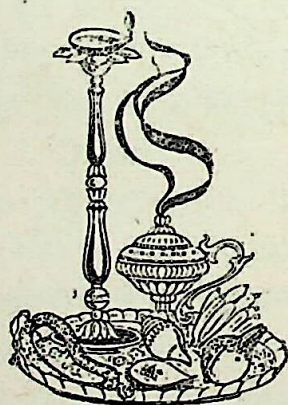
डाक्टर मोहन वार्ष्णेय, डिबाई

पूज्य श्रीमहाराजजीके विषयमें हमारे जो अनुभव हैं उन्हें तो वास्तवमें लिखा ही नहीं जा सकता। अपने भक्तों के साथ उनका जो दैनिक व्यापार था वही बड़ा अद्भुत जान पड़ता था। जिस पर उनकी कृपा रही, पूरी रही, अन्ततक रही और अब भी है। उनके विषयमें कहाँतक लिखा जाय? और हरेक बात लिखना अभीष्ट भी नहीं है। फिर भी पूज्य श्रीचरणोंमें श्रद्धाञ्जलीके लिये एक घटना लिखता हूँ।

सन् १९३७ ई० की बात है। कर्णवासमें बिरौलीके बौहरे श्रीरामचन्द्रजी द्वारा आयोजित श्रीमद्भागवत-सप्ताहपारायण हो रहा था। मैं नित्य डिबाईसे कर्णवास जाता और सायंकालमें लौट आता था। एक दिन दिल्लीवाली बहिनजीने पीनेके लिये श्रीमहाराजजी को कुछ पेय दिया। आपने थोड़ा-सा पीकर शेष लौटा दिया। बहिनजीने पूरा पी जानेके लिये आग्रह किया। आप बोले, "पूरा पी जानेसे बार-बार लघुशंकाके लिये जाना पड़ता है। कथाके बीचमें उठना ठीक नहीं।" परन्तु बहिनजी बार-बार उसे पूरा पी जानेके लिये ही आग्रह करती रहीं और रोने लगीं। तब श्रीमहाराजजीने अन्यमनस्क हो पी लिया और यज्ञशालामें जाकर कथा में बैठ गये। वहाँ बैठे-बैठे मैंने श्रीमहाराजजीकी विचित्र अवस्था अनुभव की। मुझे ऐसा लगा कि या तो श्रीमहाराजजी यह स्थान छोड़ देंगे या आज कोई विशेष घटना घटेगी। अतः उस दिन मैं सायंकालमें लौटा नहीं।

रात्रिको जब कीर्तन हुआ तो श्रीमहाराजजी खड़े-ही-खड़े समाधिस्थ हो गये। सब स्त्री-पुरुष रोने लगे और मुझसे श्रीमहाराजजी को नाड़ी देखनेको कहा। मैंने सबको शान्त करते हुए जोर-जोरसे कीर्तन करनेको कहा। बहुत देरमें श्रीमहाराजजीने नेत्र खोले और वहाँसे चलनेके लिये संकेत किया। उस समय आप बड़ी कठिनाईसे चल सके। जैसे कोई गड़ी हुई चीज उखाड़ता है वैसे ही आपने बड़े प्रयाससे अपने पैर उठाये।

वहाँसे चलकर सब भक्तलोग तो भोजनादिमें व्यस्त हो गये, परन्तु दो-चार संतोंके साथ मैं आपके पास ही बैठा रहा मेरे। मनमें कभी-कभी ऐसा विचारा आया करता था कि बाबा मुझे प्यार नहीं करते, क्योंकि अन्य भक्तोंकी तरह मुझसे कभी खाने-पीनेकी बात नहीं पूछते। इस समय आपने एक संतको सम्बोधन करके कहा "मैं किसे प्यार करता हूँ, किसे नहीं—यह तुम नहीं जानते। जो सत्कारके भूखे हैं उन्हें मैं सत्कार देता हूँ, किन्तु जो मेरे हैं उन्हें सत्कार नहीं, फटकार देता हूँ, क्योंकि मैं उनका अकल्याण नहीं देख सकता। अतः जिसपर मेरा वास्तविक प्रेम होता है उसे मैं ऊपरी सत्कार नहीं देता। अपनेको सत्कार दिया भी नहीं जाता।" उस दिनकी वह घटना और यह बात मुझे भूलती नहीं, मेरे लिये तो यह प्रकाशका स्रोत बन गयी है।

श्रीमुंशीलालजी ड्राइङ्ग मास्टर, बुलन्दशहर

प्रारम्भिक परिचय

पूज्य श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन मुझे हाथरसमें श्रीविष्णु-दयालके बगीचेमें हुआ था। उससे पूर्व मेरे विवाहके अवसरपर भी आप वहीं थे और विवाहसंस्कार भी उसी मण्डपमें हुआ था जिसमें प्रातःकाल आपका पूजन हो चुका था। विवाहके कुछ काल पश्चात् जब मैं दूसरी बार हाथरस गया तब मेरे पूज्य श्वसुर लाला शंकरलालजीने कहा, "चलो, मैं तुम्हें एक महात्माके दर्शन कराऊँ।" मैं उनके साथ गया और उक्त बगीचे में बाबाके दर्शन किये तथा प्रणाम करके बैठ गया। तब बाबा बोले, "अरे! इन चार[1] लड़कोंमेंसे एक यह भी है क्या?" शंकरलालजीने कहा, "हाँ, महाराज।" फिर बोले, "यह कुछ करता भी है या यों ही रहता है?" उन्होंने उत्तर दिया, "रामायणका पाठ करते हैं।" इसके सिवा और जो बातें हुईं वे अब याद नहीं हैं।

इसके पश्चात् दूसरी बार मैंने अनूपशहरमें आपके दर्शन किये। इस बार आप मुझे ऊपर ले गये और बोले, "देख, जब तू पहले लखनऊमें रहता था तो रामायणका पाठ करते समय तेरी आँखोंमें आँसू आ जाते थे, परन्तु अब नहीं आते। तू शंकरलालके चक्कर

---

१. श्रीशंकरलालजीने अपनी, अपने भाईकी तथा अपने एक सम्बन्धी की चार लड़कियोंके विवाह एक साथ किये थे। उनके चार वरोंमें से एक ये थे।

में मत आ जाना। वह वेदान्ती है, उसकी बात मत सुनना।" वास्तवमें वे मुझसे कहा भी करते थे कि गायत्रीका जप इस प्रकार करना चाहिये, प्रातः और सायंकाल सन्ध्या इस प्रकार करनी चाहिये। इत्यादि।

लखनऊमें रहते समय मैंने एक सज्जनसे वैष्णवीय दीक्षा तथा मन्त्र ले लिये थे। बाबाने उसे ही पुष्ट किया और उसी उपासनामें मेरी निष्ठा दृढ़ की। बाबामें मैंने यह एक विशेषता देखी कि उनके पास यदि कोई अन्य महात्मासे दीक्षित व्यक्ति जाता तो वे उसी इष्ट और मन्त्रकी पुष्टि करते थे। इस बातमें वे बहुत सावधान रहते थे कि किसीको बुद्धिभेद न। हो अन्यत्र ऐसा बहुत कम देखा जाता है।

इसके पश्चात् धीरे-धीरे आपके श्रीचरणोंमें मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी और मैं रामघाट, कर्णवास अथवा और भी जिस किसी स्थानपर बाबा होते वहीं उनके दर्शनार्थ जाने लगा। प्रायः अनेकों बार ऐसा हुआ कि जब कभी मुझे स्कूलसे छुट्टी मिलती मेरी धर्मपत्नीको स्वप्नादिके द्वारा यह अनुभव हो जाता कि बाबा इस समय कहाँ हैं। उनके कथनानुसार मैं जाता तो निश्चय ही आप उसी स्थानपर मिलते।

उपदेश और आदेश

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीका मेरे लिये यही उपदेश था कि भगवन्नामका जप करते रहो, यथासाध्य ध्यान भी करो और सर्वदा श्रीरामायणजीका पाठ किया करो। इससे श्रीभगवान् प्रसन्न होते हैं। लौकिक क्षेत्रमें उनका यह आदेश था कि स्कूलके कामको तुम नौकरी मत समझना। मेरी या भगवान्की सेवा समझकर साव-

धानीके साथ करते रहना। अपना व्यवहार छल-कपटसे रहित तथा सरल और सत्यानुकूल रखना। यदि मैं स्कूलको छुट्टी होनेपर आपके दर्शनार्थ जाता था तो आप प्रसन्न होते थे, किन्तु यदि किसी बहानेसे छुट्टी लेकर जाता तो मुझे स्पष्ट अनुभव होता था कि मेरी ऐसी चेष्टासे उन्हें प्रसन्नता नहीं होती थी। वे कहा करते थे कि तुम्हारे लिये तो भगवान्‌ने स्वतः छुट्टियाँ दे रखीं हैं। ये बहाने आदि के उपाय तो दुनियादारोंके लिये हैं, जिन्हें झूठ और छल-कपटसे कोई घृणा नहीं होती।

श्रीमहाराजजीने मुझे विनयपत्रिकाके तीन पद लिखवाकर यह आज्ञा दी थी कि तुम इन पदोंके अनुसार अपना जीवन बनानेकी चेष्टा करते रहना। वे पद इस प्रकार हैं—

(१)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो॥
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा तें संत सुभाव गहौंगो॥ १॥
जथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर मनक्रमबचन नेम निबहौंगो॥ २॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहिं पावक न दहौंगो।
बिगतमान सम शीतल मन, परगुन नहिं दोष गहौंगो॥ ३॥
परिहरि देहजनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो॥ ४॥

(२)

जो मन लागै रामचरन अस॥
देह गेह सुत बित कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किये जस॥ १॥
द्वंद्वरहित गतमान ग्यानरत बिषय बिरत खटाइ नाना कस।
सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होहिं बस॥ २॥

सर्वभूतहित निर्व्यलीक चित भगति प्रेम दृढ़ नेम एकरस।
'तुलसिदास' यह होइ तबहिं जब द्रवै ईस जेहि हत्यौ सीस दस ।। ३ ।।

(३)

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतरु ।।
तो तजि विषय विकार सार भज, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु ।। १ ।।
सम संतोष विचार बिमल अति, सतसंगति ये चारि दृढ़ करि धरु ।
कामक्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु ।। २ ।।
श्रवन कथा मुख नाम हृदय हरि, सिर, प्रनाम सेवा कर अनुसरु ।
नयननि निरखि कृपासमुद्र हरि, अग-जग-रूप भूप सीतावरु ।। ३ ।।
इहै भगति वैराग्य ग्यान यह हरितोषन यह सुभ व्रत आचरु ।
'तुलसिदास' शिव मत मारग यहि, चलत सदा सपनेहुँ नाहिन डरु ।। ४ ।।

श्रीमहाराजजीकी हमारे ऊपर अपार कृपा थी। मैं प्रायः श्रीचरणोंके दर्शनार्थ जाता रहता था और उन्हींकी कृपासे मुझे इसके लिये छुट्टी भी मिल जाती थी। इससे अन्य अध्यापकोंको कुछ स्पर्धा भी होती थी। यहाँ तक कि एक बार तो स्वयं हैड-मास्टर साहबने भी इस विषयमें इंसपैक्टरको मेरी शिकायत लिख दी। किन्तु इससे उन्हींको हानि उठानी पड़ी। मेरा पूर्ण विश्वास है कि ऐसे अवसरोंपर केवल उन्हींकी कृपासे मेरी रक्षा हो जाती थी। वे सब कुछ जानते थे और जिस प्रकार उस समय हमारी देख-रेख रखते थे उसी प्रकार अब भी रखते हैं तथा आगे भी रखेंगे—ऐसी मेरी धारणा है।

माता-पिता अपनी सन्तानके हितके लिये जैसे उन्हें ताड़ना देते हैं उसी प्रकार केवल वात्सल्यवश वे हमें दण्ड भी देते थे। उनकी वह विशुद्ध आत्मीयता आज भी हमारे हृदयको रह-रह कर क्षुब्ध कर देती है। एक बारकी बात है, अनन्त चतुर्दशीका दिन था।

श्रीमहाराजजीके साथ हम कई व्यक्ति श्रीगङ्गास्नानके लिये गये। वे तो स्नान करके चले आये, किन्तु मैं, प्रतापसिंह तथा और दो व्यक्ति पीछे रह गये। हम चारोंमें महाराजजीकी लंगोटी धोनेके लिये होड़ लग गयी। प्रत्येक चाहता था कि वही धोवे। भाद्रपद मासमें श्रीगङ्गाजीका प्रवाह प्रबल तो होता ही है। छीना-झपटीमें एकका पैर उखड़ गया और वह डूबने लगा। उसे बचानेके लिये दूसरा लपका और वह भी बहने लगा। यही गति तीसरे और चौथेकी भी हुई। तब फर्रुखाबादवाले रघुनाथजीने धोती फेंककर एक को खींचा और उसीके सहारे सब बच गये। लौटनेपर यह घटना किसी ने श्रीमहाराजजीको सुना दी। चारोंकी पेशी हुई। उन्होंने चारोंसे कान पकड़वाया और गङ्गाजीकी ओर मुँह कराकर शपथ करायी कि फिर कभी ऐसा ऊधम न करेंगे।

ऐसी थी उनकी अद्भुत आत्मीयता। अब तो केवल उनकी स्मृतिका ही आश्रय है।

श्रीमती द्रौपदीदेवी, बुलन्दशहर

पूज्य श्रीमहाराजजीकी सर्वदा ही हमपर बड़ी कृपा रही है। उन्होंने कई बार हमें अनेक प्रकारकी विपत्तियोंसे बचाया है। ऐसी ही कुछ घटनाओंका यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१)

एक बार मास्टरसाहबको बुखार और पेचिश दोनों हो गये। वे औषधिके लिये वैद्यके पास गये परन्तु बुखारकी बात कहना भूल गये। वैद्यजीने पेचिशकी दवा दी और दही खानेके लिये कह दिया। ज्वरकी दशामें दही खानेसे मास्टरसाहबको सन्निपात हो गया। वे रात्रिमें अनाप-शनाप बक रहे थे। उनकी बीमारीको दु:साध्य समझकर मैं बाल-बच्चोंके भविष्यकी चिन्तासे दु:खी हो रही थी। उसी स्थितिमें मेरी आँखें कुछ झप गयीं। मैंने स्वप्नमें देखा कि श्रीमहाराजजी मुझसे कह रहे हैं, "बेटी ! तुमने नगरकोट की देवीको भंटका सवा रुपया नहीं भेजा, उसीका यह परिणाम है। अब जल्दी भेज दो। मैंने उसी समय रुपया निकालकर रख दिया और दूसरे ही दिन मनीआर्डर द्वारा भेज दिया। तभीसे उनकी बीमारी अच्छी होने लगी और तीन-चार दिन पश्चात् वे श्रीमहाराजजीके दर्शनोंको चले गये।

(२)

एक बार मुझे संग्रहिणीकी बीमारी हो गयी। बार-बार दस्त आते थे। एक दिन श्रीमहाराजजीने स्वप्नमें कहा, "तुम दही-पेड़ा खाओ।" मैंने मास्टर साहबको पूरी बात न सुनाकर दही पेड़ा

लानेको कहा। सुनकर वे बहुत नाराज हुए। बोले, "संग्रहिणीमें मीठा तो जहर है, क्या मरनेके लिये मँगा रही है ?" परन्तु मैं बराबर आग्रह करती रही। तब वे झुँझलाकर एक सेर पेड़ा और आधासेर दही ले आये और बोले, "लो, खाओ और मरो चाहे जीओ।" मैंने उसमेंसे पावभर दही और आधापाव पेड़ा लेकर खा लिये। उन्हींसे मेरी संग्रहिणी अच्छी हो गयी और दूसरे ही दिनसे मैं भरपेट रोटी-दाल खाने लगी।

(३)

एक बार हम दोनों अपनी पुत्री विद्याको साथ लेकर श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ कर्णवास जा रहे थे। रास्तेमें विद्याको बहुत तेज बुखार चढ़ा और उसके गलेमें एक बड़ा-सा फोड़ा निकल आया। अब वह न तो पानी पी सकती थी और न थूक निगल सकती थी। लोग कहने लगे, "यह तो कालगुमड़ी है, इससे तो बचना कठिन होता है।" थोड़ी देरमें श्रीमहाराजजी आये। विद्याने उठ कर उन्हें प्रणाम किया। महाराजजीकी चादरके सिरेमें कुछ अंगूर बँधे थे। उनमेंसे एक अंगूर निकालकर उन्होंने विद्याको दिया और बोले, "खा ले।" उसे खाने के आधे घंटे बाद ही वह फोड़ा दब गया और ज्वर भी शान्त हो गया। तब श्रीमहाराजजी कहने लगे, "यों ही हल्ला मचा रखा है कि काल-गुमड़ी हो गयी, विद्याको तो त्रिकालमें कुछ नहीं हो सकता।"

ऐसी थी उनकी अद्भुत कृपा।

—o—

ठाकुर अमरदेवजी (भक्त मुनीमजी), बुलन्दशहर

पूज्य बाबाका प्रथम दर्शन मैंने अनूपशहरमें किया था । वहाँके कुछ गुजराती भक्त बाबाके पास आते-जाते थे । एक दिन उन्होंने ही मुझसे कहा, "एक बड़े अच्छे महात्मा आये हैं; चलो तुम भी दर्शन कर लो ।" उसी समय मैंने जाकर बाबाके दर्शन किये और तभीसे मेरा चित्त उनकी ओर आकर्षित हो गया । दूसरी बार खुरजा जाकर दर्शन किये । इस प्रकार धीरे-धीरे उनसे मेरा सम्बन्ध बढ़ गया ।

बाबा मेरे लिये प्रायः यही उपदेश देते थे कि प्रातःकाल तीन बजेसे पाँच बजेतक ध्यान किया करो तथा नामजपपर विशेष ध्यान दो । वे ज्ञानमार्गवालोंको तो शाङ्कर सिद्धान्तके अनुसार उपदेश देते थे, परन्तु मुझे तो वैष्णवधर्मके संस्कार थे, इसलिये सर्वदा विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तका ही उपदेश दिया करते थे ।

मैं कभी-कभी बाबासे ऊटपटांग प्रश्न कर देता था । परन्तु बाबा उनका भी बड़ा सुन्दर समाधान कर देते थे । एक बार मैंने पूछा, "महाराजजी ! भगवान् कहते हैं—'इन्द्रियाणां मनश्चास्मि ।' फिर ऐसी अवस्थामें मन अर्थात् भगवान्को कौन रोक सकता है ?" इसपर बाबा बोले, "ठीक है, मन जब हृदयचक्रमें अर्थात् पिण्डके भीतर रहता है तभी उसे रोकनेकी आवश्यकता होती है । परन्तु जब नामजप या ध्यान-उपासना आदिके प्रभावसे वह कण्ठ-

गत हो जाता है तब वह कृष्णस्वरूप हो जाता है। फिर उसे रोकनेकी आवश्यकता नहीं रहती।"

एकबार बाबा बुलन्दशहर पधारे थे। तब एक शास्त्रपटु पण्डित उनके पास पहुँचे और उनसे शास्त्रार्थ छेड़ दिया। विषय था--ब्रह्म निर्गुण है या सगुण? बाबा जिस उच्च सिद्धान्तका प्रतिपादन करते थे उसतक तो पण्डितजीको पहुँच थी नहीं। वे केवल शास्त्रकी रटी हुई बातें ही बार-बार कह रहे थे। उनकी इस हठधर्मीसे मुझे क्रोध आ गया। मैंने कहा, "महाराजजी! मुझे आज्ञा हो तो मैं पण्डितजीको एक मिनटमें ही उत्तर दे दूँ।"

परन्तु बाबाने मेरी बातको अनसुनी करके पण्डितजीसे कहा, "आप किसी पढ़े-लिखे विद्वान्से पूछिये। मैं तो विशेष पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। यों ही माँगकर रोटी खा-पी लेता हूँ।" बाबाके ये वचन सुनकर पण्डितजीको बड़ा संकोच हुआ और वे चुप हो गये। उनके चले जानेपर बाबाने मुझसे कहा, "भैया! क्रोध क्यों करना? अपनेको तो ऐसी स्थितिमें विवादमें न पड़कर अपना पिण्ड छुड़ा लेना चाहिये।"

मैं सच्चे हृदयसे उनके लिये रोने लगता तो वे निश्चय ही स्वप्नमें पधारकर मुझे दर्शन देते थे। उस समय मैं जो कुछ पूछता उसका यथावत् उत्तर देकर मेरा समाधान करते थे। इसी प्रकार कई बार ध्यानावस्थामें भी दर्शन देते थे। एक दिन मैं मन ही मन सोच रहा था कि यदि बाबा यहाँ होते तो मैं उन्हें दाल-भात खिलाता। बस, ध्यान करते समय उनके दर्शन हुए और

मैंने उन्हें दाल-भातका भोग लगाया। वे खुले दिलके परमहंस थे और बालभावमें विचरण करते थे।

एकबार बाबा लोगोंसे छिपकर एकान्तमें चले गये। कई लोग मुझसे आकर पूछते कि बाबा कहाँ हैं? एक दिन मैंने ध्यानमें बाबासे ही पूछा कि आप कहाँ हैं? लोग मुझसे बार-बार पूछते हैं। आश्चर्य की बात यह हुई कि उसी समय मेरे सामने उस झाड़ीका दृश्य उपस्थित हो गया जहाँ वे थे। और उन्होंने कहा, "मैं यहाँ करैलाकी झाड़ीमें हूँ। लोग बहुत परेशान करते हैं, इसलिये यहाँ चला आया हूँ।" पीछे लोगोंको उनका पता चल गया और वे वहाँ भी जाने लगे।

एक समय हाथरसमें राधेश्याम सेक्सरियाके यहाँ महोत्सव था। मैं उन दिनों बीमार था। मास्टर मुंशीलालजी आये कि चलो बाबाके दर्शन कर आवें। यद्यपि मै बीमार था, तथापि उनके आग्रहवश चला गया। श्रीमहाराजजी सिंहासनपर विराजमान थे और भक्तगण उनका पूजन कर रहे थे। वहाँ जाते ही मेरी विचित्र दशा हो गयी। मुझे सिंहासनपर श्रीमहाराजजीका दर्शन नहीं होता था, प्रत्युत श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीजीके दर्शन हो रहे थे। मेरे नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। मैं बार-बार कहता था, "अरे! तुमलोग क्या कर रहे हो? किसकी पूजा करते हो? ये तो साक्षात् राम, लक्ष्मण और जानकीजी दिखायी दे रहे हैं। इनकी पूजा क्यों नहीं करते?" पूरे एक घंटे तक मेरी यही अवस्था रही, पीछे श्रीमहाराजजीका दर्शन होने लगा। इस अनुभवके बाद बाबामें मेरी अपार श्रद्धा बढ़ गयी।

संसार भले ही उन्हें साधु-महात्मा माने, मैं तो साक्षात् भगवद्रूप ही मानता हूँ। उनकी कृपासे मुझे अपार पारमार्थिक लाभ हुआ है। उसका वर्णन मैं कैसे करूँ ?

श्रीमहाराजजीमें मैंने अद्भुत दीनबन्धुताका अनुभव किया। एक बार ये बुलन्दशहरमें सेठ वंशीधरके बगीचेमें ठहरे हुए थे। वहाँ सैकड़ों व्यक्ति उनके दर्शनार्थ उपस्थित थे। खुरजाके सेठ सूरज मल और बाबूलाल भी आये हुए थे। दरवाजेकी ओर दूरीपर कुछ गरीब आदमी बैठे थे। प्रसादका ढेर लगा हुआ था। बाबाकी दृष्टि उन गरीबोंपर पड़ी जो अलग दूर बैठे थे। बोले, "इस प्रसाद-मेंसे ले जाकर उन सबको बाँट आओ।" जब उन सबको मिल गया तब पास बैठे हुए लोगोंको दिया और सबसे अन्तमें सेठ सूरजमल बाबूलालको मिला। मैंने अनुभव किया कि महात्माओं में यह गुण सर्वत्र नहीं मिलता।

बाबामें विचित्र सहनशक्ति थी। उन्होंने स्वयं बताया कि एक बार उन्हें दो दिनतक भिक्षाका योग न जुटा। तीसरे दिन उन्होंने एक गृहस्थके घरपर 'नारायण हरि' किया। घरका बूढ़ा मालिक बैठा था। उसने अपने नवयुवक पुत्रसे कहा, "दर-वाजेपर महात्मा खड़े हैं, चार रोटी दे आ।" बेटा बोला, "खासा हट्टा-कट्टा है, कमाया-खाया नहीं जाता; चार आनेकी मज-दूरी क्यों नहीं करता ?" बापने कहा, "अरे ! ऐसा क्यों बकता है ? चार रोटी दे आ। ये कोई सिद्ध महात्मा जान पड़ते हैं।" बेटा बोला, "तुम्हें सारा संसार ही सिद्ध दीखता है।" अन्तमें उसने बापके कहनेसे चार रोटियाँ लाकर दीं। उन्हें खाकर

आपने जल पीया और चल दिये। बाबाके गुण अपार थे वे। अब भी हमपर कृपा करते हैं, हृदयमें श्रद्धा होनी चाहिये।

उनके सम्बन्धमें मैं अपना क्या-क्या अनुभव कहूँ ? उनमें कृपा उदारता, धर्म, शील, क्षमा, सहिष्णुता आदि सभी गुण देखे जाते थे। वे कभी किसीकी निन्दा नहीं करते थे। सभीको सम्मान देते थे। दीनोंपर दया करते थे और अपराधीपर भी क्रोध नहीं करते थे, उसे क्षमा कर देते थे।
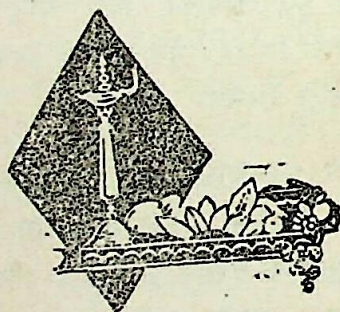
श्रीमुंशीलालजी, देदामई (अलीगढ़)

(१)

एक बार मैं घरमें बैठा भगवत्स्मरण कर रहा था। उस समय मुझे ऐसा मनोराज्य होने लगा कि यदि बाबा आते तो मैं श्रीरामायणजीका सम्पुटसहित पाठ करता। उस मनोराज्यमें मुझे भक्तों सहित श्रीमहाराजजीके दर्शन भी हो रहे थे। उन दिनों कुँवरजी का द्वादशवर्षीय बालक ब्रह्मानन्द बहुत बीमार था। बाबा उस समय प्रयागकी अर्द्ध कुम्भीपर गये हुए थे। सम्भवतः उसी समय उन्हें मेरे आन्तरिक संकल्प और ब्रह्मानन्दकी बीमारीका पता चल गया। परन्तु उन्होंने इस बातको प्रकट न करते हुए मेरे छोटे भाई दण्डिस्वामी सियारामसे, जो उनके साथ थे, कहा, "सियाराम! आज स्वप्नमें मुंशीलाल मुझसे रामायणका सम्पुटसहित पाठ कराने को कह रहा था और तुम्हारे घरपर कुछ उपद्रव आया जान पड़ता था। तुम जल्दी चले जाओ और देखो क्या हाल है।" दण्डिस्वामी तुरन्त चले आये। मेरे मनमें पाठ करानेका संकल्प तो था ही और उन्हें ब्रह्मानन्दकी हालत भी खराब ही मिली। पीछे जब महाराजजी प्रयागसे लौटे तो उन्होंने भक्तोंसहित पधारकर पाठ कराया और उनकी कृपासे उपचार करानेपर ब्रह्मानन्द भी अच्छा हो गया।

(२)

एक दिन श्रीमहाराजजीके सामने ब्रह्मानन्द और मेरी लड़की शान्ति दोनों बैठे थे। उन्हें देखकर आप बोले इन दोनों बालकों

का अभी चार वर्षतक विवाह मत करना। परन्तु होनहारवश हमने मोहके कारण बाबाकी बातपर ध्यान न देकर शान्तिका विवाह कर दिया। उनके वचन सत्य ही हुए। तीसरे वर्ष शान्ति चल बसी। उसके मरनेपर ब्रह्मानन्दकी माँको चिन्ता हुई कि अब बचेगा यह भी नहीं। छः महीने पश्चात् उसका भी देहान्त हो गया। सारे घरमें शोक छा गया। परन्तु 'अब पछताए होत कहा जब चिड़िया चुग गयीं खेत।' हमें बाबाकी आज्ञाकी अवहेलना करनेका फल मिल गया।

(३)

महाराजजीके लीलासंवरण करनेसे चार वर्ष पीछेकी बात है, सम्भवतः मार्गशीर्षका महीना था। एक रात मैंने स्वप्नमें देखा कि दो भैंसें लड़ रही हैं और मैं वहीं खड़ा हूँ। उसी समय बाबा मुझसे कह रहे हैं—'हट परेको।' मैं हट गया। दूसरे दिन मैं अपनी भैंस के पास खड़ा था। उसी समय एक अन्य भैंस आकर उससे लड़ने लगी। मुझे तुरन्त स्वप्नकी घटना याद आ गयी। मैं वहाँसे हट गया। उनमें ऐसी भिड़न्त हुई कि एक भैंसका सींग टूट गया। यदि श्रीमहाराजजीने मुझे स्वप्नमें सचेत न किया होता तो सम्भव है, मुझे बड़ी सख्त चोट आती।

आज उनके बिना हम अनाथ बच्चोंकी तरह हो गये हैं। परन्तु वे कृपालु हमें भूले नहीं हैं। अब भी समय-समयपर उनकी कृपाका अनुभव होता रहता है।

बहिन श्रीरामकुँवरिजी, देदामई (अलीगढ़)

पूर्वचरित

मेरी पूजनीया माताजी बड़ी भक्तिनिष्ठा हैं। वे स्वयं तो भजन करती ही थीं, हम बालकोंके चित्तमें भी भक्ति भावके सुन्दर बीज बोया करती थीं। मुझे याद आता है, जब मैं और मेरी छोटी बहिन राजकुंवरि शीतकालमें प्रातःस्नान करतीं और उस समय, जैसाकि लोग स्नान के समय, प्रायः कहा करते हैं, इस दोहे को गातीं—

राम नाम की लूट है, लूटी जाय तो लूट।
अन्तकाल पछितायगो, प्राण जायँगे छूट।

—तो माताजी कहने लगतीं, "अरी! तो कहती क्यों हो? लूट क्यों नहीं लेतीं? इतनी देर में तो दस-बीस रामनाम जप सकती थीं, दूसरोंको समझाती क्यों हो?" इस प्रकार माताजीकी शिक्षासे मैं बचपनमें ही रामनामका जप तथा रामायण और गङ्गालहरीका पाठ किया करती थी।

विवाह करनेकी मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी। यह बन्धन मुझे अत्यन्त भयानक जान पड़ता था। तथापि पिताजी आदि घरके बड़े लोगोंके आग्रहसे मेरा विवाह हो गया और मैं ससुराल गयी। पतिगृहमें जानेपर भी मेरे मनमें कोई आकर्षण नहीं हुआ। मैंने पतिसे अपना निश्चय स्पष्ट कह दिया कि आप दूसरा विवाह कर लें, मेरा विचार तो जीवनभर ब्रह्मचर्य पालन करते हुए भजन करनेका ही है। उन्होंने मुझे समझाने-बुझाने का प्रयत्न किया। घरमें

बड़ी अशान्ति पैदा हो गयी। मैं भी बहुत दुःखी हुई। तब मेरे बड़े भाई श्रीसियारामजी आये। वे मेरे शुभ संकल्पसे सहानुभूति रखते थे। अतः वहाँ सब लोगोंको समझा बुझाकर वे मुझे घर ले आये। अन्तमें मेरे पतिने दूसरा विवाह कर लिया।

श्रीसियारामजो जिस प्रकार मेरे सत्संल्कपसे सहानुभूति रखते थे वैसे ही श्रीमहाराजजीकी प्राप्ति में भी वे ही कारण बने। श्रीमहाराजजीमें उनका अगाध अनुराग था। उनके दर्शनोंके लिये वे बार-बार रामघाट व कर्णवास आदि स्थानों पर जाते रहते थे और मुझे उनकी गुणगरिमा सुनाया करते थे। इससे मेरे हृदयमें श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी उत्कण्ठा रहने लगी।

प्रथमदर्शन

सन् १९२८ ई० के मार्गशीर्ष मासमें मैं मामाजीके साथ खरकवारीसे पहलीबार श्रीमहाराजजी का दर्शन करनेके लिये रामघाट गयी। वहाँ मैंने गन्ध, पुष्प और नैवेध द्वारा श्रीमहाराजजीका पूजन किया और आरती उतारी। आरती करते समय मैंने भावपूर्ण हृदयसे इस गुरुस्तुतिका गान किया—

जय गुरुदेव दयानिधि दीनन हितकारी। जय दीनन हितकारी।
जय जय मोहविनाशक भवबन्धनहारी। जय देव गुरुदेव ॥ १ ॥

ब्रह्मा विष्णु सदाशिव गुरुमूरतिधारी। जय गुरुमूरतिधारी।
वेद पुरान बखानत गुरु महिमा भारी। जय देव गुरुदेव ॥ २ ॥

जप तप संयम तीरथ दान विविध दीने। जय दान विविध दीने।
गुरु बिनु ज्ञान न होवे कोटि यतन कीने। जय देव गुरुदेव ॥ ३ ॥

माया मोह नदीजल जीव बहें सारे। जय जीव बहें सारे।
नाम जहाज बिठाकर गुरु पलमें तारे। जय देव गुरुदेव ॥ ४ ॥

काम क्रोध मद मत्सर चोर बड़े भारे। जय चोर बड़े भारे।
ज्ञान खड्ग ले करमें गुरु सब संहारे। जय देव गुरुदेव ॥ ५ ॥
नाना पन्थ जगतमें निज-निज गुन गावें। जय निज-निज गुन गावें।
सबका सार बताकर गुरु मारग लावें। जय देव गुरुदेव ॥ ६ ॥
गुरुचरणामृत निर्मल सब पातकहारी। जय सब पातकहारी।
वचन सुनत तम नासे सब संसयहारी। जय देव गुरुदेव ॥ ७ ॥
तन मन धन सब अर्पण गुरुचरणन कीजै। जय गुरुचरणन कीजै।
'ब्रह्मानन्द' परमपद मोक्षगती लीजै। जय देव गुरुदेव ॥ ८ ॥

मैंने अनुभव किया कि बाबाने इस स्तुति को बड़े प्रेमसे सुना और वे बड़े प्रसन्न हुए। पीछे पं० रामप्रसादने इस पदको लिख लिया और दुबारा श्रीमहाराजजी को सुनाया। परन्तु उन्होंने केवल इतना ही कहा, "भैया ! यह तो उसीके मुखसे अच्छा लगता है।"

मेरी प्रवृत्तिका समर्थन

इसके एक मास पश्चात् भैया सियारामजीके साथ मैं पुनः महाराजजीके दर्शन करनेके लिये गयी। रात्रिके समय कुटियाके सामने प्रायः डेढ़-दो सौ भक्त बैठे थे और बाबा कह रहे थे, "यदि तीव्र वैराग्य हो तो एक पतिके लिये चाहे हजार स्त्रियाँ मर जायँ अथवा एक पत्नीके लिये हजार पति मर जायँ तो भी कोई पाप नहीं। परन्तु होना चाहिये तीव्र वैराग्य" उस समय श्रीमहाराजजीके श्रीमुखके ये वचन मुझे अमृत के समान परम प्रिय लगे। दूसरे दिन बाबा बोले, "सियाराम ! चलो तुमसे एकान्तमें बातें करेंगे।" भाईके साथ मैं भी गयी। बाबाने मुझे समझाना आरम्भ किया, "बेटा ! वह लड़का (मेरे पति) तुमसे बहुत प्रेम करता है। तुम्हारे लिये बहुत रोता है। वह मेरे पास आया था। तुम उसके पास

चली जाओ। पति कैसा भी हो, लूला, लँगड़ा, अन्धा कैसा भी क्यों न हो, स्त्री का परमधर्म तो उसकी सेवा करना ही है। देखो, तुम्हारी माता कितना भजन करती है? तुम भी उसीकी तरह भजन करो। आज-कल लोगों को ओस[1] वैराग्य होता है; फिर यह नशा उतर जाता है। तुम्हारा यहाँ आनेका कोई काम नहीं है।" इस प्रकार उन्होंने मुझे हरप्रकारसे समझाया। परन्तु उनकी बातें मेरे हृदय में जँची नहीं। मैंने केवल इतना ही कहा, "महाराजजी! आप ठीक कहते हैं, परन्तु आपने क्या थूककर चाटनेवाला भी कोई व्यक्ति देखा है? यदि देखा हो तो मुझे दिखा दीजिये। आप यहाँ आनेको मना करते हैं तो मैं नहीं आऊँगी।"

तब वे कुछ नरम पड़े और बोले, "बेटा! मैं भजन करनेको कब मना करता हूँ। परन्तु यह बड़ा कठिन मार्ग है। एक गड़रियों-के ओढ़नेका कम्बल मिलेगा और दो धोती। खानेको एक मुट्ठी चना और कभी वह भी नहीं। इसपर भी बड़े-बड़े विघ्न आयेंगे—कभी निन्दारूपमें और कभी प्रतिष्ठारूपमें। अभी तो तुम्हारे लिये सब प्रकार की सामग्री तैयार है।" इत्यादि।

मैंने यद्यपि महाराजजीकी इन बातोंपर कोई ध्यान नहीं दिया, तो भी अन्तर्हृदयसे वे मुझपर कृपादृष्टि ही रखते थे। अन्तमें तो उन्होंने यह कह भी दिया कि हम तो ऐसा ही चाहते हैं कि हमारी ऐसी आज्ञाको कोई न माननेवाला भी हो, और पूर्णरूपसे इस मार्गपर आरूढ़ हो जाय।

---

१. जो वैराग्य ओसकी बूंदके समान क्षणिक हो।

साधनमें प्रगति

प्रारम्भमें मैं केवल भजन ही करती थी। परन्तु पीछे उसमें वेदान्तविचारका भी पुट लग गया। मेरी निष्ठा आदिके विषयमें कुछ पूछे बिना ही एक दिन बाबा बोले, "सियाराम ! इसके लिये ये पाँचों श्लोक लिख दो"—

'घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः सर्वथा न घटो यथा।
देहद्रष्टा तथा देहाद्भिन्न एव न संशय ॥१॥
'न त्वं देहो नन्द्रियाणि न प्राणो न मनो न धीः।
विकारित्वाद्विनाशित्वाद्दृश्यत्वाच्च घटो यथा ॥२॥
'मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमांसमयं वपुः।
त्यक्त्वा चाण्डालवद्दूरं ब्रह्मीभूय कृती भव ॥३॥
'देहात्मबुद्धिजं पापं न तद्गोवधकोटिभिः।
आत्माहंबुद्धिजः पुण्यो न भूतो न भविष्यति ॥४॥
'देहोऽहमिति धीस्त्याज्या सर्वनाशेऽप्युपस्थिते।
स्प्रष्टव्या न तु भव्येन शुनोमांसमिव क्वचित् ॥५॥

इसके अतिरिक्त आपने मुझे आज्ञा दी कि तुम गीता कण्ठ कर लो, फिर मुझे सुनाना। फिर स्वयं सिद्धासनसे बैठकर दिखाया और बोले, "सबसे पहले मानसिक दृष्टिसे श्वासकी गतिपर ध्यान दो और भूत-भविष्यत्का चिन्तन छोड़कर वर्तमानमें स्थित रहो।"

एक दिन बाबा कहने लगे, "बेटा ! केवल सोनेकी दो अँगूठियाँ और सोनेकी ही दो चूड़ियाँ पहन लिया करो। काँचकी चूड़ियाँ पहिननेको मैं नहीं कहता।" यह सुनकर मैं हँस पड़ी और बोली, "बाबा ! आपको बहकानेके लिये क्या मैं ही मिली हूँ ?" तब बोले "अरे बेटा ! तू समझता तो है नहीं।"

पूज्य श्रीमहाराजजीने मुझे नाना प्रकारके सांसारिक प्रलोभनों और माया के गर्त्तसे उबारा तथा अनेक प्रकारके उपदेश देकर भक्ति और ज्ञानमार्गमें अग्रसर किया। परमार्थपथमें मुझसे जो कुछ भी बना है वह सब उन्होंका कृपाप्रसाद है। एक दिन रामघाटमें श्रीमहाराजजी कथासे उठकर चले आ रहे थे। अकस्मात् बड़ी उमङ्गमें भरकर मुझसे कहने लगे, "बेटा! मुदित रहा करो। मुदित! मुदित! मुदित!" बाबाने अनेकों बार स्वप्नमें भी मेरे प्रश्नोंका उत्तर देकर मेरी शङ्काओंका समाधान किया है। वे सब बातें मेरी निष्ठाके अनुसार ही होती थीं।

कुछ घटनाएँ

(१)

समय-समयपर दो ज्योतिषियोंने मेरी जन्मपत्री और हस्तरेखा देखकर बताया था कि तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा। इधर आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर भजन करनेका मेरा दृढ़ संकल्प था। अतः ज्योतिषियोंकी बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैंने बाबासे प्रार्थना की कि इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है? तब बाबाने मेरे सिरपर अपना करकमल रखकर कहा, "बेटा! ज्योतिषियोंकी बात नहीं सुना करते। क्या रामायणमें तुमने नहीं पढ़ा—'मन्त्र महामणि विषय जालके। मेटत कठिन कुअंक भालके।' अतः तुम इसकी चिन्ता मत करो। और इसका कोई प्रकारान्तर भी तो हो सकता है।"

बाबाके इस कथनसे मेरी शङ्का दूर हो गयी। इसके कई बर्षों बाद एक बालकने मुझमें मातृभाव कर लिया। वह मुझे ही

माता मानने लगा। इससे मैंने समझ लिया कि प्रकारान्तरसे ज्यतिषियोंकी बात भी फलित हो गयी।

(२)

अन्तिम गुरुपूर्णिमाका उत्सव हो जानेके पश्चात् मैंने श्रीमहाराजजीसे विदा माँगी। परन्तु उन्होंने श्रीकृष्णजन्माष्टमीतक वृन्दावनमें ही ठहरनेको कहा। तथापि राजकुँवरिकी सेवाका कारण दिखाकर, जो कि उन्हींकी सौंपी हुई थी, मैं चली आयी। उस समय बाबाके मुखपर कुछ उदासीनताका भाव दिखायी दिया। कदाचित् वे मेरी आगामी विपत्ति देख रहे थे। श्रीकृष्णजन्माष्टमीके एक दिन पहले अलीगढ़में मुझे बिजलीने पकड़ लिया। भगवत्कृपासे एक आदमीने उसी समय मीटर बन्द कर दिया। इससे प्राण तो बच गये, तथापि बिजलीके प्रभावसे पन्द्रह दिन पीछे मुझे घोर संग्रहिणी हो गयी और हृदय डूबनेके दौरे होने लगे। डाक्टर-वैद्योंकी बहुत चिकित्सा करायी, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर एक दिन मरणासन्न हो गयी। नाड़ीने जगह छोड़ दी, प्राणों की ऊर्ध्वंगति हो गयी और आँखोंकी पुतली ठहर गयी। सौभाग्यवश राजकुँवरिने मेरी ऐसी गिरती अवस्था देखकर इससे पहले ही सोहनाको श्रीमहाराजजीके पास भेज दिया था। रात्रिको आठ बजे मेरी यह मरणासन्न अवस्था हुई और ठीक उसी समय श्रीमहाराजजीने वृन्दावनमें सोहनासे मेरा यह समाचार सुना। सारी स्थिति सुनकर वे ध्यानस्थ हो गये। और फिर थोड़ी देरमें आँखें खोलकर बोले, "जा, नहीं मरेगी, नहीं मरेगी, नहीं मरेगी।" इसके सिवा उन्होंने सोहनाके द्वारा कहलाया कि अलीगढ़ छोड़कर देदामई चली जाय।

बस, ठीक उसी समयसे मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा और धीरे-धीरे स्थिति ठीक हो गयी।

(३)

सन् १९३० में मेरी छोटी बहिन राजकुँवरि अत्यन्त रोगाक्रान्त होगयी। अनेकों उपचार हुए, परन्तु उसकी स्थिति बिगड़ते-बिगड़ते वह सर्वथा मरणासन्न हो गयी। संयोगवश उस दिन कुटुम्बमें श्रीसत्यनारायण भगवान्‌की कथा हो रही थी। राजकुँवरिकी मरणासन्न स्थिति देखकर लोग जल्दी-जल्दी ब्रह्मभोज कराने लगे कि कहीं अशौच न हो जाय। गोदान भी कर दिया गया। सारांश, वह अब-तब हो रही थी, बचनेकी कोई आशा नहीं थी।

अकस्मात् उसने नेत्र खोले और अँगुलीसे संकेत किया। मैं उसका संकेत समझ गयो और उसे बाबाका चित्र लाकर दे दिया। वह जैसे-तैसे उसे पकड़कर देखने लगी और फिर मुसकराई। उसकी मुसकराहटमें मुझे स्पष्ट अनुभव हुआ कि उसमें बाबाका आवेश हो गया है। उसका मुख बाबाका-सा हो गया और उसके दाँत बाहर निकल आये। इसमें क्या रहस्य था? उन्होंने कैसे कृपा की थी? सो तो वे ही जानें, तथापि उसका शुभ परिणाम यह हुआ कि कहाँ तो वह मर रही थी, किन्तु अब वह सुखकी नींद सो गयी। दूसरे दिन सबेरे उसने खानेके लिये चटनो माँगी। वैद्यजीने हमसे कह रखा था कि इसके बचनेकी अब कोई सम्भावना नहीं है, अतः यह जो कुछ खानेके लिये माँगे दे देना। अतः उसे थोड़ी चटनी दे दी गयी। उसे खाकर उसने और माँगी, तब थोड़ी और दे दी गयी। इस प्रकार बार-बार माँगकर वह प्रायः

एक पाव चटनी चट कर गयी और धीरे-धीरे कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गयी।

(४)

एक बार श्रीमहाराजजी देदामईसे विदा होकर जा रहे थे। साथमें मैं भी थी। उनके साथ गाँवसे ही एक बकरी लग गयी। वे उसे बार-बार हटाते, परन्तु वह उनके सङ्ग ही लगी रही। इस प्रकार प्रायः एक मील निकल जानेपर श्रीमहाराजजीने उसे पास बुलाया और धीरेसे उसके कानमें कह दिया, "अब तू लौट जा।" बस, वह वहीं रुक गयी और जब तक बाबा उसे दिखायी दिये उन्हींकी ओर देखती रही। वह बड़ी उदास जान पड़ती थी और उसके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। जब बाबा आँखोंसे ओझल हो गये तब वह निराश होकर लौट गयी।

(५)

एक दिन मन्दिरकी पुताई करनेके लिये मैं एक कुटुम्बीके यहाँसे नसैनी लायी और जब पोतकर नसैनी लौटाने गयी तो वहाँ एक अच्छी सी लकड़ी पड़ी दिखाई दी। उसे देखकर मैं मनमें सोचने लगी कि यह लकड़ी नसैनी बनानेके लिये अच्छी है, मन्दिर पोतनेके लिये मुझे दूसरोंसे नसैनी माँगनी पड़ती है, इससे तो अच्छा है इस लकड़ीकी अपने लिये नसैनी बनवा ली जाय।

इससे कुछ दिन पहले एक व्यक्तिने अन्यायपूर्वक हमें बड़े महँगे गेहूँ दिये थे। परन्तु हिसाबमें भूलकर उसने डेढ़ रुपया कम लिया। कई दिनों पश्चात् मेरी भतीजी ब्रह्मादेवीको हिसाब-की भूल ध्यानमें आयी। परन्तु उसने भाव-तावके अन्यायको

याद करके यह बात किसीसे कही नहीं, सोचा अब उसे क्या देना है।

उसी दिन राजकुंवरिको स्वप्नमें श्रीमहाराजजीने दर्शन दिये और कहा, "बेटा! यह रामकुँवरि और ब्रह्मा नहीं मानतीं।" उसी अवस्थामें राजकुंवरिने पूछा, "महाराजजी! वे क्या नहीं मानतीं?" बोले—"रामकुँवरि दूसरोंकी लकड़ीकी नसैनी बनाना चाहती है, वह अपने यहाँ बाँसोंकी नसैनी बना ले। और ब्रह्मा उसका डेढ़ रुपयेका हिसाब नहीं देती, सो उसे दे देना चाहिये।"

प्रातःकाल राजकुंवरिने हम दोनोंसे स्वप्नकी चर्चा की और उन बातोंका तात्पर्य पूछा तो हम दोनोंने उससे अपने-अपने मनकी बात कही। महाराजजीकी ऐसी अनूठी अनुकम्पा देखकर हमें बड़ा हर्ष हुआ और साथही बड़ी हँसी भी आयी। पीछे उनकी आज्ञानुसार डेढ़ रुपयेका हिसाब चुका दिया गया। यह घटना उनके लीला-संवरणके बाद की है। इसी प्रकार अब भी वे समय-समयपर हमें स्वप्नमें दर्शन देकर हमारी शङ्काओंका समाधान करते रहते हैं। यह उनकी अहैतुकी अनुकम्पा ही है।

एक रहस्यकी बात

एक बड़े भारी रहस्यकी बात यह है कि श्रीमहाराजजीने मुझपर उस समय कृपा की थी जब मैंने उनके दर्शन भी नहीं किये थे। मैंने उनका दर्शन पीछे किया और उन्होंने मुझपर कृपा पहले की। वे सब प्रकार समर्थ थे। यह सब उन्होंने क्यों और कैसे किया—यह बात तो वही जान सकता है जिस पर इस प्रकारकी कृपा हुई हो। प्रारब्धवश पिताजी और भाईके आग्रहसे मैं विवाहके

बन्धनमें जकड़ गयी थी, परन्तु श्रीमहाराजजीने कृपा करके मुझे उससे उबारा और क्यासे क्या बना दिया ? कहाँसे कहाँ पहुँचा दिया ? सचमुच उन्होंने यह वचन चरितार्थ कर दिया ।

मेरी सतगुरु पकड़ी बाँह, नहीं तो बहि जाति ही ।
कागासे हँसा कियो, जाति वरन कुल खोय ॥
दयादृष्टिसे सहज ही, पातक डारे धोय ।
नहीं तो बहि जाति ही ॥ १ ॥
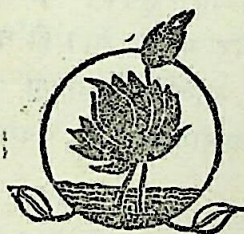
बहिन श्रीराजकुँवरिजी, देदामई (अलीगढ़)

प्रथम-दर्शन

पूज्य श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन मुझे आठ वर्षकी अवस्था में हुआ था। उस समय उन्होंने मुझे नहीं देखा था, मैंने ही चलते फिरते उनके दर्शन कर लिये थे। उसके पश्चात् पाँच साल मैं बीमार रही और तेरह वर्षकी आयु होनेपर प्रायः मरणासन्न हो गयी। उस समय श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी मुझे उत्कट लालसा हुई। भैया श्रीसियारामजी बाबाके पास गये और उन्होने देदामई पधारनेकी स्वीकृति दे दी। सुनकर मैं बड़ी प्रसन्न हुई। बाबा अलीगढ़तक आ गये और गाँवमें आने ही वाले थे कि शिवपुरीका उत्सव अत्यन्त समीप आजानेके कारण भक्तोंके आग्रहसे वे उस ओर चले गये तथा अलीगढ़से प्रायः पचास मील चलकर दबतरा पहुँचे।

जब मैंने यह समाचार सुना तो मैं बेसुध हो गयी। मुझे घोर निराशाने घेर लिया कि अब इस अन्तकालमें मैं महाराजजीके दर्शन नहीं कर सकूँगी। मेरे हाथ-पैर मारे जा चुके थे और शरीर इतना जीर्ण-शीर्ण हो गया था कि उनतक पहुँचना असम्भव था। मेरा दम घुटने लगा और मैं रोते-रोते बेसुध हो गयी। रातभर मेरी यही दशा रही। उधर दबतरा पहुँचनेपर बाबाको पेचिश हो गयी थी। उस रात्रिमें उन्होंने मेरी अवस्थाका भी अनुभव किया और अकस्मात् रात्रिके तीन बजे उठकर देदामईको प्रस्थान कर दिया।

यद्यपि दूरके दृश्य भी उनके लिये समीपस्थोंके समान ही प्रत्यक्ष होते थे, तथापि उन्होंने भक्तोंसे परोक्षरूपसे यही कहा कि आज स्वप्नमें उस लड़कीको मैंने अत्यन्त दुःखी देखा है।

बाबाका शरीर उस समय अस्वस्थ था और वह था भी माघ का महीना। अतः भक्तोंने प्रार्थना की कि महाराजजी! देदामई जानेपर तो आप समयपर शिवपुरी नहीं पहुँच सकेंगे। पर बाबाने कह दिया, "अब तो महाप्रलय होनेपर भी मैं नहीं रुक सकूँगा, वह लड़की दुःखी है।" जल्दीके कारण आपने गङ्गाजीको भी पुल से पार न करके सीधे ही पार किया और तेजीसे देदामई पहुँचकर सीधे मेरे ही पास आये और मुझे हृदयसे लगा लिया। अब मेरी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उस हार्दिक प्रसन्नताके कारण मेरा स्वास्थ्य भी सुधरने लगा। मैं तो एक दीन-हीन लड़की हूँ। मेरे पास तो विद्या, बुद्धि, भजन, धन किसी भी प्रकारका बल नहीं है। मैंने तो केवल रो-रोकर उन्हें पुकारा था। मेरी उस दीनता-पर ही वे दीनबन्धु रीझ गये और इतनी दूरसे दौड़ आये।

प्रेतबाधाकी निवृत्ति

(१)

पुत्रवत्सल माता-पिता जैसे अपने बालककी प्रसन्नताका ध्यान रखते हैं उसी प्रकार अहैतुक कृपासिन्धु महाराज़जी मेरे मनको भी बहुत रखते थे। एक बार मैंने कहा था, "बाबा! मुझे तो आप दाढ़ी रखे हुए बहुत अच्छे लगते हैं। तबसे जब कभी आप देदामई आये आपकी दाढ़ी बढ़ी हो होती थी।

एक बार मेरी प्रार्थनापर आप देदामई पधारे। एकादशीका

दिन था। रामायण सुन्दरकाण्डका पाठ हो रहा था। पाठके बीच से ही आप उठकर छत्तपर चले गये और किसीको भी ऊपर नहीं आने दिया। आप देरतक सब छतोंपर घूमते रहे। बारह बजेके लगभग नीचे उतरे और जब पाठ समाप्त हो गया तब बोले, "बेटा ! अब इन छतोंपर कोई भूत नहीं है। यह सुनकर सब स्तब्ध हो गये। बात यह थी कि उससे एक महीना पहले मेरे बड़े भैया कुँवरजीसे उन छतोंपर एक भूतकी कुश्ती हुई थी और वे बड़ी कठिनतासे बच पाये थे। रात्रिके समय यदि कोई छतपर जाता तो अवश्य कुछ खटका होता था। श्रीमहाराजजीने वहाँसे भूतको कैसे विदा किया, सो तो वे ही जानें, परन्तु उसके पश्चात् फिर कोई खटका नहीं हुआ।

(२)

सन् १९४० में श्रीमहाराजजीकी गुरुपूर्णिमा वृन्दावनमें हुई थी। मैं सब परिवारके सहित दिल्लीवाली बगीचीमें ठहरी हुई थी। एक दिन सबकी इच्छा हुई कि मन्दिरोंके दर्शन करने चला जाय। मुझे ठाकुर छिद्दासिंहने कन्धेपर बैठा लिया। अनेकों मन्दिरों के दर्शन करके जब मैं शामको लौट रही थी तो श्रौतमुनिनिवासके समीप आनेपर मुझे ऐसा लगा कि कोई मेरा कंधा पकड़कर लटक गया है। मैंने कहा, "कौन है ?" और पीछे मुड़कर देखा तो कोई भी दिखायी नहीं दिया। ऐसा तीन बार हुआ। इतनेमें दिल्लीवाली बगीची आ गयी और मैं थक जानेके कारण अपने बिस्तरपर जाकर लेट गयी।

लेटनेके थोड़ी ही देर पश्चात् एक कौपीनधारी, भयंकर आकृति वाला काला पुरुष दिखायी दिया। उसके बाल बढ़े हुए थे। उसने

जोरसे कहा, "देख ।" मैंने चौंककर उस ओर देखा तो ऐसा जान पड़ा कि उसने खड़े-खड़े हो थोड़ा सिर झुकाया है और उसके मुँह से खूनकी धारा बह रही है। फिर वह बोला, "दिखाऊँगा तुम्हें !" इतनेहीमें ॐनारायण आ गया और वह पुरुष अन्तर्धान हो गया । बस, उसी समय मुझे जोरसे ज्वर चढ़ आया और उलटी होने लगी । दो उलटी हो जानेपर खूनकी उलटी हुई । फिर तो मुँहसे, नाकसे तथा मल-मूत्रके साथ भी खून निकलने लगा । दशा यहाँतक बिगड़ी कि तीसरे दिन तो कानसे भी रक्त गिरा । वैद्यों की चिकित्सा हो रही थी । तेल और पानीकी मालिशकी जाती थी और दो दिनमें सन्दल (चन्दनके इत्र) की एक शीशी पिला दी गयी । परन्तु लाभ कुछ न हुआ । जब बचनेकी कोई आशा न रही तो श्रीमहाराजजीको सूचना दी गयी ।

दिनके ग्यारह बजे बाबा आये और उन्होंने मेरी दशा देखी । हृदयके स्थानपर गड्ढा हो गया था । ऐसा जान पड़ता था कि कोई कलेजेको चाकूसे काट-काट कर फेंक रहा है । आपने ठीक हृदयस्थानपर धीरेसे अपना चरण रखा और फिर मस्तकपर । इसके पश्चात् बोले, "बेटा ! कहो, मैं मरूँगी नहीं ।" मैंने धीरेसे कहा, "महाराजजी ! यह तो आप ही जानें ।" तब बोले, "नहीं, तुम कहो कि मैं मरूँगी नहीं, आपको बुलाऊँगी ।" इसपर मैंने तीन बार कहा, "मैं मरूँगी नहीं, आपको बुलाऊँगी ।"

मुझसे इस प्रकार प्रतिज्ञा कराकर आप चले गये । फिर मैं तीन-चार घण्टेतक सोती रही । सोनेसे उठनेपर मेरी उलटियाँ बंद हो गयीं और मुझे तरबूज खानेकी इच्छा हुई । यह बात दण्डी-स्वामीजीने जाकर बाबासे कही । वे बोले, "अरे बेटा ! वह ऐसी

चीज माँगती है ? अगहनमें भला तरबूज कहाँ मिलेगा ? देख कल रघुवीर राजपूतानासे दो मतीरे लाया है। उनमेंसे एक होगा। वह ले जा।" बस, मतीरा आया सायंकालतक मैंने सब खा लिया। उससे उलटी और बुखार दोनों ही निवृत्त हो गये।

दूसरे दिन महाराज फिर आये और बोले, "बेटा ! क्या हाल है ?" मैंने कहा, "अब तो ठीक हूँ।" तब बोले, "जा, बचा लिया, नहीं तो खा जाता, छोड़ता नहीं।" इसके तीन-चार दिन बाद मैंने उस काले और भयंकर पुरुषके खून उगलनेकी बात कही, तब बोले, "बेटा ! वह प्रेत था, मैंने बचा लिया, नहीं तो खा जाता, छोड़ता नहीं।"

ऐसे दिव्य शक्तिसम्पन्न थे हमारे महाराजजी।

घरमें एकान्तवास

मैं पहले कह चुकी हूँ कि एक दीन लड़की समझकर श्रीमहाराजजी मेरा मन बहुत रखते थे। एक बार मैंने प्रार्थना की कि महाराजजी ! यद्यपि आपके भक्त हमें बहुत प्यारे लगते हैं और उनकी सेवा करनेमें भी हमें बहुत सुख होता है तथापि हम चाहते हैं कि एकबार आप अकेले ही पधारें और हमें आपके आगमनकी पहलेसे कोई सूचना भी न हो। ऐसा होनेपर हमें बड़ा अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। मेरी इस प्रार्थनाको आपने 'अच्छा' कहकर स्वीकार कर लिया।

इसके एक वर्ष पश्चात् वृन्दावनके श्रीकृष्णाश्रमकी प्रतिष्ठाका महोत्सव होनेपर आपने मेरी उस प्रार्थनाको पूर्ण करनेका विचार किया। दिनमें सोहनासे सलाह कर ली और रात्रिको दो बजे उठ-

कर चल दिये। देदामईके पास पहुँचनेपर आप एक बागमें रुक गये और सोहनाको सूचना देनेके लिये भेज दिया। सूचना मिलने पर जितनी देरमें चाय तैयार कराकर भैया मुंशीलाल लेकर बागमें गये उतनेहीमें दो-तीन भक्त आपको ढूँढ़ते हुए आ पहुँचे। सोहनाने जाकर श्रीमहाराजजीसे कहा कि दो-तीन भक्त आ गये हैं और दरवाजेपर बैठे हैं। अब आप कैसे छिपेंगे? आप मुस्कराकर चल दिये और दरवाजेके समीप आनेपर थोड़ा-सा घूँघट करके भीतर घुस गये। आपको कोई भी पहचान न सका।

हमारे घरमें बीबी रामकुँवरिकी एक भजनकुटी है, जिसे हम श्रीमहाराजजीकी कुटी कहते हैं। उसमें आप विराजे। पहुँचते ही सब दीपक बुझा दिये गये, जिससे आपको कोई पहचान न सके। यहाँसे जब आप बाँधपर पधारे थे तो सुननेमें आया था कि वहाँ दीपावलीद्वारा आपका स्वागत किया गया था और यहाँ अन्धकार द्वारा स्वागत हुआ! आप सीधे वहीं पहुँचे जहाँ मैं बैठी थी और बोले, "ले, बेटा! मैं आ गया।" मैं तत्क्षण चरणोंमें गिर पड़ी और कहने लगी, "प्रभो! मुझमें न तो भक्ति या ज्ञानका बल है और न मैं किसी योग्य ही हूँ। तथापि मेरी प्रार्थनापर ध्यान देकर आप इतना कष्ट उठाकर दौड़ आये!" आप चुपचाप सुनते रहे। फिर गर्म जलसे चरण धोकर आपको विश्राम कराया। पैरोंमें काँटे लग गये थे, उन्हें बीबी रामकुँवरिने निकाला।

जो भक्त आये थे उनमें जिरौलीके पं० रामप्रसादजी भी थे। वे कहते कि कुटिया देखनेसे मालूम होता है कि इसमें श्रीमहाराजजी हैं, बीबी रामकुँवरि तुम बता दो। परन्तु श्रीमहाराजजीकी आज्ञा नहीं थी, इसलिये उनकी बातका निषेध कर दिया। तब सब भक्त

कुटियामें आये। वहाँ आप चौकीपर बैठे हुए थे तथापि ऐसी लीला की कि उन्हें दिखायी ही नहीं दिये। इस प्रकार आपने तीन दिन तक हमारे घरमें एकान्तवास किया। इससे अधिक हमारा सौभाग्य नहीं था, क्योंकि बाँधका उत्सव समीप आ गया था। अतः चौथे दिन वहाँको प्रस्थान कर दिया।

प्रभुके विधानमें सन्तुष्ट रहो

एक बार आपने मुझे आज्ञा दी कि 'दीन दयालु बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी' इस चौपाईका सम्पुट लगाकर रामायण का पाठ किया करो। मैं सदा ही रोगी रहती थी, अतः मुझे ऐसा लगा कि मेरा शारीरिक कष्ट दूर करनेके लिये आप मुझे यह सम्पुट बता रहे हैं! मैंने आपसे अपना अभिप्राय प्रकट किया तो बोले, "अरे बेटा ! ऐसा नहीं है। देखो, जन्म-मरणके समान और कोई संकट नहीं है, उस दुःखसे मुक्त होनेके लिये ही यह सम्पुट है।

यह उन दिनोंकी बात है जब मेरी टाँगें मारी जा चुकी थीं। श्रीमहाराजजी जब देदामई पधारे तब कुछ सुविधा हो गयी थी। उस समय आपने कहा था कि इनका इलाज मत कराना, नहीं तो टूट जायँगी। परन्तु घरवालोंने उनकी बात न मान कर इलाज कराया और वे सचमुच टूट ही गयीं। इसके पश्चात् जब आप आये तो बोले, "तू ऐसी ही अच्छी लगती है" और यह पद गाने लगे—

पिय-राजीमें वे राजी हैं, नहिं मानें पण्डित-काजी हैं।
सो ठीक, करे जो प्यारा है, हरि-आशिकका मग न्यारा है।।'

उनका अभिप्राय यही था कि प्रभुके प्रत्येक मंगलविधानमें प्रसन्न रहना ही भक्तका धर्म है। मुझे प्रसन्न करनेके लिये श्रीमहाराजजी कहाँ रहते थे, "बेटा ? तू अपने हाथ-पाँव मारे जानेका दुःख मत मानना।' अपनेको दुध-मुहाँ बालक समझना। दुध-मुहें बच्चे भला कहा खड़े होकर चलते हैं ? तू भी अपनेको वैसा ही समझना।"

दीनवत्सलता

कर्णवासकी बात है मुझे ज्वर हो जाता था। शरीर सदाका रोगी और क्षीण तो है ही। अतः माताओंने समझ लिया कि मुझे क्षय हो गया है और वे मुझसे बचने लगीं। उनके व्यवहारमें मेरे प्रति कुछ तिरस्कारका-सा भाव आ गया और कहने लगीं कि तू महा-राजजीसे अलग रहा कर, उन्हें छुआ मत कर। यदि उन्हें क्षय हो गया तो फिर क्या करेंगे ? वे मुझे चरणसेवाका भी अवसर नहीं देती थीं। पहले ही स्वयं आगे बैठ जातीं। मैं बहुत दुःखी होती, परन्तु कर क्या सकती थी। एक दिन इसी प्रकार आगे बैठकर उन्होंने चरणसेवा ले लो। उस दिन मेरे धैर्यका बाँध टूट गया। मैं घिसट-घिसटकर बाहर चली गयी और रोने लगी।

थोड़ी ही देरमें श्रीमहाराजजी व्याकुल होकर बैठ गये और बोले, "ओफ ! राजकुँवरि कहाँ है ?" उत्तर मिला, "महाराजजी! रोगिणी है, कहीं सोयी होगी।" वे बोले, "नहीं, वह सोयी कहाँ है ?" फिर आवाज देकर कहा, "बेटा राजकुँवरि ! तू कहाँ है।" मैंने कहा, "महाराज ! मैं यहाँ बैठी हूँ।" तब बोले, "अरे ! तू वहाँ क्यों चली गयी ?" अब मुझे सच्ची बात कहनी पड़ी। मैं बोलो, "महाराजजी ! माताएँ मुझे क्षयकी रोगी बतातीं हैं, मुझसे

घृणा करती हैं और आपसे अलग रहनेको कहती हैं।" महाराज बोले, "अरे बेटा ! जिसे तुझसे घृणा हो वह स्वयं अलग रहे, तू क्यों चली गयी ?" अब मुझमें साहस आ गया । मैं समीप चली गयी और बोली, "महाराज ! ये मुझे आपकी चरणसेवा भी नहीं मिलने देती।" इसपर आपने कहा, "अच्छा, आजसे एक चरण तेरा है । उसे दूसरा कोई नहीं छू सकेगा । जिसे सेवा करनी हो वह दूसरे चरणकी करे।"

मैं समीप तो पहुँच ही गयी थी । श्रीमहाराजजीने दायें चरणसे मेरे सिरको दबाया और मैं गिर गयी । फिर उस चरणका अँगूठा मुँहमें ले वस्त्रसे ढाँपकर चूसने लगी । चूसते-चूसते जब तन्द्रा-सी आ जानेके कारण मैं ढीली पड़ जाती तो वे अपना अँगूठा मुँहमें दबा देते और कहते, "ले, पी।" इसके पश्चात् जब फिर ढीली पड़ती तो पुनः अँगूठा दबाकर कहते, "ले, पी।" ऐसा ही रोज कहते । मुझ दीन-हीन लड़कीपर उन्होंने अपने अत्यन्त अन्तरंग भक्तोंकी उपेक्षा करके ऐसी कृपा की । उनकी इस दीनवत्सलताको क्या मैं जीवनमें कभी भूल सकती हूँ ?

ऐसे वात्सल्यनिधि थे हमारे श्रीमहाराजजी ।

श्रीहरिशंकरजी देदामई (अलीगढ़)

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीकी लीलाओंका अनुभव कोई भाग्यशाली भक्तिपूर्ण हृदय ही कर सकता है। मेरा हृदय तो बहुत कलुषित और भावशून्य है। मैंने संतोंके मुखसे सुना है कि वे महान् आत्मा थे और इतने महान् थे कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। वे हमारे पुण्यके प्रभावसे संसारमें आये थे और अब हमारे ही दुर्भाग्यसे अन्तर्धान हो गये। उनके तत्त्वको जाननेकी शक्ति किसमें है?

जिस समय मुझे उनके प्रथम दर्शन हुए मैं चौदह वर्षका बालक था और दसवीं कक्षा में पढ़ता था। पिताजीका एकमात्र पुत्र होनेके कारण मुझपर उनका लाड़-प्यार अधिक था। इसलिये बहुत फैशनसे रहता था। उस समय महात्माओंके विषयमें मैं इतना ही जानता था कि वे भीख माँगते हैं और कुछ चमत्कार जानते हैं। श्रीमहाराजजी बुलन्दशहर पधारे थे। उनके दर्शनोंकी बड़ी धूम थी। चमत्कार देखनेके लोभसे मैं भी उनके पास जा पहुँचा। जिस समय मैं उनके दर्शन कर रहा था उन्होंने मेरी ओर दृष्टिपात किया। उस एक ही दृष्टिने मेरी ऐसी विचित्र अवस्था कर दी जिसका मुझे आज भी आश्चर्य है। मैं अकारण ही रोने लगा और बहुत जोरसे रोया। अपनेको बहुत रोकता, परन्तु ऐसा जान पड़ता था मानो कोई बलात् रुला रहा है। तब उन्होंने उठाकर मुझे हृदयसे लगा लिया। फिर तो मैं मन्त्रमुग्ध-सा हुआ दिनभर उनके पीछे- घूमता रहा। उनकी दृष्टि और उनके स्पर्शमें एक विचित्र

शक्ति थी। उस प्रथम दर्शनसे मुझे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मैं उनका हो गया। यद्यपि मैं इस योग्य हूँ नहीं। श्रीमहाराजजीमें यह एक विचित्रता थी कि उनके सब भक्त अपने-अपने ऊपर ही उनकी सबसे अधिक कृपा समझते थे। उनका सबसे अधिक स्नेह प्रत्येक भक्तको अपनेपर ही जान पड़ता था। उनमें ऐसा आकर्षण था कि चारों ओर से भक्तोंकी टोली उनकी ओर खिची चली आती थी। उनका दर्शन करके सभी अपना अहोभाग्य मानते थे। उनके दरबारमें सर्वदा दीनका आदर था। वे किसीको दुःखी नहीं कर सकते थे—

'सबके प्रिय सबके हितकारी, सुख-दुख सरिस प्रशंसा-गारी ॥'

एकबार श्रीराजकुँवरिजीने श्रीमहाराजजीसे कहा था कि यद्यपि हम जानते हैं कि आप अत्यन्त महान् हैं और आपके पास हमें सुख भी बहुत मिलता है तो भी हम आपकी समीपता छोड़कर घर चले जाते हैं। तब श्रीमहाराजजीने कहा था, "बेटा! हमें पीछे जानोगे।" सो ठीक ही है, वास्तवमें हम उन्हें जान नहीं पाये।

नीचे कुछ घटनाएं लिखता हूँ—

(१)

श्रीमहाराजजी समय-समयपर किस विचित्र ढङ्गसे हम लोगों की रक्षा किया करते थे उसकी एक घटना मुझे स्मरण आती है। कर्णवासकी बात है, एक दिन सायंकालमें कीर्तन हो रहा था। उस दिन सूर्यास्त होते ही मेरे पेटमें दर्द होने लगा और अब वह असह्य हो गया। जब बैठना कठिन हो गया तो मैं कीर्तनसे उठकर अपने आसनपर लेटनेके लिये चल दिया। थोड़ी दूर जाने

पर मुझे ऐसा लगा कि श्रीमहाराजजी मेरे सामने आकर खड़े हो गये हैं और मुझे आगे बढ़नेसे रोक रहे हैं। मैं लौटकर फिर कीर्तन-में आ बैठा और वहाँ श्रीमहाराजजीको अपने स्थानपर विराजमान देखा। धीरे-धीरे मेरा उदरशूल शान्त हो गया। कीर्तन समाप्त होनेपर मालूम हुआ कि मेरे आसनपर किसी को काले साँपने डस लिया है और वह अचेत अवस्थामें पड़ा है। श्रीमहाराजजी तुरन्त वहाँ पहुँचे और उसके सिरपर हाथ फिराते हुए बोले, बेटा! तू ठीक है, सर्प कहाँ है?" सर्प वहाँसे जा चुका था। रोगी का उपचार हुआ धीरे-धीरे वह स्वस्थ हो गया।

(२)

एकबार बुलन्दशहरमें पिताजीने किसी यात्राके खर्चके लिये बैंकसे दो सौ रुपये निकाले और लाकर बक्समें रख दिये। पीछेसे मेरे चचेरे भाईने दूसरी ताली लगाकर वे रुपये निकाल लिये। ठीक समयपर जब पिताजीने बक्स खोला तो रुपये न मिलनेपर वे बहुत घबड़ाये। मैं ऊपर श्रीमहाराजजीके चित्रपटका पूजन कर रहा था। मुझे बहिनने इसकी सूचना दी तो मैं पूजन अधूरा छोड़-कर चला आया। परन्तु रुपये नहीं मिले। बड़ी आपत्ति रही। इस विक्षेपके कारण दूसरे दिन मैं श्रीमहाराजजीके पास चला आया। पहुँचते ही आप कहने लगे, "बेटा! गुरु और भगवान्की पूजामें जल्दबाजी नहीं करते। रुपये खो गये तो क्या हुआ? बड़े-बड़े विघ्न आवें तब भी पूजा नहीं छोड़नी चाहिये।" फिर हँस-कर बोले, "यदि पूजन पूरा कर लेता तो रुपये मिल जाते।" मुझे बहुत लज्जा आयी। बादमें मेरे चचेरे भाईने वे रुपये बता दिये।

(३)

एक बार श्रीमहाराजजी रामघाटमें थे। पूर्णिमाका दिन था। मैं सन्ध्याके समय किसी बातसे दुःखी होकर अकेला नहरके किनारे जाकर रोने लगा। कीर्तनका समय हो गया। मैं आया और चुपचाप-दूर बैठ गया। कीर्तन समाप्त होनेपर आप स्वयं ही कहने लगे, "जो कोई पूर्णिमाके सन्ध्या समय रोता है उसे एक महीनातक रोना पड़ता है।" मैं सब समझ गया। इस प्रकार वे संकेतमें ही बात भी समझा देते थे और रहस्य भी नहीं खुलने देते थे।

(४)

श्रीवृन्दावन-आश्रमके प्रतिष्ठामहोत्सवमें मुझे जूतोंकी रक्षा के विभागमें रखा गया था। एक दिन मेरे मनमें यह संकल्प हुआ कि श्रीमहाराजजी अपनी चरणपादुकाएँ मेरे पास रख जाते। थोड़ी ही देरमें आप मेरे पास आये और बोले, "ले बेटा! हमारी चट्टी रख ले, खो न जायँ।" वे ऐसे लीलामय थे।

मैं उनकी कृपासे ही आज यथासाध्य उनकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ। वे प्रभु मुझपर सदैव प्रसन्न रहें—यही प्रार्थना है। उनकी चरणधूलि मेरे मस्तकपर लगी रहे और वे मुझे अपने भक्तोंकी जूतियोंकी सेवाका अवसर प्रदान करते रहें।

भक्त सोहना, देदामई (अलीगढ़)

यद्यपि श्रीरैदासजीके कुलमें जन्म लेनेके कारण मैं किसी योग्य नहीं हूँ, तथापि श्रीमहाराजजी की मुझपर भी अहैतुकी कृपा थी। वे जैसे अपने अन्यान्य भक्तोंके लौकिक और पारमार्थिक हितका ध्यान रखते थे उसी प्रकार मुझपर भी कृपा करते थे। भोजनके समय जैसे अन्य भक्तोंको याद करके बुला लेते थे वैसे ही मुझे भी कभी नहीं भूलते थे।

भक्त-वत्सलता

रामघाटमें मेरे लिये आज्ञा थी कि श्रीरामायणजीका एक दोहा अर्थात् एक दोहा और दूसरे दोहेतककी चौपाइयाँ दिनमें याद करके रात्रिको शयनके समय श्रीमहाराजजीको सुनाया करूँ। जब आप रात्रिमें मुझे दोहा सुनानेकी आज्ञा देते तो भक्तगण समझ जाते कि शयनका समय हो गया है और प्रणाम करके चलने लगते। एक दिन आपने मुझे दोहा सुनानेकी आज्ञा नहीं दी। मैं उदास मनसे उठकर चला गया। अपना कोई अपराध याद नहीं आ रहा था, जिसके कारण यह दण्ड मिला हो। दूसरी रात्रिको भी मेरी याद नहीं हुई। अब तो मैं अधीर हो गया और एक पेड़के नीचे जाकर रोने लगा। रात्रिके दो बजे आपने मास्टर मुंशीलालजीको भेजकर मुझे बुलाया और बोले, "बेटा! तूने दो रात्रिसे मुझे दोहा नहीं सुनाया, इसलिये मुझे नींद नहीं आयी। अभी दोहा सुना।" मैंने

उसी समय दोहे सुनाये तब श्रीमहाराजजीने विश्राम किया। मैं प्रभुकी ऐसी भक्तवत्सलता देखकर गद्गद हो गया।

प्रमादका पुरस्कार

एक बार रामघाटमें कोई बड़ा भण्डारा हो रहा था। श्रीमहाराजजीने मुझे चील, कौए और कुत्ते हटानेकी सेवा सौंपी हुई थी। मैं बहुत हटाता, तो भी एक-दो कुत्ते आ ही जाते थे। कुत्तोंको देखकर आपने एक डण्डा उठाया और मुझे मारनेके लिये दौड़े। मैं भाग गया। तब आप हँसने लगे। उनके मनमें क्रोध तो कभी आता ही नहीं था। अपने शरणागतोंके साथ कभी-कभी वे ऐसे ही खेल किया करते थे। पीछे मैं बहुत पछताया कि यदि श्रीमहाराजजीका डंडा लग जाता तो बहुत अच्छा होता।

उस दिन आपने मुझे कुछ प्रसाद नहीं दिया। सायंकालमें पं० खूबीरामजीके द्वारा प्रसाद भेजा। मेरा नियम था कि जबतक श्रीमहाराजजी बुलाकर अपने करकमलोंसे स्वयं नहीं देते थे तबतक मैं प्रसाद नहीं लेता था। वे प्राय: नित्य ही मेरी इस लालसाको पूर्ण करते थे। आज उन्होंने स्वयं नहीं दिया इसलिये मैंने प्रसाद लेना अस्वीकार कर दिया। पण्डितजी प्रसाद लेकर लौट गये। श्रीमहाराजजीने उन्हें दुबारा भेजा, तब भी मैंने मना कर दिया। तब आपने मुझे बुलाकर महाप्रसाद दिया और पहले महाप्रसादको अस्वीकार करनेके दण्डस्वरूप बत्तीस लड्डू एक जगह बैठकर खानेके लिये दिये। मैं खा न सका। दूसरे दिन मेरे पैरोंमें फोड़े निकल आये और उनसे पीव बहने लगा। पीड़ाके कारण चलना भी कठिन हो गया। मैंने श्रीमहाराजजीको अपनी दशा बतायी। आप

बोले, "यह महाप्रसादके तिरस्कारका फल है।" तब मैं रोने लगा और क्षमायाचना की। श्रीमहाराजजी प्रसन्न हो गये और फिर धीरे-धीरे फोड़े अच्छे हो गये।

मैं ही साथी

श्रीमहाराजजी जब एक स्थानसे अन्यत्र जाते तो कभी तो अकेले ही चल देते और कभी अनेकों भक्तोंको साथ ले जाते। कभी कभी ऐसा भी होता था कि किसी एक ही बड़भागी भक्तको साथ ले लेते। मेरे मनमें बड़ी लालसा थी कि क्या मुझे भी अकेले ही उनके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त होगा? क्या कभी मैं भी अकेले में उनकी चरणसेवा कर सकूँगा? यद्यपि इस उच्चतर सेवाका अधिकारी मैं किसी प्रकार नहीं था, तथापि मनमें ऐसी अभिलाषा तो मुझे भी होती ही थी। फिर यह भी सोचता कि यह बात तेरे लिये असम्भव है। भला, ऐसा सौभाग्य तुझे कैसे प्राप्त हो सकता है? परन्तु वे अन्तर्यामी प्रभु मेरे मनकी बात जान गये और उन्होने उसे पूर्ण करनेका सुअवसर भी निकाल लिया।

एक-बार श्रीराजकुँवरिजीने महाराजसे प्रार्थना की थी कि कभी आप पहले-से सूचना बिना दिये अकस्मात् अकेले ही हमारे यहाँ पधारनेकी कृपा करें। श्रीमहाराजजीने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली थी। श्रीवृन्दावनके आश्रमकी प्रतिष्ठाका महोत्सव समाप्त हो जानेपर एक दिन आपने मुझसे कहा कि आज रातको चलेंगे। बस, रातको दो बजे आप उठे और चल दिये। मैं तो सोया ही रह गया। ऋषिजीकी नींद खुल गयी और वे आपके पीछे-पीछे चलने लगे। उन्हें बहकानेके लिये आप बोले, "जा, जल ले आ,

शोच जा रहा हूँ।" आप इतनेमें बहुत दूर निकल गये। जब देर तक प्रतीक्षा करनेपर भी आप न लौटे तो भक्तोंमें हलचल मच गयी। तब मेरी नींद खुली। मैं सब भक्तोंसे बचकर सीधा मथुराकी ओर दौड़ा। परन्तु श्रीमहाराजजीको ज्वर हो गया था, इसलिये वे रास्तेसे हटकर एक झाड़ीमें लेट गये थे। अतः मथुरातक जानेपर भी मुझे वे न मिले। मथुरामें सिपाहियोंने मेरी घबड़ायी-सी आकृति देखकर चोर समझा और मुझे रोक लिया। परन्तु फिर मेरे पास श्रीमहाराजजीका चित्र देखकर और मुझसे रामायणकी कुछ चौपाइयाँ सुनकर उन्होंने छोड़ दिया। मुझे विश्वास था कि श्रीमहाराजजीने अभी यमुनाका पुल पार नहीं किया होगा, अतः मैं पुलपर पहुँचकर उनकी प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देर पश्चात् आप बगलमें चट्टियाँ दबाये और कपड़ोंमें कमण्डलु छिपाये आते दिखायी दिये। मुझे देखकर आपने चट्टियाँ निकाल दीं और मैंने उन्हें उठा लिया। वहाँसे आप रेलकी पटरी पर चलने लगे। एक गाँव आनेपर आप कुछ मट्ठा माँग लाये। स्वयं पिया और मुझे भी पिलाया। फिर एक दूसरा गाँव आया। वहाँ आपके विषयमें लोगोंमें परस्पर विवाद होने लगा। कुछ लोग कहते थे कि ये उड़ियाबाबा हैं और कुछका मत इसके विरुद्ध था। वे कहते थे, "अजी! कल ही तो हम उन्हें वृन्दावनमें छोड़ आये हैं। अभी तो उनका उत्सव भी समाप्त नहीं हुआ। वे यहाँ कहाँसे आ जायँगे?" जब आपसमें वे एक निश्चयपर नहीं पहुँच सके तब उन्होंने आपसे ही पूछा, "महाराजजी! आप क्या उड़ियाबाबाजी हैं?" आप बोले, "नहीं बेटा! मैं उड़ियाबाबा नहीं हूँ, उनका तो बड़ा वैभव है।" इस उत्तरसे वे फिर सन्देहमें पड़ गये। तब

उन्होंने बड़ी नम्रतासे मुझसे पूछा। मैंने जो सच्ची बात थी स्पष्ट कह दी।

अब तो आपका खूब सत्कार होने लगा और सब लोग रुकने की प्रार्थना करने लगे। रात्रिको आपने वहीं विश्राम किया। फिर सबेरे चार बजे वहाँसे चले और उसी दिन रात्रिके समय देदामई पहुँच गये। इस प्रकार कुछ काल के लिये मुझ अधमको भी अपने एकान्त सहवासका सुअवसर देकर आपने अपनी अहैतुकी भक्त-वत्सलता प्रमाणित कर दी।
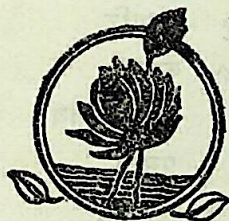
शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति		अशुद्ध	शुद्ध
८	६		मैं प्रारम्भमें	प्रारम्भमें
१०	११		चोरीक	चोरीका
१२	१२		हुआ अब	हुआ। अब
१३	१५		मनमें	मतमें
१६	१		कहा। "कुछ	कहा, "कुछ
१९	६		विहोजी	बिट्टोजी
२१	टिप्पणी	१	सीभरि	सौभरि
"	"	४	कहा	कहा—]
२७	५		मांसं निलयं	मांसं विलयं
"	१०		प्रमृति	प्रभृति
३१	१०		घृहस्थी	गृहस्थी
३२	२१		कृष्णनन्दजी	कृष्णानन्दजी
३६	२२		उत्हें	उन्हें
३८	१८		कुरुक्षेक्ष	कुरुक्षेत्र
४२	५		खण्उ	खण्ड
४२	११		उङ्गली	अङ्गुली
४५	३		श्रीमद्भागदत्त	श्रीमद्भागवत
"	१०		क्षरणमयि	क्षरणमपि
४६	११		प्रोक्तान्नृणां	प्रोक्ता नृणां

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६	टिप्पणी ४	जिसका	जिनका
४७	१४	अध्यत्मवेत्ता	अध्यात्मवेत्ता
,,	१६	हुशा	हुआ
,,	१८	भावोत्पन्न	भावापन्न
४९	२०	बाबाको	बाबाकी
५२	९	मैरे	मेरे
५४	९	व्यावहार	व्यवहार
६०	२	पण्डरपुर	पण्ढरपुर
६७	१०	व्यभक्ति	व्यनक्ति
९९	१६	-च्छ्ॐसभा:	-च्छँ्समा:
१०२	१५	मिष्ठान्न	मिष्टान्न
१०९	१३	बाबाका	बाबाको
११३	२	श्रीमहाराजी	श्रीमहाराजजी
११८	१६	आपने आपने	आपने
१२०	६	पुज्यपाद	पूज्यपाद
१२१	१३	अपने	आपने
,,	१४	आपने	अपने
१२२	८	सुनाया	सुनाया ।
,,	२०	जिन	जिस
१२३	८	अत्मा	आत्मा
१२४	३	भवन्ति	भवन्ति
१२५	५	उनके	उसके
१२६	२०	करा	करो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२९	२१	चाहिये।	चाहिये।"
१३०	१५	कि कि	कि
"	१९	बोले देख	बोले, "देख,
१३६	१५,१६,२१	स्वराज	स्वराज्य
१४१	७	श्रेष्ठतम्	श्रेष्ठतम
१४२	९	तर्कसमान	तर्कसम्मत
१५४	८	सबसे	जो सबसे
"	अन्तिम	भगवद्भिमुख	भगवदभिमुख
१५६	७	तो मैं	मैं तो
१५७	९	जागृत	जागृति
१५९	६	किशोरीताल	किशोरीलाल
"	७	नित्यक्रम	नित्यकर्म
१६१	३	बहुत	बहुत लोग
"	५	लगते	लगता
१६३	१७	दर्शनमें	दर्शनमें ही
१६५	१	हम हम	हम
१७२	१२	काटे	काटें
१९५	१४	घी	थी
२०३	१७	प्रतिष्ठाहं-	प्रतिष्ठाह-
२१०	८	मिट्टीका एक पात्र	मिट्टी का पात्र
२१६	११	एका	एक
२१७	६	दुर्गंण	दुर्गुण
२२४	१५	रोमञ्चित	रोमाञ्चित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२५	१०	आवश्क	आवश्यक
,,	१६	कालीरात्रि	कालरात्रि
,,	१७	प्रणतारनिहर	प्रणतारतिहर
,,	२२	तत	मत
२२८	१०	इसके	इनकें
२३१	१३	एनिया	एनिमा
२३७	अन्तिम	बनती	बनी
२३८	६	उपेक्षा	अपेक्षा
,,	१४	गोपिता ॥	गोपिता ॥ ❀
२४०	४	प्रतिपादक	प्रतिपादन
२४३	२०	लालाको	लालाकी
२५६	५	गता	गया
२५८	१५	कसे रुकते। काई	कैसे रुकते । कोई
२६५	१७	श्रद्धा	जैसी श्रद्धा
२६९	२२	यहाँ	यह
२७५	२	ले लेता	लेता
२८५	२२	जेसे—	जैसे-
२८७	२५	मुझै	मुझे
२९७	११-१२	सन्तोष-चित्त	सन्तोचित
३०३	४	जैसा	जैसी
,,	७	थेभुअद्	थे ।
३०५	२१	करने	करनेके
३११	१	एक एक	एक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३११	९	घनिष्ट	घनिष्ठ
३१६	२४	विपरीत ।	विपरीत हुआ ।
३१८	५	उनका	उनकी
३२३	८	थी	थीं
३२६	१६	नहीं	वहीं
३४४	३	मेंने	मैंने
३४५	४	शास्त्र	शस्त्र
,,	१६	कृत्तिकाये	कृत्तिकाभे
३५७	१६	शास्त्र	शस्त्र
३५८	१८	आशाकी	आशा की
३६०	९	देखकर	देकर
,,	१०	में	मैं
३६४	१	लिनीजा गृति	लिनी जागृति
३८६	१९	कहाँ	कहा
३९४	९	मेरे ।	। मेरे
३९६	१०	न । हो	न हो ।
४००	१, १२०	संगृहिणी	संग्रहणी
४०१	१,१६	,,	,,
४०६	६	आर	और
४१३	८	नन्द्रियाणि	नेन्द्रियाणि
४३२	१६	सदव	सदैव

पूर्णानन्द पुस्तक माला की

पुस्तकें

★

१. श्रीउड़िया बाबाजी (संक्षिप्त परिचय) ।=)

२. श्रीउड़िया बाबाजी के उपदेश [आचार खण्ड १] ।।।)

३. श्रीउड़िया बाबाजी के उपदेश [उपासना खण्ड २] ।।।=)

४. श्रीउड़िया बाबाजी के उपदेश [ज्ञान खण्ड] १)

५. श्रीउड़िया बाबाजी के उपदेश (सजिल्द)
[उपर्युक्त चारों पुस्तकें एक जिल्द में] ३)

श्रीउड़िया बाबाजी के संस्मरण [प्रथम खण्ड] ३)

. श्रीउड़िया बाबाजी के संस्मरण [द्वितीय खण्ड] ३)

श्रीकृष्णाश्रम, दावानल कुण्ड,
वृन्दावन, (मथुरा)